श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा प्रकाशन

शासन समुद्र
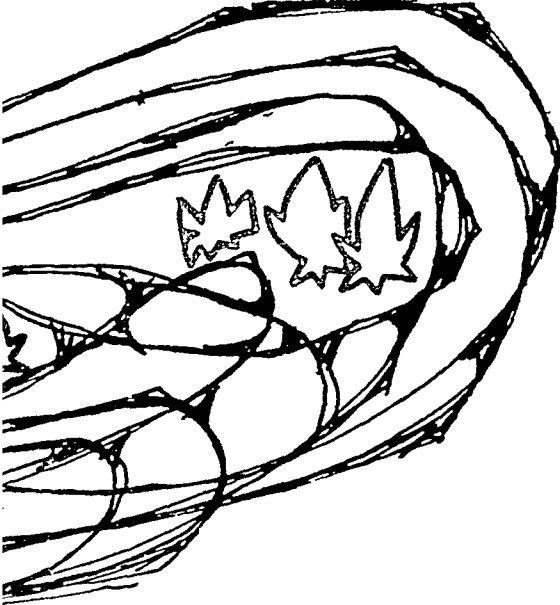
भाग-२ (क)

मुनि नवरत्नमल

प्रस्तुति

आचार्य भिक्षु का शासन-काल महान् क्रातिकारी एव हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा। भाव-दीक्षा अगीकार करने के पश्चात् पन्द्रह वर्षो तक उन्हे घोर सघर्षो से लोहा लेना पडा। फिर भी वे वीर-पुरुष मुसीवतो के भीषण झझावातो को चीरते हुए अपूर्व साहस के साथ अविचल गति से अपने मतव्य पथ पर वढते चले गए। धैर्य के फल अत्यत मधुर होते है। आखिर ३६ वर्षो की कठोर साधना के वाद आशाओ की दिशाओं मे अरुणाई छा गयी और सफलता की सहस्र-सहस्र रश्मियो को लेकर चतुर्विध सघ को अमर आलोक देने वाला सूर्य उदित हो गया। स० १८५३ मे मुनि हेमराज की दीक्षा के पश्चात् जिस प्रकार उर्वरा धरती पर सजल वर्षा से हरियाली लहलहाने लगती है उसी प्रकार धर्म-सघ की सपदा वढ़ने लगी। क्रमश: साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविका की सख्या मे कल्पनातीत वृद्धि होती चली गयी। स्वामीजी के समय मे ही ४९ साधु, ५६ साध्विया[1] एव हजारो-हजारो श्रावक-श्राविका तेरापथ के अनुयायी वन गए।

आचार्य भिक्षु के समय दीक्षित ४९ साधुओ के जीवन आख्यान शासन-समुद्र भाग १ (क) तथा (ख) मे प्रकाशित हो चुके है। उन्हें पढने से भिक्षु शासन के ऐतिहासिक तथ्यो की सम्यक् प्रकार से जानकारी होती है और आगे की घटना, प्रसगो को पढने की सहज अभिरुचि और उत्कठा जागृत हो जाती है। उसके लिए प्रस्तुत है शासन-समुद्र भाग २ (क) और (ख)।

आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी भारीमालजी स्वामी हुए। उनका जन्म मेवाड मे वडा 'मूहा' (भीलवाड़ा के पास) मे हुआ, वे गोत्र से लोढ़ा थे। उन्होने पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय मे स्वामीजी के पास ही अपने पिता किसनोजी के साथ १० वर्ष की वय मे दीक्षा ली थी। फिर आचार्य भिक्षु ने जव धर्म-क्रान्ति का सूत्रपात किया और भाव-दीक्षा ग्रहण की तव उन्होने अपने पिता का मोह छोड़ा और स्वामीजी के साथ ही रहे। उस समय उनकी अवस्था मात्र १४ साल की थी। वे वडे धैर्यशील, उत्कृष्ट विनयी, सच्चे भक्त और स्वामीजी के अनन्य

---

१. साध्वियो के जीवन-वृत्तान्त शासन-समुद्र भाग १ (साध्विया) मे पढे।

अन्तेवासी शिष्य हुए। स्वामीजी का भी उन्हे सौहार्द भरा अमित वात्सल्य और स्नेह मिला। दोनो का इतना गहरा एकीभाव हो गया कि उनकी पारस्परिक प्रीति वीर-गौतम की उपमा को चरितार्थ करने लगी। जयाचार्य ने उसे अपनी अनेक कृतियो मे दोहराते हुए लिखा है—'भिक्षु ने भारीमाल, वीर गोयम सी जोड़ी रे'। 'एहवी कीजै प्रीतडी, जेहवी भिक्खु भारीमालो रे।'

भारीमालजी स्वामी हर समय और हर स्थिति मे स्वामीजी के अविच्छिन्न सहयोगी रहे। आन्तरिक श्रद्धा, भक्ति और विनम्र भावों से वे स्वामीजी द्वारा जितना ज्ञान, अनुभव, क्षमता एव सद्‌गुणो का अमृत ले सके उतना उन्होने ग्राह्य-बुद्धि से लिया। स्वामी जी उन्हे परम विनीत, अत्यत श्रद्धा-निष्ठ और सभी दृष्टियो से योग्य समझकर जितना दे सके उतना उन्होने कल्पवृक्ष की तरह खुले दिल से दिया। सं० १८३२ मे उन्हे युवाचार्य पद पर मनोनीत किया। २८ साल तक आचार्य एव युवाचार्य की वह जोडी तीर्थ चतुष्टय को विकसित करती रही। स० १८६० भाद्रव शुक्ला १३ को सिरियारी मे स्वामीजी का स्वर्गवास हुआ और भारीमाल स्वामी उनके आसन पर आरूढ होकर तेरापथ के दूसरे आचार्य के रूप मे विभूषित हुए।[1]

स्वामीजी के युग मे अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे पर आचार्य भारीमालजी का शासनकाल शात-वातावरण-मय और जमा-जमाया, आचार्य भिक्षु की ख्याति को बढाने वाला एव बड़ा प्रभावशाली रहा। उनके समय मे ३८ साधु और ४४ साध्वियो[2] की दीक्षा हुई। उनमे अनेक साधु-साध्विया उच्च कोटि के साधक, घोर तपस्वी, अग्रणी एवं शासन-प्रभावक हुए जिन्होने अपनी वलवती साधना व परिश्रम की बूदो से शासन रूपी बगीचे को सीचा और उसकी सुषमा को बढाया। उन्ही शिष्यों मे एक मुनि जीतमल जी थे, जो तेरापथ के चतुर्थ आचार्य बने और संघ को सर्वतोमुखी विकास के शिखर पर चढाया और पूर्वाचार्यों के नाम को वहुत ही उजागर किया।

आचार्य भारीमालजी के शिष्यों के मधुर, रसीले और प्रेरक जीवन प्रसग प्रस्तुत है इस शासन-समुद्र भाग २ (क) तथा (ख) ग्रथ मे। जयाचार्य की यशोगाथाए आकाश मे नक्षत्रमाला की तरह अनगिन होने से उनके सुदीर्घ स्वर्णिम पृष्ठ शासन-समुद्र भाग २ (ख) पुस्तक मे सजोए गए है। इससे पाठको को उनके महान् यशस्वी और बहुमुखी जीवन को पढ़ने मे अधिक सुविधा रहेगी।

जयाचार्य (क्रमाक १५) के अतिरिक्त ३७ साधुओ की जीवन घटनावलियां

---

१. आचार्यश्री भारीमाल जी का जीवन-वृत्त प्रकाशित 'शासन-समुद्र' भाग १ (क) पृ० २१३ से ३८० मे देखें।

२. साध्वियो के जीवन-वृतान्त 'शासन-समुद्र' भाग २ (साध्विया) मे पढ़े।

शासन-समुद्र भाग २ (क) मे समाहित है। उनका क्रमवद्ध अध्ययन कर जिज्ञासु-जन लाभान्वित होगे।

अत मे अपने जीवन-निर्माता, भाग्य-विधाता, रत्नत्रयी के दाता आचार्यवर्य तुलसी के चरणो मे नमन करता हुआ उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूं कि जिन्होने जयाचार्य निर्वाण शताब्दी समारोह की मगल वेला मे जयाचार्य की विशालतम साहित्य श्रृंखला 'शासन-समुद्र' को सलग्नता का रूप दिया। जिसके परिणामस्वरूप ही आज वह जन-जन की दृष्टि का विषय वना है। मैं इसे आचार्यप्रवर की महती कृपा दृष्टि का सुफल मानता हू। उनके प्रति अत करण के भावों से समर्पित होता हुआ यही कामना करता हू कि गुरुदेव के आशीर्वाद व मार्गदर्शन मे मै अपने चरण उत्तरोत्तर आगे बढाता रहू। ग्रन्थ के प्रूफ-सशोधन मे साध्वी सोमलताजी ने अत्यन्त निष्ठा एव श्रम पूर्वक कार्य किया है।

भिक्षु-विहार (स्वास्थ्य निकेतन)
जैन विश्व भारती
लाडनू
१ जनवरी, १९८२

मुनि नवरत्नमल

प्रकाशकीय

तेरापथ धर्मसघ का इतिहास स्वर्णाक्षरो मे अंकित करने योग्य है। धर्मसघ के महामनस्वी आचार्यो, साधु-साध्वियों तथा श्रावक श्राविकाओं ने समय-समय पर अपने त्याग एव वलिदान से इसके गौरव को बढाया है। युग प्रधान आचार्य तुलसी के कुशल नेतृत्व मे विगत चार दशको मे हमारे धर्मसघ ने जो विकास किया है, उसे हम कुछ पृष्ठो मे ही अकित नही कर सकते।* शिक्षा, साहित्य, शोध, सेवा और साधना के क्षेत्र मे हमारे धर्मसघ ने अभूतपूर्व प्रगति की है।

तेरापथ धर्मसघ का इतिहास व्यवस्थित और सुसंपादित होकर जनता के सामने आए, यह वहुत अपेक्षित था। अन्यान्य कार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी आचार्य प्रवर का ध्यान इस ओर गया। आपने अत्यन्त कृपा करके मुनिश्री नवरत्नमलजी को इस कार्य के लिए प्रेरित किया। मुनिश्री ने वडी निष्ठा, लगन, श्रम एव विद्वतापूर्ण ढग से इस कार्य को सपन्न किया। कुछ समय पूर्व ही 'शासन-समुद्र' भाग-१ (क) एव (ख) प्रकाशित हुए है। पाठको ने दोनो ग्रन्थों को वड़े आदर के साथ स्वीकार किया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि 'शासन-समुद्र' भाग-२ (क) एव (ख) को भी उसी रूप मे स्वीकार करेगे।

मैं श्रद्धास्पद आचार्यवर के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिनकी असीम अनुकपा से यह इतिहास-ग्रन्थ महासभा को प्रकाशन के लिए प्राप्त हुआ। आशा है ऐसी ही कृपा आपकी सदैव वनी रहेगी।

उत्तमचन्द सेठिया
अध्यक्ष
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा, कलकत्ता

अनुक्रम

---

१. श्रीमज्जयाचार्य के विराट् व्यक्तित्व एवं वहुमुखी जीवन का विश्लेषण शासन-समुद्र भाग २ (ख) मे प्रकाशित किया गया है।

शासन-समुद्र

द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी का शासनकाल

(वि० सं० १८६०-१८७८)

दोहा

युग में भारीमाल के, तीस आठ अणगार।
वर्णन उनका सरसतम, लिखता हूं क्रमवार ॥१॥

५०।२।१ मुनिश्री जवान जी (बड़ी पादू)

(संयम-पर्याय स० १८६१-१९०५)

छप्पय

नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह।
ली 'जवान', ने ध्यान से मोक्ष नगर की राह।
मोक्ष नगर की राह बड़ी पादू के वासी।
लोढ़ा गोत्र प्रसिद्ध कीर्त्ति जन-जन में खासी।
सत्सगति से विरति का भारी चला प्रवाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥१॥
दीक्षित इकसठ साल में भारी गुरु के हाथ।
शिष्य प्रथम उनके बने सचमुच हुए सनाथ[1]।
सचमुच हुए सनाथ सफल जीवन को करते।
सयम मे हर याम रमण कर सद्‌गुण भरते।
ज्ञन ध्यान पर ही टिकी उनकी एक निगाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥२॥
पाच वर्ष अति हर्ष से गुरुकुल में सुखवास।
पांच वर्ष मुनि हेम के पद मे विद्याभ्यास।
पद में विद्याभ्यास पढ़े आगम अवधानी।
श्लोक हजारों याद बने अच्छे व्याख्यानी।
तात्त्विक चर्चा धारणा श्रम से हुई अथाह[2]।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥३॥
बना दिया अगुआ उन्हें देख योग्यता-धाम।
विहरण गुरु आदेश से करते पुर-पुर ग्राम।
करते पुर-पुर ग्राम बने धार्मिक व्यवसायी।
दे उपदेश उदार बनाये बहु अनुयायी।

दीक्षा दी कुछ हाथ से देती 'ख्यात' गवाह[१]।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥४॥

दोहा

तपश्चरण मे श्रमण ने, चरण बढ़ाये खूब।
विरति भावना से खिले, जैसे वन की दूब[१] ॥५॥
सुर सरिता वत् विचरते, करते पर उपकार।
मरु धरती में आ गये ऋषिवर आखिरकार ॥६॥
हुआ असाता योग से, तन में पक्षाघात।
तप जप में रम सह रहे, समभावों के साथ[१] ॥७॥
'चरपटिया' मे कर दिया, अन्तिम चातुर्मास।
परिचर्या में आपकी, चार संत थे खास ॥८॥

छप्पय

आये चल दूधोड़ मे वर्षा ऋतु के वाद।
की चालू सलेखना धर साहस साल्हाद।
धर साहस साल्हाद किया है आत्मालोचन।
पाया मरण समाधि व्याधि का हुआ विमोचन।
कर पाये अच्छी तरह संयम का निर्वाह।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥९॥
विद नवमी वैसाख की साल पांच की भव्य।
पहुंचे पुर दूधोड से स्वर्ग सदन में नव्य।
स्वर्ग सदन में नव्य परम चरमोत्सव छाया।
'जय' ने रच दो ढ़ाल सुयश मुनिवर का गाया।
वर्ष पांच चालीस से पूर्ण हुई सब चाह[१]।
नौजवान वत् हृदय में भर असीम उत्साह ॥१०॥

१. मुनिश्री जवानजी मारवाड़ मे 'वडी पादू' के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से लोढ़ा थे। उन्होने स० १८६१ मे आचार्य श्री भारीमालजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। वे आचार्य श्री भारीमालजी के प्रथम शिष्य हुए।[1]

२. मुनिश्री दीक्षित होने के पश्चात् पांच वर्ष (१८६२ से १८६६) आचार्य श्री भारीमालजी की सेवा मे और पाच वर्प (स० १८६७ से १८७१) मुनिश्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे। वहा उन्होने विनय और गुरु दृष्टि की आराधना करते हुए ज्ञानार्जन किया और वहुश्रुती वने।[2]

उन्होने सिद्धातो का गहरा अध्ययन कर तत्त्व चर्चा की अच्छी धारणा की। व्याख्यान कला मे वे वहुत कुशल वने। हेतु, दृष्टान्त उन्हे वहुत याद थे। आगम, थोकड़े व व्याख्यानादिक के हजारो श्लोक कठस्थ थे। उनका स्वाध्याय (पुनरावर्तन) का क्रम भी नियमित रूप से चलता था।[3]

---

१. जवान जोरावर करी, लोढा जाति सुलीन।
ओस वश मे अवतर्‌या, चरण हरष धर चीन॥
सवत् अठारै इगसठे, भारीमाल रै हाथ।
चारित्र धार्‌यो चूप सू, सूरपणै साख्यात॥
वासी वड़ी पादू तणा, वारू विनय विवेक।
गुरु-भक्ता गुण-आगला, पवर गुणागर पेख॥
प्रथम शिष्य भारीमाल ना, जाझी कीरत जाण।
गुरुकुल वासे सेवतां, सखरी भात सयाण॥
(जवान मुनि गुण वर्णन ढा० २ दो० १ से ४)

२. भारीमालजी सेवा कीधी रे, वहु वर्प आत्म दम लीधी रे।
पाया ज्ञान तणी बहु ऋधी॥
पछै हेम नी सेवा मे आया रे, पाच वर्प ताई सुख पाया रे।
वहुश्रुत अधिक सवाया॥
(गुण वर्णन ढा० २ गाथा ३, ४)

विनीत घणो सतगुरु तंणो, गुरुकुल वासे वसत।
अग चेष्टा मांहै वर्त्ततो, सीखै सूत्र सिद्धत॥
(गुण व० ढा० १ गा० ११)

३. ज्यारी कठ कला हद भारी रे, दृष्टत नी छिव न्यारी रे।
सूत्र सिद्धान्त मे अधिकारी॥
सभा चातुर अधिक निहालो रे, ऋष जवान जिसा सुविशालो रे।
विरलाई इण पचम कालो॥
(गुण० ढाल २ गा० ७, ८)

३. स० १८७१ मे आचार्य श्री ने उनका सिंघाड़ा वनाकर सं० १८७२ का अलग चातुर्मास कराया।[1]

उन्होने स० १८७२ का चातुर्मास देवगढ मे किया। सं० १८७३ का भी बड़े संतो के कल्प से देवगढ में ही किया। *वड़े सत मुनि जोधोजी (४६) उनके साथ थे। यद्यपि मुनि जोधोजी के आचाराग, निशीथ आदि सूत्र पढ़े हुए नही थे, परन्तु दीक्षा पर्याय मे वड़े होने से मुनि जवानजी के दूसरे चातुर्मास-प्रवास के कल्प मे सहायक वन गए।*

(प्राचीन पत्र के आधार से)

मुनिश्री ने मारवाड, मेवाड़, मालवा, ढूंढाड़ तथा थली प्रदेश मे विचर कर अनेक व्यक्तियो को सुलभवोधि व श्रावक वनाया और कइयों को दीक्षा दी।[2]

स० १८७४ मे मुनिश्री मोतीजी वडा (७७) सीवास (सीहावास) को कंटालिया मे दीक्षा दी। इसका ख्यात तथा 'मोतीचंद पचढ़ालिया' ढा० ४ गा० १२ तथा जवान मुनि गुण व० ढा० १ गा० १६ में उल्लेख है।

मुनिश्री रामसुखजी (१०५) की दीक्षा सं० १८८६ आसोज सुदि १० को

हेतु दृष्टांत कला घणी, मूत्रां नी रहिस उदार।
हजारां ग्रथ मूहढ़ै सीखिया, याद करै नर नार॥

(गुण० व० ढा० १ गा० १५)

ख्यात मे उनके लिए लिखाहै—"वड़ा भण्या गुण्या, हीमतवान वखाण वाणी री कला घणी, शास्त्र की धारणा वड़ी जवर, चरचावादी, परिपह में सूरवीर, हेतु दृष्टान्त री कला वडी जवर।"

१. एकोतरा रै वर्प विचारो रे, पूज कीधो है न्यारो सिंघाड़ो रे।
पछै कियो घणो उपगारो॥

(गुण व० ढा० २ गा० ५)

भारीमाल ऋप हेम नी, सेव करी वहु वास।
सवत् अठारै वोहितरे, न्यारो करायो चौमास॥

(गु० व० ढा० १ गा० १२)

२. मुरधर मेवाड़ नें मालवो, हाड़ोती ढूढार।
थाट किया थली देश मे, एहवो जवान अणगार॥
घणां नै दीयो साधुपणो, श्रावक वोहला कीध।
सुलभवोधी वहु नै करी, जग माहै जश लीध॥

(गुण व० ढा० १ गा० १६, १७)

उक्त पद्य मे अनेक व्यक्तियो को दीक्षित करने का उल्लेख है पर ख्यात आदि में कुछ ही नाम प्राप्त होते हैं।

जयपुर मे उनके हाथ से हुई ऐसा प्रतीत होता है। यद्यपि ख्यात तथा 'रामसुख गुण वर्णन' ढाल आदि मे उनके द्वारा दीक्षित होने का उल्लेख नही है, पर जय सुजश मे लिखा है कि मुनिश्री जीतमलजी सं० १८८९ का दिल्ली चातुर्मास कर आचार्य श्री रायचंदजी के साथ होने के लिए गुजरात की तरफ जाते हुए छह साधुओ से झारोल पधारे। वहां मुनि जीवोजी (४४), जवानजी (४९) और रामसुखजी (१०५) थे। मुनि रामसुखजी मुनिश्री जीतमलजी के साथ हो गये—

छः मुनिवर संग विहार कर नै, झारोल मे आया तिहा।
जीवो मुनि ने जवान स्वामी, हुता त्या कने उमही।
राममुख मुनि कह्यू हू पिण, तुझ सगे आवू सही॥
(जय सुजश ढा० १९ गा० ४)

मुनिश्री रामसुखजी की दीक्षा इसी वर्ष चातुर्मास मे हुई।

जैपुर सैहरे जुगत सू, निव्यासिये निकलक।
दशरावे लीधी दिख्या, मेट्यो आतम वक॥
(रामसुख गु० व० ढा० १)

उक्त मुनिश्री जीवोजी के सिंघाड़बध होने का उल्लेख नही मिलता। मुनिश्री जवानजी स० १८७१ मे सिंघाडबध हो गए थे यह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, अत. बहुत संभव है कि मुनिश्री रामसुखजी की दीक्षा चातुर्मास मे मुनि जवानजी के हाथ से हुई। इससे उनका स० १८८९ का चातुर्मास जयपुर मे प्रमाणित हो जाता है।

ख्यात मे मुनिजी नाथूजी (१११) केलवा की दीक्षा स० १८९१ मे मुनि जवानजी के हाथ से लिखी है पर जयाचार्य विरचित सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४८ मे ऋषिराय द्वारा दीक्षित होने का उल्लेख है जो सही प्रतीत होता है—

"सैहर केलवा रो नाथू संत सुजाण कै।
ऋषिराय पास सजम लियो जी॥"

४. उन्होने उपवास, बेले, चोले और पचोले बहुत वार किये। ऊपर मे आठ व नौ दिन का तप किया।[1]

५. अन्तिम वर्षो मे जब वे मारवाड में विचर रहे थे तब उनके 'लकवा' (पक्षाघात) हो गया। उन्होने उस वेदना को बड़ी दृढता व समता से सहन किया। तप-स्वाध्याय की तरफ अपना ध्यान लगा दिया।

६. स० १९०५ का अन्तिम चातुर्मास 'चरपटिया' मे किया। वहा चार

---

१. चौथ छठादिक बहु किया, नव तप आठ उदार।
पांच-पांच ना थोकडा, कीधा बहुली वार॥
(गुण वर्णन ढा० १ गा० १८)

साधु उनकी परिचर्या मे थे। १. मुनि उत्तमचदजी (९०), २. वड़ा मोतीजा (७७) ३. जुहारजी (१२३) ४. छोटूजी (१४८)।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० २० से २२ तथा
ढा० २ गा० १४ से १६ के आधार से)

चातुर्मास के पश्चात् चरपटिया से विहार कर पोप महीने मे मुनिश्री 'दूधोड' पधारे। वहा उन्होने सलेखना तप चालू किया। उसमे उपवास अनेक, वेले ५ चोले २ तेले ४ और १ पचोला किया। फिर आत्मालोचन कर आत्म-समाधि मे लीन हो गए।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० २३ से २६ के आधार से)

दूधोड मे सं० १९०५ वैसाख कृष्णा ९ को पश्चिम रात्रि के समय परम शान्तिपूर्वक उन्होने स्वर्ग-प्रस्थान कर दिया। लोगो ने २५ खंड की मडी वनाकर उनके शरीर का दाह सस्कार किया। उनका साधना काल पैतालीस वर्षो का रहा।[1]

जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणानुवाद की दो ढालें वनाईं। उनमे उनकी विविध-विशेषताओ का उल्लेख किया है।

---

१. समत उगणीसै पाचे समैं, वैशाख विद नवमी सार।
पाछिली निशि परभव गया, वरत्या जै-जै कार।
पचीस खडी मंडी करी, जांणक देव विमांण।
ए तो किरतव ससार ना, धर्म तो अश म जांण॥

(गुण ढा० १ गा० २६, २७)

वर्ष पैतालीस आसरै, पाल्यो सजम भार।
जन्म सुधारयो महामुनि, पयवर गाम मझार॥

(गुण ढा० २ दो० ५)

वडी पादु रा चरण इकसठे, लोढ़ा नाम जवानो रे।
उगणीसै पाचे दुधारे मे, परभव कीध पयाणो रे॥

(शासन-विलास ढा० ३ गा० १)

५।१।२।२ मुनिश्री जीवणजी (सांचोर)

(सयम पर्याय १८६१-१८६२)

लय—कोटि कोटि कंठो से ···

धन्य धन्य ऋषि जीवन ने पा सयम का वरदान रे।
पन्द्रह पक्षो में ही अपना किया आत्म-उत्थान रे ॥ध्रुवपद॥
था सांचोर ग्राम जीवन का मारवाड़ में नामी।
श्री श्रीमाल गोत्र परिजन का ओसवंश अनुगामी।
मां 'उगरां' २ था सतीदासजी पितृवर का
अभिधान रे॥ धन्य ॥१॥

क्रमशः वड़े हुए तव उनकी अन्तर आखे उघड़ी।
इच्छा हुई चरण लेने की विरति भावना उमड़ी।
पर सच्चे २ मुनि निकट न कोई जिनका सही विधान रे ॥२॥

तेरापंथी मुनियों का सुन नाम हुई जिज्ञासा।
सोचा पहले करुं परीक्षा कैसा अन्तर पाशा।
फिर सिक्का २ गुरु का शिर धारु चढ़ूं ऊर्ध्व सोपान रे ॥३॥

विना परीक्षा दो पैसा का छोटा सा वर्तन भी।
नही खरीदता समझदार नर भूल चूक कर कब ही।
तो आवश्यक २ देव-धर्म गुरु की करना पहचान रे ॥४॥

ऐसा सोच जोधपुर आये, स्थानक में पहुंचाये।
जयमलजी के शिष्यों से मिल वातचीत करपाये।
किन्तु वहां २ संतोप जनक कुछ मिला न तत्त्व प्रधान रे ॥५॥

पाली मे जा तेरापथी श्रावक जन से पूछा।
ऐसे साधु वताओ जिनका साधु-क्रिया-वल ऊंचा।
वे बोले २ है भिक्षु संघ के प्रतिनिधि मुनि गुणवान रे ॥६॥

भिक्षु-शिष्य मुनि हेम यहां पर पावस हित आयेंगे।
मर्म साधना का श्रेयस्कर तुमको समझा देंगे।
कुछ दिन से २ आषाढ़ मास में आये हेम सुजान रे ।।७।।

जीवन ने कर दर्शन मुनि की गतिविधि सारी जानी।
निर्णय किया साधु आत्मार्थी है ये ज्ञानी ध्यानी।
चरणों मे २ झुककर कहा—मुझे दे मुनिवर! चरण-निधान रे ।।८।।

दोहा

मुनि श्री बोले सीख लो, पहले तात्त्विक ज्ञान।
फिर सम्मति से स्वजन की, संयम का संगान ।।६।।

आज्ञा हो परिवार की, दीक्षा जो दे आप।
तो न रहूं मै गेह मे, नियम ले रहा साफ ।।१०।।

लय—कोटि-कोटि कंठों से…

दृढ़ संकल्प विकल्प विना वे अपने घर पहुंचाये।
अनुमति मागी तव अभिभावक जन ने शीष हिलाये।
जीवन ने २ तव भाव आत्मगत खोल दिये बलवान रे ।।११।।

विदा यहा से हो जाऊंगा धर्माचरण करूंगा।
रुपये होगे जव तक अपनी रोटी मै खाऊंगा।
घर-घर से २ फिर भिक्षा कर लाऊगा भोजन-पान रे ।।१२।।

परिजन जन ने सोचा—अव यह नहीं ठहरने वाला।
चढ़ा मजीठी रंग हृदय में जो न उतरने वाला।
आज्ञा का २ लिख दिया पत्र तब होकर के हैरान रे ।।१३।।

कागद ले वे पाली पहुंचे हेम खबर सुन आये।
फाल्गुन शुक्ल तीज को दीक्षा भागवती दे पाये।
मुनि जीवन २ अब गण गंगा में करते पावन स्नान[1] रे ।।१४।।

कर पीपाड़ शहर में दर्शन गुरुवर के हरषाये।
हेम संग पावस करने को जेतारण चल आये[2]।
संलेखन २ तप का निष्ठा से खोल दिया अभियान रे ।।१५।।

दोहा

सोलह दिन का थोकड़ा, फिर कर दो उपवास ।
छह दिन कर बेला किया, सावत्सर का खास ॥१६॥

शुक्ल अष्टमी भाद्र की, पचखे है दिन सात ।
आया है दिन पूर्णिमा, लाया स्वर्ण प्रभात ॥१७॥
थोड़ा अजवायन लिया, त्याग किया तत्काल ।
आया दिन बावीसवां, अनशन लिया विशाल ॥१८॥
संथारे के समय में, सज्जन मिले अनेक ।
मुक्त स्वर स्तुति गा रहे, छवि सतयुग की देख ॥१९॥
गण की बढी प्रभावना, हुआ धर्म उद्योत ।
भाई-बहनों में चला, त्याग तपोमय स्रोत ॥२०॥

लय—कोटि-कोटि कंठों से···

बढ़ते-चढ़ते परिणामों से दिवस अठारह वीते ।
केवल पन्द्रह पक्षों मे सब बाजी जीवन जीते ।
कार्तिक विद २ एकम को पाया पडित-मरण महान्[3] रे ॥२१॥

दोहा

श्रावक पनजी ने रची, सुदर ढाले चार ।
उनके जीवन वृत्त का, किया बहुत विस्तार[4] ॥२२॥

१. मुनिश्री जीवणजी मारवाड मे 'साचोर' के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से श्री श्रीमाल (लोहडा साजन) थे। उनके पिता का नाम सतीदासजी और माता का उगरा वाई था[1]।

जीवणजी क्रमश: तरुणावस्था को प्राप्त हुए। पूर्व जन्म के सस्कार से उनके मन मे विरक्ति की धारा प्रवाहित हुई। साधु-व्रत ग्रहण करने के लिए तैयार हुए। परन्तु आस-पास मे सच्चे त्यागी साधुओं का योग नही मिला। वे उस तलाश मे थे कि उन्होने सुना तेरापंथी साधु शुद्ध आचार का पालन करते है और उनकी श्रद्धा सर्वश्रेष्ठ है। 'जिन खोजा तिन पाईया' की उक्ति को हृदयंगम कर वे वहां से रवाना हुए। जोधपुर पहुच कर स्थानकवासी आचार्य जयमलजी के शिष्यो के साथ उन्होने वार्तालाप किया, किन्तु उनकी आत्मा मे सतोष नही हुआ। फिर पाली मे आकर तेरापथी श्रावको से पूछ ताछ की तो उन्होने कहा—'इस समय आचार्य भिक्षु के उत्तराधिकारी आचार्यश्री भारीमालजी है। वे शुद्ध साधुता का पालन करते है। उनके शिष्य मुनिश्री हेमराजजी (३६) का चातुर्मास इस वर्ष (स० १८६१) यही होने वाला है। वे आपाढ महीने मे यहा पधारेगे तव आपको अच्छी तरह साधु का आचार-विचार वतला देगे।'

यथासमय मुनि श्री हेमराजजी पाली चातुर्मास करने के लिए पधारे। जीवणजी ने सम्पर्क कर मुनि श्री से तेरापंथ के विपय की सारी जानकारी प्राप्त की। वे साधुओ की सत्य श्रद्धा और निर्मल क्रिया से वहुत प्रभावित हुए। उनकी वैराग्य भावना प्रवलतम हो गई और दीक्षा के लिए अनुनय करने लगे। मुनिश्री ने पहले आवश्यक तत्त्व ज्ञान सीखने के लिए कहा। वे साधु वनने के लिए इतने उत्कठित हो गये कि उन्होने सकल्प की भाषा मे कहा—'यदि घर वाले सहमत हों और आप दीक्षा दे तो मुझे घर मे रहने का त्याग है[2]। कुछ समय वहा ठहरकर उन्होंने मुनिश्री के पास तात्त्विक ज्ञान सीखा। फिर अपने गाव जाकर माता-पिता आदि से दीक्षा की आज्ञा मागी तो वे विल्कुल इन्कार हो गये। कई दिनों तक प्रयास करने पर भी सहमत नही हुए तव जीवणजी ने कहा—'मै घर से खर्च

---

१. मुरधर देश रे पिच्छम दिश रे, साचो गाव साचोर रे।
तिहा जीवणजी आय अवतर्‌या रे लाल, त्यारो भागज कीधो जोर रे।
त्यारो कुल ओसवाल जाणजो रे, साह सतीदासजी तात रे।
लोड़े साजन श्री श्रीमाल छै रे लाल, उगरादे रा अगजात रे।
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३)

२. जीवणजी भाखै भलो, मोने आगन्या देवै जेम।
मोने आप लेवो तरे, घर मे रेहण का छै नेम॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ३ दो० ५)

के लिए रुपये ले जाऊंगा और साधुओं की सेवा मे रहूगा। रुपये खत्म हो जायेंगे तब मांग-माग कर रोटिया ले आऊगा।' यह सुनकर ज्ञातिजनो ने देखा कि अब यह रहने वाला नही है तब आज्ञा-पत्र लिख कर दे दिया।[1]

जीवणजी साचोर से रवाना होकर हाली पहुचे। श्रावको को दीक्षा-स्वीकृति का पत्र दिखलाया। उस समय मुनिश्री हेमराजजी 'बरलू' विराज रहे थे। श्रावकों द्वारा सूचना मिलने पर मुनिश्री पाली पधारे। जीवणजी ने मुनिश्री को विनय-पूर्वक वदना कर आज्ञा का पत्र दिखलाते हुए दीक्षा के लिए प्रार्थना की। तव मुनि श्री ने स० १८६१ फाल्गुन शुक्ला ३ सोमवार के दिन पाली मे जीवणजी को दीक्षा प्रदान की।[2]

(जीवण मुनि गु० व० ढा० १ गा० १ से ढा० ३ गा० १ से ८ के आधार से)

ख्यात, शासन-प्रभाकर ढा० ४ गा० १६ से २५ तथा शासन-विलास ढा० ३ गा० २ की वार्त्तिका मे भी प्राय. इसी प्रकार वर्णन है।

२. मुनि श्री हेमराजजी साधुओ सहित वहा से विहार कर खेरवा पधारे। वहा होली चातुर्मास कर गोढ़वाल के क्षेत्रो मे विचरे। फिर सोजत होते हुए पीपाड मे भारीमलजी स्वामी के दर्शन किये। आचार्यश्री ने उनका चातुर्मास जैतारण फरमाया। उन्होने ४ साधुओं[3] से स० १८६२ का चातुर्मास जैतारण किया।

(जीवन मुनि गुण वर्णन ढा० ३ गा० ६ से ११ के आधार से)

३. मुनि श्री जीवनजी ने चातुर्मास मे सलेखना प्रारम्भ की। उन्होने सर्व-प्रथम १६ दिन का तप किया। फिर २ उपवास कर कुछ दिन वाद ६ दिन का तप करके सवत्सरी का एक वेला किया। भाद्रव शुक्ला छठ और सप्तमी को भोजन करके अष्टमी से सात दिन का तप किया। भाद्रव शुक्ला १५ को साधुओं

---

१. हू अठा सू जावसू रे, करसू धरम ने ध्यान।
रुपिया हुसी जिते रे, खावस्यूं पछे मागे ल्यावस्यू दान॥
न्यातीला जाण्यो खरो रे, रहता न दीखै कोय।
आगन्या दीधी सही, कागज लिख दियो सोय॥
(जीवण मुनि गु० व० ढा० ३ गा० ३,४)

२. फागुन सुद दिन तीज रै रे, वार सोम विचार।
समत अठारै इगसठे, पचख्या पाप अठार॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ३ गा० ८)

३. वड़ा सत सुखरामजी (६), हेमराजजी (३६) बुधवत।
भागचदजी (४८) मे गुण घणां, जीवणजी (५१) तपसी संत॥
(जीवण मुनि गु० व० ढा० ४ दो० १)

ने पारणा करने के लिए कहा। मुनिश्री ने कहा, 'पारणा करने का विचार नही है, थोडी अजवायन ला दीजिए।' साधुओ ने अजवायन लाकर दी। उन्होंने उसे लेकर तीनो आहारो का त्याग कर दिया। क्रमशः सोलहवां दिन आया उस दिन उन्होने सथारा करना चाहा पर साधु और श्रावको ने मना किया। उनकी विनति मानकर उन्होने सथारा तो नही किया पर चार दिन का प्रत्याख्यान कर दिया। इस तरह करते-करते इक्कीस दिन हो गये। बाईसवें दिन उन्होंने अरिहन्त सिद्धो की साक्षी से आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया। उनके सथारे के उपलक्ष मे त्याग वैराग्य की बहुत वृद्धि हुई। अनेक गांवो के लोग दर्शन करने के लिए आये। सतयुग की-सी रचना देखकर मुक्त कठो से मुनि श्री का गुणगान करने लगे।[1] मुनिश्री हेमराजजी ने उनको मगल सूत्र सुनाते हुए चार शरणे दिलाये। उन्होने सब साधुओ को हाथ जोडकर वदना की और बोले—'मेरी भावना दृढ है। अन्तिम उनचालीसवें (अनशन के अठारहवें) दिन उन्होंने हेमराजजी से चारों आहारों का त्याग कराने के लिये कहा।' सभी ने मना किया पर उन्होंने दृढतापूर्वक मुनि-साक्षी से चारो आहारों का परित्याग कर दिया। फिर सब साधुओ को वंदना कर एवं सभी जीवो से क्षमा-याचना करते-करते स० १८६२ कार्त्तिक वदि १ बुधवार को दिन के अन्तिम दुघडिया के समय जैतारण मे वे स्वर्ग पधार गये।[2] लगभग साढे सात महीनो मे आत्म-कल्याण कर लिया। श्रावको ने ४१ खडी-मडी बनाकर विशाल जुलूस के साथ उनके शरीर का दाह-सस्कार किया।

(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० १ से १६ के आधार से)

हेम नवरसा

> शैहर जैतारण बासठे, नवमो चोमासो सागी हो।
> नर-नारी समज्या घणा, जीवणजी अन्नत्यागी हो।
> बावीस पचख्या वैरागी हो॥

---

१. गुण ग्राम करै मुख सू घणां, धिन-धिन कहै हो आप मोटा अणगार।
चौथा आरा री हिवड़ा बानगी, देखाई हो सामी पांचमे आर॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा ४ गा० १३)

२. सर्व साधा नै वनणा करतां थकां, सब जीवा नै हो खमावता बारूबार।
इण रीते आऊखो पूरो कियो, समत अठारै हो बरस बासठे विचार॥सा०॥
काती बदी एकम रे दिन, वार जाणो ही बुधवार विचार।
पाछला दुघड़िया मे चलता रह्या, जीवणजी हो सैहर जैतारण मझार॥
(जीवण मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० १७, १८)

वावीसमे दिन पचखियो, संथारो वडभागी हो।
सतरै दिन रो आवियो, दिन गुणचाली सागी हो।
जिनमत महिमा जागी हो ॥
(हेम नवरसो ढा० ४ गा० १०, ११)

पंडित-मरण ढ़ाल

जीवणजी जैतारण मे जुगत सू, गुणचालीस दिन अणसण धारी ए।
सवत् अठारै ने वासठे, भारीमाल रो प्रथम शिष्य भारी ए ॥
(सत गुणमाला ढा० २-पडित-मरण ढा० १ गा० ८)

शासन-विलास

जीवण दीधी झीक, परभव नै पूरे मते।
साची सरधी सीख, पनरै पख मे कीधी फतै।
जीवण कियो जरूर, सथारो वड़ सूरमै।
कर्म किया चकचूर, दिन गुणचाली सीझियो ॥
(शासन-विलास ढा० ३ सो० ३, ४)

ख्यात शासन-प्रभाकर ढा० ४ गा० २६ से ३४ तथा शासन-विलास ढाल ३ गाथा १ की वार्त्तिका मे उनके सलेखना एव तप अनशन का विवरण इस प्रकार है—

१६ दिन की तपस्या के बाद ३ उपवास किये। फिर दो दिन आहार करके भादवा सुदि ८ को ७ दिन का प्रत्याख्यान किया। भादवा सुदि १५ को पारणे के दिन उन्होने अचित्त अजवायन मगाकर ली और उसी समय आसोज वदि १ से १३ तक तीनो आहारो का त्याग कर दिया। चौदहवे दिन सथारा ग्रहण किया। जो अठारह दिन से सम्पन्न हुआ। कुल इकतीस दिन हुए। उनमे १३ दिन सलेखना एव अठारह दिन अनशन के समझने चाहिए। ७ दिन पूर्व तप के और एक दिन अजवायन लेने का मिलाने से ३९ दिन होते है जैसा उपर्युक्त पद्यो मे कहा गया है। उपर्युक्त उल्लेखानुसार ख्यात तथा शासन-विलास ढा० ३ गा० २ की वार्त्तिका मे भादवा सुदि ८ के पूर्व की तपस्या मे कुछ भिन्नता है पर भादवा सुदि ८ से कार्त्तिक वदि १ तक ३९ दिनो की गणना मे अन्तर नही है।

हेम नवरसा मे कुल ३९ दिन की सख्या तो ठीक है पर अनशन के सतरह दिन लिखे है वहा अठारह दिन होने चाहिए। बावीसवे दिन अनशन प्रारभ करने व ३९वे दिन सम्पन्न होने के सम्बन्ध मे सभी ग्रथ एक मत है।

४. वलुदा निवासी श्रावक पनजी द्वारा रचित जीवन मुनि गुण वर्णन की चार ढाले 'प्राचीन गीतिका सग्रह' मे उल्लिखित हैं तथा चरित्रावली पुस्तक मे

प्रकाशित है। उनमे मुनिश्री के जीवन-संदर्भ में विस्तृत वर्णन किया है।

जयाचार्य ने मुनिश्री की स्मृति मे लिखा है—

जिन मार्ग मे जीवणजी स्वामी सुखदाय के, भारीमाल गुरु भेटिया जी।
अणसण कर नैं पहुता परभव माय के, पनरैं पक्ष मे कीधी फतैं जी॥

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० २३)

५।२।२।३ श्री दीपोजी (सिरियारी)

(दीक्षा स० १८६३, १८७७ मे दूसरी वार गणवाहर)

लय—रामायण

मारवाड में सिरियारी के वासी, 'दीप' वने अणगार[1]।
पर कुछ वर्षों वाद साधना का छोड़ा है मंगल द्वार।
पुनः सघ में आये[2] लेकिन अविनय प्रकृति चंडता से।
साल सतंतर में फिर उनको अलग किया गण-वनिका से[3]।।१।।

१. दीपजी सिरियारी (मारवाड) के वासी थे।

(ख्यात)

ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ३५ तथा सत विवरणिका मे उनका दीक्षा सवत् १८६५ लिखा है पर शासन-विलास ढाल १ गाथा ४१ की वार्तिका मे उल्लेख है कि स० १८६४ के देवगढ़ चातुर्मास में मुनि श्री हेमराजजी के साथ १. मुनि श्री सुखजी (३५) २. भागचन्दजी (४८) और (३) दीपोजी (५२) थे। अन्य कोई दीपोजी नाम के साधु उस समय नही थे अत: उनकी दीक्षा स० १८६३ मे ही प्रमाणित होती है।

२ दीपोजी के प्रथम वार गण से पृथक् होने का तथा नई दीक्षा लेकर वापस आने का सवत् नही मिलता। लेकिन हेम दृष्टान्त ३४ मे उल्लेख है कि सवत् १८६६ की साल मुनि श्री हेमराजजी ने पाली चातुर्मास किया तव वहा ६ साधु थे—१ मुनि श्री हेमराजजी (३६) २. सामजी (२१) ३. रामजी (२३) ४. भागचन्दजी (४८) ५ भोपजी (४६) ६. दीपजी (५२)। चातुर्मास के वाद मुनि श्री हेमराजजी अस्वस्थ होने से विहार नही कर सके। उस समय भारीमालजी स्वामी ने अपने पास से मुनि भगजी (४७) और जवानजी (५०) को मुनि श्री हेमराजजी की सेवा मे भेजा। वाद मे मुनि भगजी और दीपजी भारीमालजी के पास वापस आ गये। इससे लगता है कि दीपोजी उसके वाद ही गण से पृथक् हुए और फिर नई दीक्षा लेकर 'फिर सजम ले माहि रे' गण मे आये।

३. अविनीतता एव प्रकृति की कठोरता के कारण स० १८७७ मे उन्हे दूसरी वार सघ से अलग किया[1]। स० १८७७ वैसाख वदि ९ के लेखपत्र पर दीपोजी के हस्ताक्षर नही है, इससे लगता है कि उक्त तिथि से पहले उन्हे गण से पृथक् कर दिया गया था।

---

१. "अविनीत, अयोग्य, प्रकृति कठण जाण छोड्यो सततरे"

(ख्यात)

सिरियारी नो ताहि रे, दीपो चरण लेई टल्यो।
फिर सजम ले माहि रे, छूटो प्रकृति अजोग थी ॥

(शासन-विलास ढा० ३ सो० ५)

५।३।२।४ मुनि श्री गुलाबजी (गोगुंदा)

(संयम पर्याय १८६५-९५)

लय—इम सोचै राय उदाई…।

गुरु का अनुशासन धारा, शासन में जन्म सुधारा जी।गुरु…
पाया भव सिन्धु किनारा जी। गुरु…॥ध्रुवपद॥
मेवाड़ प्रान्त में गाया, पुर गोगुदा कहलाया जी।
थे पोरवाल परिवारी, विकसित धार्मिक कुल क्यारी जी।गुरु ॥१॥
वैराग्य भावना उमड़ी, आभ्यतर आखे उघडी जी।
ली वेणी मुनि से दीक्षा, पाई है सच्ची शिक्षा[1] जी ॥२॥
थे अच्छे ज्ञानी ध्यानी, बन गए मधुर व्याख्यानी जी।
विचरे हो अगुआ भू पर, उपकार किया है बहुतर[2] जी ॥३॥

दोहा

पाली में पावस किया, दिया धर्म उपदेश ।
लिखते इसके विषय में, छप्पय एक महेश[3] ॥४॥

गीतक-छन्द

अठंतर की साल पावस किया उज्जयिनी नगर।
सात संतों से पधारे धर्म की खोली नहर।
आमरण अनशन कराया सत पीथल को वहां।
दिवस पन्द्रह से फला है सुयश-ध्वज फहरा[4] महा ॥५॥
चक्र कर्मो का चला है भाग्य पलटा खा गया।
भावना में विपमता का वेग भीषण आ गया।
भिक्षु गण से पृथक् होकर चरण मणि को खो दिया।
बन गए है गृही, धारण वेष फिर यति का किया ॥६॥

दोहा

आठ साल के वाद में, लेकर दीक्षा नव्य ।
आये गण समुदाय में, कार्य किया है भव्य ॥७॥
वेले-वेले पारणा, चालू किया नितान्त ।
त्याग दिये है द्रव्य सव, रोटी जल उपरान्त[५] ॥८॥
पुनरपि धक्का लग गया, दो वर्षो के वाद ।
शंका से दिल भर गया, वोले अवगुण-वाद ॥९॥
जय ने संशय दूर कर, शान्त किया है चित्त ।
लेख पत्र करवा लिया, देकर प्रायश्चित्त[६] ॥१०॥

रामायण-छन्द

नवति चार वत्सर मे पावस किया पंच मुनि सह पुर में ।
पुनः दिमाग हो गया दूषित शकित मानस अन्दर में ।
गति विचित्र कर्मो की जिससे चित्र हो गया हैं धुंधला ।
मिलने से मिट्टी पैरों की हो जाता पानी गुदला ॥११॥
लगे वोलने मुख से अकवक भारी भावावेश वढ़ा ।
ईशर मुनि के कहने पर भी नही शान्ति का पाठ पढ़ा ।
गुरु दर्शन कर राम व्रती ने कही हकीकत वह सारी ।
युवाचार्य सह गणपति आये वातावरण हुआ भारी ॥१२॥
तोड़ दिया सवध सघ से गुरु ने उनका सोच विचार ।
जय के समझाने से समझे आये रास्ते आखिरकार ।
श्री ऋषिराय चरण में झुककर की अपनी भूले स्वीकार ।
प्रायश्चित्त लिया परिपद् मे पाये जन आश्चर्य अपार ॥१३॥

लय—इम सोचै राय उदाई···।

प्रातः का भूला जो नर, सांय यदि आये घर पर जी ।
रहता न जरा भी धोखा, झुक जाता ऊर्ध्व झरोखा जी[७] ॥१४॥

दोहा

अमीचद अणगार को, दी सयम व्रत छाप[८] ।
अनशन पर दीर्पपि के, थे सेवा में आप[९] ॥१५॥

१. मुनि श्री गुलावजी गोगुदा (मेवाड) के निवासी और जाति से पोरवाल थे। स० १८६५ मे उन्होने मुनि श्री वेणीरामजी (२८) द्वारा सयम ग्रहण किया। उनके छोटे भाई ईशरजी (६०) ने स० १८६६ मे उनके वाद दीक्षा ली। (ख्यात)

२. मुनि गुलावजी गण मे अच्छे सत थे। अग्रणी होकर विहरण करते थे। हेतु दृष्टान्तो के जानकार एव सरस व्याख्यानी थे। स० १८७१ फाल्गुन वदि १३ को रचित सत गुणमाला ढा० १ गा० २४ मे जयाचार्य ने उनके लिए लिखा है—

'सत गुलावजी गण मझै रे, पालै गुरु नी आण रे।
हेतु दृष्टान्त देवै भला रे, वाचै सरस वखांण रे॥'

३. उन्होने सभवतः सं० १८७८ के पूर्व पाली चातुर्मास किया। इसका कृष्ण-गढ निवासी श्रावक महेशदासजी ने अपने छप्पय मे इस प्रकार वर्णन किया है—

गहिरा साधु गुलावजी सव जीवा सुखदाय।
पाली कीधो प्रेम सू चौमासो चित लाय।
चौमासो चित लाय त्याग वैराग वधाया।
सूतर अरथ सिधत वहु विध भेद वताया।
हलुकर्मी हर्षै घणा सुणत रपी की वाय।
गहिरा साधु गुलावजी सव जीवा सुखदाय॥१७॥

(श्रा० महेश कृत पूजगुणी)

४. स० १८७८ का मुनि गुलावजी ने सात साधुओं से नयापुरा (उज्जैन) मे चातुर्मास किया। वहा मुनि पीथलजी (७२) 'छोटा' उनके साथ थे। मुनि पीथल-जी एक दिन शहर से गोचरी करके वापस नयापुरा आ रहे थे। रास्ते मे शारीरिक क्षीणता का अनुभव हुआ तव स्थान पर आकर उन्होने मुनि गुलावजी से संथारे के लिए निवेदन किया। मुनि गुलावजी ने उनकी प्रवल भावना देखकर किसी को पूछे विना ही तत्काल उन्हे अनशन करवा दिया। फिर साधु एव श्रावको को कहा—'पीथलजी ने अनशन कर लिया है।' यह सुनकर सभी आश्चर्य-चकित हुए। पन्द्रह दिनो मे उनका कार्य सिद्ध हो गया। जैन शासन का वहुत उद्योत हुआ[1]।

---

१. तपसी कहै कर जोडी नै हो, नगर उजैणी चौमास।
गुलावजी कियो सात सत सू हो, लघु पीथल त्यारै पास॥
नवापुरा थी जाय नै हो, गोचरी शहर मे कर पाछा आय।
डील वीखरियो जाण नै हो, पीथल माग्यो सथारो ताय॥
साध श्रावक बैठा घणा हो, पिण किण ही नै न पूछयो ताय।
विण पूछ्या लघु पीथल भणी हो, दीयो सथारो कराय॥

स० १८७८ मे साध्वी श्री अजवूजी (३०) का चातुर्मास उज्जैन शहर मे था। (देखे समीक्षा उनके तथा मुनि पीथलजी (७२) के प्रकरण मे)

५. जगत् मे होनहार वलवान होती है वह ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देती है कि जिसकी सभावना एव कल्पना भी नही की जा सकती। इसके कारण ही मुनि श्री गुलावजी के जीवन मे वड़ी दुर्घटना घटी। वे स० १८८२ मे गण से पृथक् होकर गृहस्थ श्रावक वन गये। समयान्तर से यति हुए। ८ वर्ष पश्चात् वापस उनकी भावना शुद्ध हुई तव स० १८९० मे नई दीक्षा लेकर सघ मे आये। वेले-वेले की तपस्या चालू की। पारणे मे जौ की रोटी को पानी मे डालकर खाते। शेप सव द्रव्य खाने का त्याग कर दिया।

(ख्यात)

६. दो वर्ष तक साधना का क्रम ठीक चला। स० १८९२ मे उन्होंने मुनि श्री अमीचन्दजी (८०) के साथ नाथद्वारा चातुर्मास किया। वहा वे शकाशील हो गये। गण मे ४१ दोप निकाले। मुनि अमीचन्दजी ने एक पन्ने मे लिख लिए। चातुर्मास के वाद सात साधुओ से अमीचन्दजी ने खेरवा मे आचार्य श्री रायचदजी के दर्शन कर उपर्युक्त पत्र प्रस्तुत किया। उस समय मुनि श्री जीतमलजी आचार्य श्री के दर्शनार्थ वहा पधारे हुए थे। उन्होने मुनि गुलावजी के प्रश्नो का यथार्थ जवाव देकर उन्हे नि·शक कर दिया। प्रायश्चित्त दिलवा कर उनसे एक लेखपत्र करवा लिया। जिसमे आजीवन साधु-साध्वियो के अवर्णवाद वोलने का त्याग करवा दिया'।

अणसण कराय नै वोलिया हो, साध श्रावक सुणजो वाय।
पीथैजी अणसण कियो हो, सुण नै सहु अचरज थाय॥
पनरै दिन रो पीथल भणी हो, अणसण आयो सार।
जिन मार्ग पिण दीप्यो घणो हो, मालव देश मझार॥

(कोदर मुनि गुण वर्णन ढा० ४ गा० ३० से ३४)

१. त्या अमीचदजी तिह समै, सात सत सू जोय।
नाथद्वारे चोमास करी, जिहा आया अवलोय।
इकतालीस वोला तणी, गुलावजी रे मन माहि।
सक पडी ते वोल सहु, लिख्या पत्र मे ताहि।
तास जाव जय दै करी, सक मेटी तिह ठाम।
प्रायछित दे तेहनू, लिखत करायो ताम।
तिण मे सत सतिया तणी, जेह उतरती वात।
करवा जावजीव लग, त्याग किया विख्यात।

(जय सुजश ढा० २२ दो० १ से ४)

प्रकीर्णक पत्र २७ प्रकरण ४ मे लिखा है कि मुनि श्री गुलावजी के शंका पड़ी तव मुनि श्री जीतमलजी ने २७ वोलों का जवाव दिया जिससे उनकी सव शंकाए मिट गई।

यह सुनकर अमीचन्दजी वहुत नाराज हो गये। गुलावजी (जिन्होने उनको दीक्षा दी थी) के साथ पहले से ही प्रकृतिजन्य मनमुटाव होने के कारण वे उनसे अधिक द्वेष भावना रखने लगे और उन्हे गण से पृथक् करवाने का उपाय खोजने लगे।

७. कर्मो की गति वड़ी विचित्र होती है। वह वड़े-वड़े पुरुषो को भटका देती है। उसने फिर मुनि गुलावजी को घेर लिया। स० १८९४ का मुनि गुलावजी ने ५ ठाणों से पुर (मेवाड़) मे चातुर्मास किया। १. मुनि श्री ईशरजी (९०) उनके छोटे भाई, २. उदैरामजी (९४) ३ रामोजी (१००) तथा ४. जीवराजजी (११३) उनके साथ थे। गुलावजी तपस्या वहुत करते थे। जिसका लोगों मे अच्छा प्रभाव था। परन्तु मोहकर्म के उदय से उनके विचार संदिग्ध हो गए। एक दिन भीलवाड़ा के श्रावक भोपजी सिंघी दर्शनार्थ आए तव उन्होने कहा—'भोपजी ! जिस तरह साहूकार के घर मे घाटा हो और ऊपर से काम चलाए तो कितने दिन काम चल सकता है ?' भोपजी अन्तर भेद को समझ गए और वोले —'घाटा समझने के वाद जो हमेशा उनके साथ रहे तो उसे क्या कहना चाहिए ?' यह सुनते ही वे आवेश मे आ गए और गण के अवर्णवाद वोलने लगे। मुनि ईशरजी ने उन्हे वहुत रोका तव उस दिन तो रुके पर दूसरे दिन फिर उसी तरह अटसट वोलने लगे। तव मुनि रामजी ने वहा से विहार कर नाथद्वारा में आचार्य ऋषिराय के दर्शन किये। सव समाचार सुनकर आचार्य श्री रायचन्दजी ने युवाचार्य आदि ८ साधुओ से पुर की तरफ विहार कर दिया। कांकडोली, गंगापुर होते हुए कारोही पधारे तव भोपजी सिंघी ने दर्शन कर आचार्य श्री से विनती की—'गुलावजी ने अपने वोलो का संकोच कर कहा है कि मेरे ४ वोलो की शंका है उनके समाधान के समाचार हेमराजजी स्वामी से मंगवा लें, वे जो कहेंगे वह मुझे स्वीकार है।' युवाचार्य श्री जीतमलजी ने कहा—'ये तो प्रारंभ के ही वोल है इनके लिए क्या समाचार मंगवा लें?' दूसरे दिन आचार्य श्री जव पुर पधार रहे थे तव गुलावजी ने कहलाया एक साधु आकर कह दे कि 'स्वामीजी की वनाई हुई सव मर्यादाए हमे मान्य है तो मैं सम्मुख आकर आपके चरणो मे गिर जाऊ।'

युवाचार्यश्री ने कहा—'हमे तो स्वामीजी की सभी मर्यादाएं मान्य है। इसके लिए साधुओं को भेजकर क्या कहलाएं।' युवाचार्य श्री ने आचार्य श्री से निवेदन किया—'गुलावजी सामने आकर पैरों मे गिर जाए तो ठीक है वरना इनसे आहार-पानी का संवंध विच्छेद कर देना है।' लोगो ने ऋषिराय से प्रार्थना की कि आप एक साधु को भेज दें तो क्या आपत्ति है ? आचार्यश्री ने उपयुक्त न समझ कर

साधु नही भेजा। गुलावजी को यह समाचार मिला तव उनके साथ तीन साधु और थे उनमे से मुनि जीवराजजी (११३) तो एक कोस सामने आकर ऋषिराय के चरणो में गिर गए। गुलावजी और उनके साथ के दो साधु ईशरजी व उदैरामजी नही आए।

ऋषिराय पुर मे पधार कर गुलावजी के पास ही दूकानो मे विराजे। युवाचार्य श्री ने लोगो को दो वर्ष पूर्व किया गया गुलावजी के हाथ का लिखित (लेखपत्र) सुनाया। जिसमे उन्होने गण के साधु-साध्वियों के अवगुण वोलने का त्याग किया था। गुलावजी ने युवाचार्य श्री से कहा—'मैं स्वामीजी को तीर्थंकर देव के समान जानता हू।' युवाचार्य श्री वोले—'स्वामीजी ने 'अविनीत-रास' मे अधिक दिनो के वाद दोप निकालने वाले को दोषी वतलाया है।'

गुलावजी गुस्से मे आकर वोले—'पहले तो कठिनाई मे चलते थे। अव ढिलाई आ गई है।' युवाचार्य श्री ने कहा—'दो वर्ष पहले तुमने अवगुण वोलने का त्याग किया उस समय तो कौन-सी कठिनाई थी और अव कौन-सी ढिलाई है?' वे वोले—'मैंने अवगुण वोले उसका मुझे प्रायश्चित्त आ जाएगा पर सिर तो नही कटेगा।' फिर युवाचार्य श्री ने कहा—'तुम इतने वर्प कपटपूर्वक गण मे क्यो रहे?' इस पर गुलावजी रोष मे आकर वकवास करते हुए अपने स्थान पर चले गये। दूसरे दिन भी उसी तरह वोलने लगे। सध्या के समय युवाचार्य श्री से कहा—'मैं गले तक भरा हुआ हू, मेरी कोई सुनने वाला नही है।' तव युवाचार्य श्री ने सोचा—'सव लोगो ने इन्हे जान तो लिया ही है अव वात को समेट लेना चाहिए।' ऐसा विचार कर युवाचार्य श्री साय प्रतिक्रमण के पश्चात् ऋषिराय की आज्ञा प्राप्त कर दूकानो के छज्जो के नीचे से होकर गुलावजी के पास गये। गुलावजी ने उनके सम्मुख अनेक साधुओ के नाम लेकर अवर्णवाद वोले। युवाचार्य श्री सुनते गये। वे लगभग दो-अढ़ाई मुहूर्त्त तक अपने मन की भाप निकालते रहे। फिर युवाचार्यश्री ने मधुर वचनो से उन्हे शान्त किया। चारो वोलो का जवाव दिया। तव वे प्रसन्न होकर वोले—'आपने शान्तिपूर्वक मेरी वाते सुनी, इससे मुझे वड़ा सतोप मिला।' युवाचार्य श्री ने उन्हे प्रायश्चित्त की गतिविधि वतलाई। वे उसे अच्छी तरह समझ गये।

युवाचार्य श्री ने सव वातें ऋषिराय से निवेदित की। तीसरे दिन सेवार्थी तपस्वी मुनि उदैचन्दजी (६४) को एकान्त मे समझाया। वे गुलावजी का मुकावला करने लगे। अपना पक्ष टूटने से गुलावजी ढीले हो गये। युवाचार्य श्री ने गुलावजी को पुन. समझाया तव वे वोले—'मुझे आपका भरोसा है वस आप मुझे आराधक कर दीजिए।' उनसे पूछा कि प्रायश्चित्त किससे स्वीकार करोगे? गुलावजी ने कहा—'आप जो देगे वह मुझे मजूर है।' युवाचार्यश्री ने कहा—'आचार्य श्री के पास जाकर वदना कर प्रायश्चित्त मागो।' तव उन तीनो साधुओं

ने ऋपिराय के पास आकर जन-समूह मे 'तिक्खुत्ता' के पाठ से वदना कर प्रायश्चित्त मांगा। लोग बडे आश्चर्यान्वित हुए। गुरुदेव ने प्रायश्चित्त (चातुर्मासिक छेद) देकर उन्हे संघ मे सम्मिलित किया।

(जय सुजश ढा० २४, २५ के आधार से)

८. प्रकीर्णक पत्र २७ प्रकरण ४ में लिखा है कि स० १८७५ में उन्होंने मुनि अमीचदजी (८०) कोचला वालों को दीक्षा दी।

९. स० १८९३ फाल्गुन मे मुनि श्री दीपजी (८५) ने पुर मे अनशन किया। तब मुनि श्री जीवोजी (८६) और गुलावजी उनकी सेवा मे थे।[1]

१० स० १८९५ पुर मे उन्होंने ९ दिन का सथारा कर पडित-मरण प्राप्त किया।[2] अन्त मे अपना जीवन सुधार लिया।

(ख्यात)

ख्यात मे उनके सवध का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

'गुलावजी गोगुदा रा पोरवाल ईशरदासजी रा भाई, दीक्षा वेणीरामजी स्वामी १८६५ दीधी। अने १८८२ निकल गृहस्थ श्रावक थयो पछै जती होय १८९० दीक्षा फेर लीधी। बेले-बेले पारणो करणो, पारणा मे जवां री रोटी पाणी मे घाल नें खावणी और द्रव्य का जावजीव त्याग किया। फेर कर्म जोग सू पुर मे शका पड़ी, टोला बारै थयो। पछै ऋपिराय महाराज अनें पाटवी जीतमलजी स्वामी पुर मे आय उणा नै ओलखायो। रास (अविनीत रास) लिखत सूत्र री अनेक वाता सू लोक तो घणकरा समझ गया अने जोर न चाल्यो। पछै गुलावजी नै पण वोला रा अनेक जाव देई समझायो। पछै गुलावजी पगां पड़्या। विनो करी प्राछित लेवा नै त्यार थया जरै चौमासी रो छेद देई मांहिनै लिया। पछै तपस्या मोकली करी, १८९५ सथारो ९ दिन रो आयो।'

शासन प्रभाकर···भारी सत वर्णन ढा० ४ गा० ३६ से ४५ मे ख्यात की तरह ही विवरण है।

---

१. लघु वधव(जीवोजी) गुलाव ऋप इम कहै, तपसीजी हो सथारो दुक्करकार।
(दीप मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १८)

२. गुलाव दीक्षा ग्रही नीकल फुन, चरण नेऊअे वासो रे।
चोराणूंअे टल छेद लइ नै गण, पुर मे परभव तासो रे॥
(शासन-विलास ढा० ३ गा० ६)

५४।२।५ मुनि श्री मोजीरामजी (गोगुदा)

(सयम पर्याय-१८६५-६६)

लय—होली खेलो…।

मोजीराम जी हाक मोजीराम जी, शासन उपवन में रम कर फूले हो।
मोजीराम जी …।
साहस से शम रस झूले में जमकर झूले हो।
मोजीराम जी ।। ध्रुवपद।।

मेदपाट मे पुर गोगुदा, जन्म-भूमि कहलाई हो।
हो विरक्त वेणी मुनि द्वारा, दीक्षा पाई हो[१]। मो…।।१।।
साधु-क्रिया में कुशल वने है, गण गणपति मे निष्ठा हो।
ज्ञान ध्यान की तन्मयता से, वढी प्रतिष्ठा हो।।२।।
किये पांच आगम कंठ स्थित, सीखी साथ 'हुडियां' हो।
वहु वर्षो तक रखे सुरक्षित, कर कर स्मृतिया हो।।३।।
वाक्-पटुता व्याख्यान-कुशलता, चर्चादिक में नामी हो।
उद्यम से उन्नति कर पाये, सद्गुण-धामी हो[२]।।४।।
अग्रगण्य वन विचरे भू पर, सरितावत् उपकारी हो।
किया वहुत उपकार, सार रस सीचा भारी हो।।५।।
तपः प्रेरणा देते बहुधा, तात्त्विक ज्ञान सिखाते हो।
जन-जन को हित शिक्षा दे सन्मार्ग दिखाते हो[३]।।६।।
उपवासादिक किया विविध तप, दिन चालीस ऊर्ध्वतर हो।
तप मे भी व्याख्यान दिया है, पौरुष धर कर हो[४]।।७।।
एक वार की बात-मुनि श्री पुर लावा में ठहरे हो।
पता चला जव कहते मुख से, गुरुवर गहरे हो।।८।।
मोजीराम अभी लावा मे, क्यों ठहरा विन अवसर हो।
करते लोग कदाग्रह, रहना नही शुभंकर हो।।९।।

दोहा

दृष्टिकोण गुरुदेव का, नही उन्हे था ज्ञात।
जिससे रुक पाये वहां, वे कितने दिन रात ॥१०॥

लय—होली खेलो…।

गुरु दर्शन के लिये आ रहे, राजनगर में चलकर हो।
मोजीराम आ रहा मुनियों, कहते प्रभुवर हो ॥११॥

उसको नही वंदना करना, और न सम्मुख जाना हो।
स्वीकृत कर गुरु वचन देखते, संत निशाना हो ॥१२॥

दर्शनार्थ मुनि निकट आ गये, झाक रहे सब सस्मित हो।
पर न किसी ने हाथ बढ़ाया, मुनि वंदन हित हो ॥१३॥

विस्मित हो वे सोच रहे क्या, मै न गया पहचाना हो।
अथवा कारण बना दूसरा, जो अनजाना हो ॥१४॥

भारी गुरु को सविधि वदना, की मुनिवर ने झुक-झुक हो।
प्रभु बोले अब करो वदना, हो सब उत्सुक हो ॥१५॥

रग खिला ज्यो मिला दूध में, मधुर इक्षु रस ताजा हो।
प्रेम परस्पर देख फूलता, जन मन राजा हो ॥१६॥

उपालभ बहु दिया साथ में प्रायश्चित्त यथोचित हो।
डटे रहे वे धैर्य भाव से, हुए समर्पित हो ॥१७॥

शासन भक्त सशक्त श्रमण ने, पीली कड़वी घूटे हो।
किंतु न श्रद्धासिक्त सुगुरु से, हुये अपूठे हो ॥१८॥

वृद्धि दिनोदिन हुई गुणों की, कीर्त्ति सघ में फैली हो।
खरी कसौटी की बन पाये, एक पहेली हो[१] ॥१९॥

दोहा

हुए आपके हाथ से, दीक्षित मुनि शिवलाल[६]।
हीर तपस्वी आपके, रहे साथ कुछ साल[७]॥२०॥

लय—होली खेलो…।

अष्टादश शत नवति नवाधिक, नाथद्वारा पुर में हो।
अनशन व्रत उन्नत ले पहुंचे, है सुरपुर में हो[८] ॥२१॥

दोहा

मौजी-मोजीराम का, अमर संघ में नाम।
गुण वर्णन की गीतिका, मिलती दो अभिराम[१] ॥२२॥

१. मुनि श्री मोजीरामजी गोगुदा (मेवाड़) के वासी थे। उन्होंने मुनि श्री वेणीरामजी (२८) के पास दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० ४९)

जयाचार्य विरचित मोजी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गाथा ११ में उनका दीक्षा सं० १८६७ लिखा है—

"सतसठे संजम लीधो, तप जप बहुलो कीधो।
जीत नगारो दीधो रे, कांड समत अठारै निनाणुवे ए ॥"

परन्तु ख्यात में उनके पहले की दीक्षा सं० १८६५ की और बाद की सं० १८६५ की है अतः उनका दीक्षा सवत् १८६५ ही अधिक सगत लगता है। स्वय जयाचार्य ने अपनी कृति 'संत गुण माला' ढा० १ गा० २५ मे पहले मुनि मोजीरामजी के और पीछे गा० २६ मे मुनि पीथलजी (क्र० ५६ स० १८६६ मे दीक्षित) के नाम का उल्लेख किया है, इसमे भी मोजीरामजी का दीक्षा संवत् १८६५ ही सिद्ध होता है। उक्त ढाल में 'सतसठे सजम लीधो' के स्थान पर 'पैंसठे संजम लीधो' होना चाहिए।

मुनि जीवोजी (८६) ने उनकी गुण वर्णन ढाल मे लिखा है कि वे बाल-ब्रह्मचारी थे और तरुण वय मे दीक्षित हुए[1]। इससे स्पष्ट हो जाता है कि वे अविवाहित वय मे दीक्षित हुए।

२. उन्होंने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, आचारांग का दूसरा श्रुतस्कध तथा अनेक सूत्रों की हुंडियां (सक्षिप्त नोंध रूप) कंठस्थ की। आगमो के अतिरिक्त आख्यानादिक के हजारों पद्य सीखे। अनेक वर्षो तक मुखस्थ ज्ञान का स्वाध्याय (पुनरावर्तन) करते रहे। उनकी व्याख्यान कला व चर्चा-शैली आकर्षक थी। लोगो को ज्ञान-ध्यान सिखाने का तथा त्याग-तपस्या द्वारा उनमें अध्यात्म भावना भरने का अच्छा प्रयत्न करते थे।

(जयाचार्य कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० १ से ७ के आधार से)

३. मुनिश्री सं० १८७५ के पूर्व अग्रणी हो गये थे। सं० १८७५ में उनका चतुर्मास कोचला ग्राम मे था। वहां मुनि श्री जोधोजी (४६) और माणकचंदजी (७१) उनके साथ थे। ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० १ गा० ५१ की वार्त्तिका मे है। उन्होंने अनेक क्षेत्रों मे विचरकर अच्छा उपकार किया[2]।

---

१. मुनि वासी गोगुदा ना वाजिया रे, तरुणपणा मे व्रत धार रे।
वाल ब्रह्मचारी बुध आकरी रे, हुवा-हुवा गुणा रा भंडार रे ॥
(गुण वर्णन ढा० १ गा० २)

२. विचर्या मरुधर मेवाड़ो, हाड़ोती थली ढुंढारो।
वलि मालव देश मझारो रे, उपगार कियो स्वामी अति घणो ॥
(जय कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० ६)

४. मुनिश्री ने बहुत तपस्या की। ऊपर में आछ के आगार से ४० दिन का तप किया। तप के समय भी वे व्याख्यान देते थे।[1]

५. स० १८७७ के पोष महीने मे मुनिश्री स्वरूपचदजी (६२) ने मुनिश्री जीवोजी (६६) गंगापुर वालो को जगल मे दीक्षा दी। दीक्षा के समाचार सुनकर जीवोजी के बड़े भाई दीपोजी आवेश मे आ गये। उन्होने लावा आदि ग्रामो मे जाकर शासन एवं शासनपति की आलोचना व निन्दा की जिससे वहा के श्रावक लोग उनके पक्ष मे होकर सघ से विमुख हो गये। (इस घटना का विस्तृत वर्णन मुनि श्री जीवोजी और दीपोजी के प्रकरण मे पढे)।

मुनिश्री मोजीरामजी स० १८७७ का चातुर्मास सपन्न कर गुरु दर्शनार्थ राजनगर की तरफ जा रहे थे। रास्ते मे कुछ दिन लावा मे ठहर गये। उस समय आचार्य श्री भारीमालजी काकडोली विराजते थे। उनका चिन्तन था कि लावा के श्रावक अनास्थाशील होकर बहुत उदगल करते है, ऐसी स्थिति मे साधु-साध्वियो को वहा नही ठहरना चाहिए। लेकिन मुनि मोजीरामजी को गुरुदेव का अभिप्राय ज्ञात नही था, इसलिए वे कई दिन वहा रुक गये।

जब वे (माघ या फाल्गुन महीने मे) राजनगर मे प्रवेश करने लगे तब आचार्य श्री भारीमालजी ने सब साधु-साध्वियो को आदेश दिया कि मेरी आज्ञा के बिना कोई भी उन्हे वदन न करे। मुनि मोजीरामजी बाजार के बीच स्थान के सम्मुख पहुच गये। सब साधु-साध्वी उनके सम्मुख झाकने लगे पर किसी ने भी उनको वदना नही की। तब वे आश्चर्य और विस्मय भरी नजरो से सब की तरफ देखने लगे।। मन मे विविध कल्पना करते हुए उन्होने भारीमालजी स्वामी को सविनय बद्धांजलि वंदन किया। तब आचार्य श्री ने साधु-साध्वियो को उन्हे वदना करने का आदेश दिया। आचार्य प्रवर ने उन्हे उलाहना देते हुए फरमाया—'तुम मेरी दृष्टि के बिना लावा मे क्यो रहे?' उन्होने निवेदन किया—'गुरुदेव ! मुझे यह जानकारी नही थी।' फिर भी गुरुदेव के कड़े उपालम्भ को उन्होने भर परिषद् मे बड़ी क्षमता के साथ सहन किया और आचार्य श्री ने जो प्रायश्चित्त दिया उसे सहर्ष स्वीकार किया।

उनकी गुरु-भक्ति, सघ निष्ठा और सहनशीलता से लोग बड़े प्रभावित हुए। वे कडी परीक्षा मे खरे उतरे और धैर्य पर डटे रहे जिससे उत्तरोत्तर उनके गुणो की अभिवृद्धि हुई और चार तीर्थ मे अच्छी प्रतिष्ठा बढी।

(दीपोजी (८५) जीवोजी (८६) की ख्यात से)

---

१. पोते पिण बहु तपस्या कीधी, चालीस ताई हद लीधी।
आछ आगारे प्रसीधी रे, तपस्या मे वखाण छोड्यो नही॥
(जय कृत गुण वर्णन ढा० १ गा० ८)

जयाचार्य ने उक्त सदर्भ में लिखा है—

तीन ठाणे मोजीरामजी, विण मुरजी लावा मे रहिवाया हो।
राजनगर आया पूज आगले, सुण स्वाम सता नै बोलाया हो॥
कोई वदणा यां नै कीजो मती, हिवै मोजीरामजी आया हो।
देखै सहु साध साधवी, पिण किण नवि शीष नमाया हो॥
पछै आय पूज पगा लागिया, भारीमाल हुक्म फुरमाया हो।
जब वदणा कीधी साध साधव्या, निषेधी तसु दड दिराया हो॥

(साधु शिक्षा की ढा० गा० ३९ से ४१)

६. मुनि शिवलाल 'गुण वर्णन' ढाल गा० १ मे उल्लेख है कि मुनि शिवलालजी (११७) ने मुनि श्री मोजीरामजी के पास (स० १८९५) मे दीक्षा ली।[1]

७. तपस्वी मुनिश्री हीरजी (७६) ने उनके साथ कई चातुर्मास किये[2]।

८. मुनिश्री ने स० १८९९ मे अनशनपूर्वक समाधि मरण प्राप्त किया[3]।

(ख्यात)

गुण वर्णन ढाल १ गा० १२ मे उनका स्वर्ग स्थान नाथद्वारा लिखा है—

'श्रीजीद्वारे परभव गया'

९. मुनि श्री के गुणो की ढाल १ जयाचार्य रचित 'सत गुण वर्णन' मे तथा ढाल १ मुनि श्री जीवोजी (८६) रचित 'प्राचीन गीतिका सग्रह' मे है।

जयाचार्य ने सत गुणमाला मे उनके गुणों का स्मरण करते हुए लिखा है—

मोजीरामजी स्वामी मुनीसरु रे, ते तो सजम पालै चित्त ल्याय रे।
गामा नगरा विचरै गूजता रे लाल, टालै च्यार कषाय रे॥

(सत गुणमाला ढा० १ गा० २५)

मोजीरामजी सैहर गोगुदा रा जाण कै, भारीमाल गुरु भेटिया जी।
कठ कला धर वहु सूत्र मुहढ़ै पिछाण कै, ऋषराय तणै वारे चल्याजी॥

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४३)

---

१. ऋषि शिवलाल सुहामणो रे, सुमति गुप्त सुखकार।
मोजीरामजी स्वामी कनै, लीधो सजम भार॥

(मुनि शिवलाल गुण वर्णन ढा० १ गा० १)

२. केतलाएक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा।
त्या पिण वोहत जस लीधा रे॥

(हेम मुनि विरचित हरी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ७)

३. गोगुदा ना मोजीरामजी, वेणीरामजी पासो रे।
दीक्षा लेई वर्ष निनाणुअे, सथारो सुख रासो रे॥

(शासन-विलास ढा० ३ गा० ७)

५५।२।६ श्री जयचंदजी (कंटालिया)

(दीक्षा स० १८६५-१८६६ मे गणबाहर)

रामायण-छन्द

कंटालिया ग्राम के वासी स्त्री को तज करके जयचंद।
पाली में मुनि हेम पास में साधु बने धर विरति अमंद[1]।
दस दिन का तप चालू जिसमे किये पाच दिन पानी बिन।
अधिक प्यास लगने से धोवन अधिक पी लिया छठे दिन ॥१॥

जिससे उधड़ा शीत अंग में किया विविध औषध-उपचार।
पर न मिटा है रोग कर्म वश दुर्बलतम हो गये विचार।
निशा समय मे निकल संघ से चले गये वे अपने घर।
बन गृहस्थ श्रावक व्रत पालन करते गण सम्मुख रहकर[2] ॥२॥

१. जयचदजी मारवाड मे कटालिया के वासी थे। उन्होंने पत्नी को छोडकर सं० १८६५ के आपाढ महीने मे मुनिश्री हेमराजजी (३६) से पाली मे दीक्षा ली।

(हेम दृष्टात ३४)

ख्यात, तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ४८ मे उनका दीक्षा संवत् १८६६ लिखा है जो चैत्रादि क्रम से है। सत विवरणिका मे उनकी दीक्षा मुनिश्री वेणीरामजी के हाथ से लिखी है जो उपर्युक्त प्रमाण से गलत है।

२. मुनिश्री हेमराजजी स० १८६६ का चातुर्मास करने के लिए आपाढ़ महीने मे छह साधुओं से पाली पधारे। जयचन्दजी के दीक्षित होने पर सात ठाणें हो गये। वहा मुनि भोपजी (४६) ने ५८ दिन की तपस्या का पारणा करने के पश्चात् अनशन ग्रहण किया। उस उपलक्ष मे जयचदजी ने १० दिन तप करने का सकल्प किया। पाच दिन चौविहार किये। छठे दिन प्यास अधिक लगने से धोवन-पानी अति मात्रा मे पी लिया, जिससे तत्काल शीत उधड़ गया[1]। औषध का उपचार भी किया पर रोग शांत नही हुआ। तब वे मानसिक दुर्बलता के कारण रात्रि के समय गण से अलग होकर कटालिया चले गये।

(हेम दृष्टात ३४)

गृहस्थ बनने के पश्चात् उन्होने श्रद्धा मे दृढ रहकर श्रावक के व्रतो का पालन किया और साधु संघ के प्रति अनुकूल रहे[2]।

(ख्यात)

---

१. शीत - (शीतांग, सन्निपात) चित्त विभ्रमता होने से पागल की तरह सुध-बुध रहित होना।

२. कटाल्या नो ताय रे, जयचद त्रिय तज चरण ग्रही।
शीत वशे गृह आय रे, पाल्या व्रत श्रावक तणा॥

(शासन-विलास ढा० ३ सो० ८)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ४८ मे ऐसा ही उल्लेख है।

५६।२।७ मुनि श्री पीथलजी 'बड़ा' (बाजोली)

(सयम पर्याय स० १८६६-१८८३)

लय—म्हांरे घणां मोल रो…।

कैसी पीथलजी स्वामी ने तप की बाजी खेली रे।
खेली-खेली-खेली रे की पूर्ण पहेली रे। कैसी ।।ध्रुवपद।।
'तपः सूर अणगार' उक्ति यह, है आगम में स्पष्ट।
की चरितार्थ श्रमण पीथल ने, करके तप उत्कृष्ट रे।
सब शक्ति उंडेली रे ।।कैसी ।। १।।

मारवाड़ में बाजोली के रहने वाले आप।
नाहर गोत्र वयस्क समय में, लगी विरति की छाप रे ।।
जाती न ढकेली रे ।।२।।

रामायण-छन्द

स्त्री की अनुमति लेकर पाली पहुचे दीक्षा हित पीथल।
ससुर दौड़ पीछे से आया मचा रहा भारी हलचल।
लालच विविध तरह के देता आंसू बहुत बहाता है।
पीछा नही छोड़ता उनका राग मोहमय गाता है ।।३।।

सोरठा

पीथल ने परिहार, किया चतुर्विध अशन का।
तब तो पाकर हार, आज्ञा दी है श्वसुर ने ।।४।।

लय—म्हांरे घणां मोल रो…।

वर्ष अठारह सौ छासठ में, हेम महा मुनि पास।
धन परिजन ललना को तजकर, वने संयमी खास रे।
गुरु शिक्षा झेली रे ।।६।।

दोहा

विनयी वैयावृत्य रत, बने तपस्वी आप।
तपश्चरण के साथ में, सहते थे बहु ताप ॥७॥

लय—रामायण

उपवासादिक स्फुटकर तप का मिल न रहा क्रमशः अधिकार।
बड़े बड़े जो किये थोकड़े सुन लो उनका कुछ विस्तार।
साल तिहोत्तर से लेकर के साल तयांसी तक प्रतिवर्ष।
वीरवृत्ति का परिचय देते तप में बढ़ते गये सहर्ष[२] ॥८॥

गीतक-छंद

प्रेरणा ऋषिराय की पा हो गये तैयार हैं।
तीन मुनि ने मास छह का किया तप स्वीकार है।
काकडोली केलवा निकटस्थ राजसमंद में।
किये पावस पूज्य आज्ञा से परम आनद मे ॥९॥

लय—म्हांरे घणां मोल रो…।

वर्षावास उदयपुर करके, आये श्री गुरुदेव।
बड़े पारणे निज हाथों से, करवाये स्वयमेव रे।
यश ध्वनियां फैली रे ॥१०॥
खुशियों से मुनियों की नस नस, फूली पा गुरु-पोप।
रवि से पकज घन से चातक, पाता अति सतोष रे।
छवि लगी नवेली रे[१] ॥११॥

दोहा

मालव यात्रा के लिये, गुरु ने किया विहार।
भीम श्रमण सहवास में, है पीथल अणगार ॥१२॥

लय—म्हांरे घणां मोल रो…।

रसना रुकी अचानक व्यापी तन में व्याधि अथाह।
सागारी अनशन करवाया, सवा प्रहर में राह रे।
सुरपुर की ले ली रे ॥१३॥

दोहा

विविध स्थलों में 'जीत' ने, गाये है गुण गान।
गण में तपः प्रभाव से पाये है सम्मान ॥१४॥

१. मुनि श्री पीथल जी मारवाड़ मे वाजोली के वासी, और गोत्र मे नाहर (ओसवाल) थे। वे ससार से विरक्त होकर दीक्षा लेने के लिए तैयार हुए और अपनी पत्नी की स्वीकृति लेकर स० १८६६ के पाली चातुर्मास मे मुनि श्री हेमराजजी (३६) के पास पहुंचे। निवेदन करने पर मुनि श्री ने उनकी दीक्षा तिथि निर्णीत कर दी। पीथलजी के श्वसुर को जव यह खवर मिली तो वे शीघ्रता से पाली आये और अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर उन्हे डिगाने का प्रयत्न करने लगे। मोहवश आखो से आसुओ की धारा वहने लगी। परन्तु पीथलजी अपने विचारो मे अडिग रहे। श्वसुर जव उनके पीछे ही पड़ गया तव उन्होने यह प्रतिज्ञा कर ली कि साधु-व्रत स्वीकार किये विना मुझे चारो प्रकार के आहार का त्याग है। तव श्वसुर ने दीक्षा की आज्ञा दी। पीथलजी ने वड़े हर्ष से स्त्री को छोड़कर मुनि श्री हेमराजजी द्वारा सं० १८६६ पाली मे सयम ग्रहण किया।[1]

२. मुनि पीथलजी दीक्षा लेने के पश्चात् सभवत. १८६६ तक मुनि श्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे। स० १८७० के इन्द्रगढ़, १८७१ के पाली और १८७२ के कटालिया चातुर्मास मे तो साथ रहने का हेम नवरसा ढा० ५ मे उल्लेख भी मिलता है। उसके वाद भी वे कई चातुर्मासो मे उनके साथ थे ऐसा उक्त ढाल से प्रमाणित है।

---

(१) पीथल हरि (नाहर) वाजोली थकी, चारित्र लेवा आया हो।
ससुरै लारै आय नै, विविध पणै ललचाया हो।
रूदन करत अधिकाया हो॥
पीथल कहै ससुरा भणी, सांभल तूं मुझ वाया हो।
साधपणो लिया विना, च्यारू आहार पचखाया हो।
मन वैराग सवाया हो।
सुसरै दीधी आगन्या, पीथल मन हरषाया हो।
संजम लीधो हेम पै, छांडि त्रिया व्रत ल्याया हो।
सता नै सुखदाया हो॥
(हेम नवरसो ढा० ४ गा० १५ से १७)
वड़ पीथल त्रिय छंडी दीक्षा, वाजोली ना नाहरो रे।
(शासन-विलास ढा० ३ गा० ६)
वश ओस हरि (नाहर) जात वर, वाजोली वसीवान।
संजम पाली सैहर मे, छासठे साल सुजान॥
(पीथल गु० व० ढा० १ दो० २)
हेम दृष्टांत ३४ मे भी दीक्षा का उल्लेख है।

वे बडे विनयी, सेवार्थी और तपस्वी हुए[1]। दीक्षित होते ही उन्होंने उत्कट तप करना प्रारभ किया। छह चातुर्मासो (१८६७ से ७२) मे विविध तपस्या की पर उन वर्षो मे की गई तपस्या का विवरण नही मिलता। तपस्या के साथ वे आतापना भी लेते थे।[2]

उसके वाद सं० १८७३ से १८८३ तक उन्होने वड़ी तपस्या (प्राय: आछ के आगार से) की, उसका विवरण इस प्रकार है—

१. स० १८७३ मे मुनि श्री हेमराजजी के साथ सिरियारी मे ४० दिन का तप किया।

२. सं० १८७४ मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ गोगुदा मे ८२ दिन का तप किया।

३. स० १८७५ मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ पाली मे ८३ दिन का तप किया।

४. स० १८७६ मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ देवगढ मे १०६ दिन का तप किया जो गण मे सर्वप्रथम था।

५. स० १८७७ मे मुनिश्री स्वरूपचदजी के साथ पुर मे[3] १२० दिन का तप किया। कहा जाता है कि इसी वर्ष मुनि माणकचदजी (७१) ने भी चातुर्मासिक तप किया। दोनो मुनियो का यह तप गण मे (भारीमालजी स्वामी के युग मे) सर्वप्रथम था।

६. स० १८७८ मे मुनि श्री हेमराजजी के साथ आमेट मे ९९ दिन का तप किया।

७. स० १८७९ में १०० दिन का तप किया।

८. स० १८८० मे ६० दिन का तप किया।

९. स० १८८१ मे ७५ और २१ दिन का तप किया।

इन तीन वर्षों की तपस्या उन्होंने कहा और किसके साथ की इसका उल्लेख नही मिलता।

---

१. सुविनीत घणो सुखकारी, विनय व्यावच नो गुण भारी।
तपस्या मे हरे, महा सिरदारी॥
(गुण वर्णन ढा० २ गा० २)

२. षट चोमासैं तप खड्ग धारा, विचित्र प्रकारे विसाला।
आतापना लेता ऊनाला॥
(गुण ढा० १ गा० ३)

३. मुनि स्वरूपचदजी का चातुर्मास उस वर्ष 'पुर' मे था।
(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० ९)

१०. सं० १८८२ मे ऋषिराय के साथ पाली मे १०१ दिन का तप किया।[1]

११. सं० १८८३ में मुनि भीमजी (६३) के साथ कांकडोली मे १८६ दिन का तप किया।

उपर्युक्त तप का विवरण पीथल मुनि गुण वर्णन ढाल १ गा० ४ मे १०, हेम नवरसा ढा० ५, ख्यात तथा शासन-विलास ढा० ३ गा० ७ की वार्त्तिका के अनुसार दिया गया है।

उनकी छोटी तपस्या का विवरण उपलब्ध नहीं है।

३. उक्त छहमासी तप का घटना प्रसग इस प्रकार है—

सं० १८८२ जेष्ठ महीने मे आचार्य श्री रायचंदजी मोखणदा मे विराजते थे वहां उन्होंने साधुओं को तपस्या के लिये विशेप प्रेरणा दी। तब मुनि पीथलजी, वर्धमानजी (६७) तथा हीरजी (७६) ने परस्पर सलाह करके ऋषिराय से प्रार्थना की कि हमारा तपस्या करने का विचार है। गुरुदेव ने कहा—'क्या तपश्चर्या करने की इच्छा है?' वे बोले—'जो आपकी इच्छा हो वह करने के लिए तैयार हैं।' ऋषिराय ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—'यह कार्य तो तुम्हारा है। मैं तो क्षेत्र संबंधी सुविधा तथा सहयोगी साधुओ की उचित व्यवस्था कर सकता हूं।' तब तीनों मुनियों ने सविनय बद्धांजलि छह मासी पचखाने की प्रार्थना की। आचार्य श्री ने उनकी प्रबल भावना देखकर उन्हे एक साथ आछ के आगार से छह महीनो तक अशन आदि का प्रत्याख्यान करवा दिया[2]।

(चामत्कारिक तप-संग्रह से)

आचार्यश्री ने सं० १८८३ का मुनिश्री पीथलजी का चातुर्मास मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ कांकड़ोली तथा मुनि वर्धमानजी (६७) का केलवा और मुनि हीरजी (७६) का राजनगर फरमाया। स्वयं उदयपुर चातुर्मास के लिए पधारे। चातुर्मास के पश्चात् कांकड़ोली पधार कर आचार्य श्री ने मुनि पीथलजी को १८६ दिन का पारणा कराया[3]।

---

१. एक सौ एक पाली आणंदो रे, वयासीये तप गुण वृन्दो रे।
गुरु मिलिया पूज रायचन्दो रे॥
(गुण० व० ढा० ३१ गा० १०)

२. रायचन्द पूज सुहाया रे, तीनूं रा परिणाम चढ़ाया रे।
तपसी तप करण उमाया। त०॥
जेष्ठ कृष्ण पखे मुनिराया रे, छह मास तीनूं नैं पचखाया रे।
पूज उदीयापुर चल आया रे॥
(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १३, २१)

३. तयासीये कांकडोली तासो रे, षट मास भीम ऋष पासो रे।
पचखाया पूज हुलासो रे। त०॥

उसी दिन राजनगर पधार कर मुनि हीरजी को १८६ दिन का और दूसरे दिन केलवा पधार कर मुनि वर्धमानजी को १८७ दिन का पारणा कराया।

तेरापंथ धर्म सघ मे इससे पहले छहमासी तप नही हुआ था।

४. ऋषिराय ने मालव-यात्रा के लिये प्रस्थान किया तब मुनि पीथलजी को भीमजी स्वामी के पास रखा[1]। साथ मे अन्य सत रत्नजी (७४) माणकचदजी (७१) और हुकमचदजी (९३) थे।

स० १८८३ मे पोष शुक्ल १० के दिन कांकडोली मे अकस्मात् उनकी जबान बंद हो गयी। मुनि भीमजी ने उन्हे पूछकर सागारी अनशन कराया। सवा प्रहर के पश्चात् पडित-मरण प्राप्त किया[2]।

५. जयाचार्य ने मुनि पीथलजी के गुणानुवाद की दो ढाले बनाकर उनके तपोमय जीवन का सुदर विश्लेषण किया है। बाल्यकाल में दिये गये सहयोग के प्रति कृतज्ञता भी व्यक्त की—

मुझ सू तो घणो गुण कीधो, बालपणा थकी साझ दीधो।
विडद धारी हरे, भलो जश लीधो॥
(गुण वर्णन ढा० २ गा० ४)

संत गुणमाला मे उनका स्मरण करते हुए लिखा है—

केलवे वर्धमान छ मासी रे, राजनगर हीर तप वासी रे।
काकरोली पीथल पद पासी रे। त०॥
चतुरमास करी ऋषिरायो रे, आया काकरोली सैहर चलाया रे।
पारणो पीथल नैं करायो रे। प०॥
(पीथल मुनि गु० व० ढा० १ गा० ११ से १३)

१. भीमजी ने पीथल भलायो, रत्न माणक हुकम सुहायो।
पांचू साध कांकड़ोली मायो॥
(पीथल मुनि गुण० वर्णन ढा० १ गा० ३०)

२. पोस सुदि दशम दिन सोयो रे, जीभ थाकी असाता होयो रे।
चित्त सावचेत अवलोयो॥
भीम पूछ्यो करावां संथारो रे, भरियो तब काय हुकारो रे।
सावचेत पणै श्रीकारो रे॥
पचखायो संथारो सागारी रे, आसरैं सवा पौहर विचारी रे।
पहुता परलोक मझारी॥
(पीथल मुनि गु० व० ढा० १ गा० ३२ से ३४)
तप बहु षटमासी लग कीधो, तयासीये संथारो रे।
(शासन-विलास ढाल ३ गा० ९)

पीथोजी स्वामी सोभता रे, त्यारा तपस्या ऊपर परिणाम रे।
तपस्या करै अति आकरी रे, त्यांनै वादो चतुर सुजाण रे॥

(संत गुणमाला ढा० १ गा० २६)

जिन मारग मे संत वडा पृथ्वीराज कै, पट्मासी तप कियो खत सू जी।
वर्सोवर्से भारी तपस्या समाज कै, मारीमाल रा प्रताप थी जी॥

(संत गुणमाला ढा० ४ गा० २४)

५७।२।८ श्री सांवलजी (धूनाड़ा)

(दीक्षा स० १८६६; १८६६ में थोडे दिन वाद गणवाहर)

रामायण-छन्द

मारवाड़ की धरती पर था 'सांवल' का 'धूनाड़ां' ग्राम।
पाली में मुनि हेम चरण में चरण लिया तज स्त्री धन धाम[१]।
कुछ दिवसों से उनकी पत्नी दर्शनार्थ पाली आई।
रोने लगी देखकर उनको राग-भाव मन में लाई॥१॥
लोग सिखाकर उलटी बातें उसे ले गये हाकिम पास।
चलित कर दिया सांवलजी को रचकर के व्यामोहक पाश।
रह न सके वे दृढ़ सयम में बधन परिचय का भारी।
बन गृहस्थ वापस घर पहुंचे कर्मो की गति है न्यारी[२]॥२॥

१. सांवलजी मारवाड़ मे 'धूनाड़ा' (समदड़ी के पास) के वासी थे। सं० १८६६ के पाली चातुर्मास मे उन्होने पत्नी को छोड़कर मुनि श्री हेमराजजी द्वारा दीक्षा ग्रहण की।

(हेम दृष्टान्त ३४)

२. कुछ दिनो वाद सांवलजी की पत्नी दर्शन करने के लिए पाली आई और उन्हे देखकर मोहवश विलापात करने लगी। तव कुछ नासमझ लोग उसे उलटी-सीधी वातें सिखाकर हाकिम के पास ले गये और सांवलजी को सयम से च्युत कर दिया।

वे वापस गृहस्थ वनकर अपने घर चले गये।[1]

(हेम दृष्टांत ३४)

१. सांवल दीक्षा लीध रे, पाली शहरे छासठे।
आई त्रिया प्रसीध रे, हाकम भृष्ट करावियो॥

(शासन-विलास ढा० ३ सो० १०)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ सो० ५२ में भी ऐसा ही उल्लेख है।

५८।२।६ मुनि श्री वगतोजी (तिवरी)

(सयम पर्याय १८६६-७३)

रामायण-छन्द

'तिवरी' के वासी 'वगतोजी' ओसवाल थे धाड़ीवाल।
समझ-बूझकर तत्त्व उन्होंने मान्य किये गुरु भारीमाल।
योग न मिला साधुओं का फिर हुए स्वतः दीक्षा के भाव।
मुनि गुमानजी के टोले के करते अपनी तरफ झुकाव ।।१।।
तेरापंथी मुनियोंवत् हम भी न स्थानकों मे रहते।
एक समान समाचारी है वे कहते ज्यों हम कहते।
कपट पूर्व वातें कर ऐसे दीक्षा दी उनको तत्काल।
रहते उनके साथ वगतजी क्रमशः बीता है कुछ काल ।।२।।
शिथिलाचार विचार देखकर उनका अन्तर मन वदला।
बहस चली कुछ दिन आपस में किन्तु न कुछ भी हल निकला।
छोड़ उन्हे श्री भारी गुरु की चरण-शरण में आये है।
लेकर सच्चारित्र-रत्न वे फूले नही समाये है[1] ।।३।।
आचारांगादिक सूत्रों का नही कर सके वे वाचन।
अतः 'अगड सूत्री' रह पाये करते मुनियो सह विहरण[2]।
त्यागी विनयी और विरागी तपोधनी बन पाये है।
भर पुरुषार्थ ऊर्ध्व भावों से तप के शिखर चढ़ाये है ।।४।।

सोरठा

दिवस एक सौ एक, साल तिहत्तर में किये।
लिखे उच्चतम लेख, चतुर्मास कर 'धाकडी' ।।५।।
कुछ ही दिन के बाद, आजीवन अनशन किया।
पंडित-मरण प्रसाद, पाया दिन इक्कीसे[3] ।।६।।
सात साल तक स्वाद, भारी सयम का लिया।
'जय' ने उनको याद, अपनी कृतियो में किया ।।७।।

१. मुनिश्री वगतोजी मारवाड में 'तिवरी' के वासी, जाति मे ओसवाल और गोत्र से धाडीवाल थे। उन्होने तेरापथ की मान्यता को समझकर आचार्यश्री भारीमालजी को गुरु रूप मे स्वीकार कर लिया। परन्तु वाद मे तेरापंथी साधु-साध्वियो का योग नही मिला। उनके संस्कारों मे धर्म की पुट गहरी जमी हुई थी इससे उनकी भावना दीक्षा लेने की हो गई। उस समय उन्हे स्थानकवासी गुमानजी के टोले के साधु मिले और वोले—'हमारे मे और तेरापंथी साधुओ मे विशेप अन्तर नही है। जिस प्रकार तेरापथी साधु स्थानक मे नही रहते वैसे हम भी स्थानक मे नही ठहरते।' इस प्रकार कपट पूर्वक वार्तालाप करके उन्होने वगतोजी को दीक्षित कर लिया।

वगतोजी उनके साथ विहार करने लगे। अन्य साधु प्रतिदिन मकान का दरवाजा वद करके भोजन करते। वगतोजी भिक्षा लेकर आते तव वाहर खड़े हो जाते पर किवाड खोलकर अन्दर नही जाते। एक दिन उन साधुओ ने वाहर आकर वगतोजी से पूछा—'तुम यहा क्यो खड़े हो? भीतर आकर भोजन क्यों नही करते?' वगतोजी वोले—'इन किवाड़ो को खोलने से जीवो की हिंसा होती है, अतः मैं इन्हे खोलकर अंदर नही आता।' इस प्रकार कुछ दिन निकले।

एक दिन गुमानजी के टोले के साधु दुर्गादासजी के साथ वगतोजी विहार करके जा रहे थे। रास्ते मे किसी व्यक्ति ने हरियाली (सब्जी) लेने के लिए आग्रह किया। दुर्गादासजी ने कहा—'तुम्हारी भावना तो अच्छी है, पर हमे यह सब्जी (सचित्त) लेना नही कल्पता।' यह उत्तर सुनकर वगतोजी तर्क करते हुए वोले—'मुनिजी! जव आपको यह सब्जी ग्रहणीय नही है तव देने वाले की भावना अच्छी कैसे हुई? इस प्रकार यदि उसकी भावना अच्छी है तो कोई व्यक्ति साधु को स्त्री लेने की मनुहार करता है तो क्या उसकी भावना भी अच्छी है। आपका यह उत्तर न्याय सगत नही है।

उसके पश्चात् वगतोजी की इच्छा उनके साथ रहने की नही रही। वे उन्हें छोडकर आचार्यश्री भारीमालजी के पास मे आये और दीक्षा लेकर तेरापथी साधु वन गये।

दीक्षा सवत् ख्यात आदि मे नही है पर क्रमानुसार १८६६ ठहरता है।

(ख्यात, शासन-विलास ढा० ३ गा० ११ की वार्त्तिका)

२. अनुमानत. स० १८६६ से ६९ के वीच मुनि जोधोजी, मुनिश्री वगतोजी (५८) और सतोजी (५९) ने किसी कारण से पचपदरा चातुर्मास किया। उस समय वे तीनो सत अगड़सूत्री (जव तक आचाराग तथा निशीथ सूत्र का वाचन नही किया जाता तव तक वह साधु अगड़सूत्री कहलाता है। वह आज्ञा, आलोयना नही दे सकता) थे अत. वे वहा साध्वीश्री वरजूजी (४९) की 'नेश्राय' (निर्देशन) मे रहे।

(परम्परा के वोल सख्या २२६)

३. मुनिश्री बडे विनयी, विरागी और तपस्वी हुए। सं० १८७३ मे उन्होने मुनियों के साथ धाकडी (मारवाड) चातुर्मास किया। वहा आछ के आगार से १०१ दिन का तप किया। पारणा करने के कुछ दिन वाद ऊर्ध्व भावना से आजीवन अनशन ग्रहण कर लिया। वह इक्कीस दिनो से सानद सपन्न हुआ। धर्म का वडा उद्योत हुआ।[1]

(ख्यात, शासन-विलास ढा० ३ गा० ११ की वार्त्तिका)

शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० ५३ से ६३ मे भी उक्त वर्णन है।

४ जयाचार्य ने अपनी कृतियो मे उनका स्मरण करते हुए लिखा है—

वगतोजी स्वामी विनयवत छै रे, त्यांरा तपस्या ऊपर परिणाम रे।
त्यांरी तपस्या रो लेखो सुणता थका रे, धिन-धिन कहै वगतोजी स्वाम रे॥

(संत गुणमाला ढा० १ गा० २७)

वखतरामजी वैरागी सुवनीत कै, एक सौ एक किया भला जी।
इकवीस दिन नो अणसण आयो वदीत कै, जिन मारग जस छावियो जी॥

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० २५)

वगतरामजी तपसी वड़ो, एक सौ एक अमोल।
अणसण इकवीस दिवस नो, च्यार तीर्थ मे तोल॥

(अमीचद गुण वर्णन ढा० १ गा० ७)

---

१. गुमानजी रा टोला मा थी, वगतोजी व्रत धारो रे।
तीयतरे इक सौ इक दिन तप, दिन इकवीस सथारो रे॥

(शासन-विलास ढा० ३ गा० ११)

५६।२।१० मुनि श्री संतोजी (सणदरी)

(संयम पर्याय १८६६-१६१२)

लय—तुमको लाखों प्रणाम…।

शासन सिन्धु समान, मुनि मणियों का स्थान। शासन…।
उनमें एक प्रधान, शासन। संत 'संत' अभिधान। शासन…।
॥ ध्रुवपद ॥

मारवाड में ग्राम सणदरी, वोकरिया परिजन विरादरी।
विरति भावना दिल में उभरी, लगा एक ही ध्यान। शासन ॥१॥
आया छासठ का शुभ वत्सर, लिया साधना-पथ श्रेयस्कर।
वने सुगुरु के शिष्य शिष्टतर, लघु वय में मतिमान[1] ॥२॥

सोरठा

पचपदरा में वास, किया महीने चार तक।
'जोध' 'वगत' सहवास, 'अगडसूय' तीनों व्रती[2] ॥३॥
पावस हेम समीप, किया ग्राम कंटालिया।
जला ज्ञान का दीप, वने अग्रणी वाद में[3] ॥४॥

लय—तुमको लाखों प्रणाम…।

वड़े विरागी त्यागी ऋषिवर, पापभीरु थे पग-पग ऊपर।
ज्ञान ध्यान में हरदम रमकर, वढ़ते ज्यो फलवान ॥५॥

दोहा

आज्ञाकारी थे वड़े, गण-गणपति से प्रीति।
शोभित होते संघ में, रखते निर्मल नीति ॥६॥

लय—तुमको लाखों प्रणाम…।

आगम वाचन किया अधिकतर, चितन मथन चला निरतर।
लिपि कौशल में कुशल कुशलतर, ग्रंथ लिखे बहुमान[४] ।।७।।
उपवासादिक मे अग्रेसर, मासखमण बहु किये विरति धर।
आत्म-शुद्धि के लिए उच्चतर खोला यह अभियान[५] ।।८।।
पुर-पुर मुनि श्री विचरण करते उपदेशामृत मुख से झरते।
भविकजनों के पातक हरते, भरते अभिनव ज्ञान ।।९।।

दोहा

दीक्षा मुनि श्री हाथ से, चंपाजी की एक।
मिलती इस सदर्भ मे, ख्यात लीजिए देख[६] ।।१०।।

लय—तुमको लाखों प्रणाम ।

आया बारह का सवत्सर, अंबापुर की पुण्य धरा पर।
वर्षावास किया है सुखकर, हुए अचानक ग्लान ।।११
कारणवश कुछ दिन रह पाये, जयाचार्य खुद चलकर आये।
दर्शन पाकर ऋषि हरषाये, पाये जीवन दान ।।१२।।
जय ने की बखशीश कृपा कर, भोजन जल विभाग की गुरुतर।
चार साधु सेवा मे रखकर, बढा दिया सम्मान ।।१३।।
जय गणपति तो हुये रवाना, दिवस सातवे सौलह आना।
सिद्ध हुआ सब काम सुहाना, पहुंचे अमर विमान[७] ।।१४।।

१ मुनिश्री सतोजी मारवाड मे सणदरी के वासी और गोत्र से वोकड़िया (ओसवाल) थे। उन्होने स० १८६६ मे वडे वैराग्य से दीक्षा ली।[1]

जयाचार्य ने उन्हे 'वाल मित्र' से संवोधित किया है।[2] इमसे लगता है कि उन्होने अविवाहित (नावालिग) वय मे सयम ग्रहण किया।

२ साधु जीवन के प्रारभ मे वे अगड़सूत्री थे। अनुमानत. स० १८६६ से ६६ के वीच मुनि जोधोजी, मुनिश्री वगतोजी (५८) और सतोजी (५६) ने किसी कारण से पचपदरा चातुर्मास किया। उस समय वे तीनो सत अगड़सूत्री (जव तक आचाराग तथा निशीथ सूत्र का वाचन नही किया जाता तव तक वह साधु अगड़-सूत्री कहलाता है। वह आज्ञा, आलोयणा नही दे सकता) थे। अत. वे वहां साध्वी श्री वरजूजी (४६) की 'नेश्राय' (निर्देशन) मे रहे।

(परम्परा के वोल सख्या २२६)

३. स० १८७२ मे उन्होने मुनिश्री हेमराजजी (३६) के साथ कटालिया चातुर्मास किया।[3]

४. मुनिश्री साधु-क्रिया मे कुशल, पापभीरु और वड़े आत्मार्थी थे। सघ एवं संघपति के प्रति अनुरागी व निष्ठावान थे। उन्होने आचार्यश्री भारीमालजी, रायचदजी और जयाचार्य की वडी तन्मयता से सेवा-भक्ति की।[4]

उन्होने अनेक सूत्रो का वाचन किया तथा लेखन (प्रतिलिपि) भी वहुत

---

१. सणधरी ना वासी मुनि, जाति वोकरिया सार।
समत् अठारै छासठे, लीधो सजम भार॥
(सतोजी गु० व० ढा० १ गा० १०, ११)
सतीदासजी (सतोजी) सत रे, वासी ते सणदरी तणा।
आचारी गुणवत रे, अठार छ्यासठे दिख्या॥
(आर्या दर्शन ढा० ४ सो० ४)

२. मुझ वाल मित्र सत गावियो, पाली सैहर मझार॥
(गुण व० ढा० १ गा० १३)

३. वोहतरे कंटालिया मांह्यो रे, हेम संतोजी पीथल सुहायो रे।
स्वरूप, भीम सुख पायो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ५)

४. पच महाव्रत पालतो, सग रहित सुध रीत।
वीहक पाप थकी वहु, परम सुगुरु सू प्रीत॥
भारीमाल ऋपराय नी, सेव आंण सुध मान।
जीत तणी अति जत्न सू पाली आंण प्रधान॥
(संतोजी गु० व० ढा० १ गा० ३, ४)

किया। ख्यात मे उनके सबंध मे लिखा है—"वडा वैराग सू दीक्षा लीधी, पाप रो भय घणो, लिखणो घणो कीयो, सूत्र घणा वाच्या, साधपणा पर दृष्टि वड़ी तीखी।"

जयाचार्य ने उनकी निर्मल नीति का वर्णन करते हुए 'सत गुणमाला' मे लिखा है—

"संतोजी स्वामी शोभता रे, त्यांरी रुडी छै निर्मल नीत रे।
आहार पाणी री गवेषणा आछी करै रे, पकी छै ज्यारी प्रतीत रे।।"

(सत गुणमाला ढा० १ गा० २८)

५. उन्होने उपवास, वेले आदि विविध तपस्या की। ऊपर मे मासखमण भी अनेक वार किये।[1] (संख्या प्राप्त नही है।)

६. साध्वी चपाजी (१६१) 'सिरियारी' की ख्यात मे लिखा है कि उन्हे स० १८९५ जेठ वदि ५ को सिरियारी मे मुनि सतीदासजी ने दीक्षा दी। वे सतीदासजी ये सतोजी ही थे क्योकि जयाचार्य ने अपनी कृति 'आर्या दर्शन' ढाल ४ सोरठा ४ मे इन्हे सतीदासजी नाम से सम्वोधित किया है—

'सतीदासजी सत रे, वासी ते सणदरी तणा।।'

दूसरे मुनि सतीदासजी (८४) 'गोगुदा' तो मुनिश्री हेमराजजी के साथ थे।

मुनिश्री अग्रणी होकर विचरे। उनके सिघाडवध होने का वर्ष व चातुर्मास-स्थान प्रायः उपलव्ध नही है। श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका के अनुसार उनका स० १९१२ का चातुर्मास पाच साधुओ से आमेट था। मुनि जीवोजी (८६) रचित मुनि शिवजी(८२) के गुणो की ढाल गा० २८ के उल्लेखानुसार मुनिश्री शिवजी मुनिश्री सतोजी के साथ आमेट चातुर्मास मे थे।

मुनिश्री सतोजी वहा अस्वस्थ हो गये जिससे चातुर्मास के पश्चात् वे विहार नही कर सके। उस समय मुनि माणकचदजी (९९) आदि ४ साधु उनकी सेवा मे थे। जयाचार्य ने वहां पधार कर मुनिश्री को दर्शन दिये तथा भोजन-विभाग से मुक्त किया।[2] मुनि सतोजी जयाचार्य के अनुग्रह से अत्यन्त हर्पित हुए। उन्होने आचार्य प्रवर से एक साधु की और माग की। तव जयाचार्य ने मुनि नेमजी (१३९) छोटा को उनकी परिचर्या मे रखा और मधुर वचनो से उन्हे सन्तुष्ट कर वहा से विहार किया।

(गुण वर्णन ढा० १ गा० ५ से ८ के आधार से)

---

१. मासखमण मुनि वहु किया, वलि तप विचित्र प्रकार।

(सतोजी गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

२. पाती छोडी सत नी, हरख्यो सत विसेख।

(गुण० व० ढा०१ गा० ७)

सात दिनों के बाद स० १९१२ पोष शुक्ला १३ को आमेट में मुनिश्री का स्वर्गवास हो गया। मुनि माणकचदजी और नेमजी आदि ने उनकी अच्छी शुश्रूषा की।[1]

जयाचार्य ने उनके गुणो की एक ढाल स० १९१३ श्रावन शुक्ला ५ को पाली में बनाई। जिसमे उनकी गौरव-गाथा अभिव्यक्त की है।

---

१. दिवस सातमे संतजी, काल कियो तिणवार।
उगणीसैं बारै समै, पोह सुदि तेरस सार॥
माणक नेम आदि करी, सत सेवा मे पंच।
पद आराधक पांमिया, सुध व्यवहार सुसच॥
(गुण वर्णन ढा० १ गा० ९, १०)

६०।२।११ मुनि श्री ईशरजी (गोगुंदा)

(सयम पर्याय १८६६-१६०१)

छप्पय

ईशर मुनि को मिल गया सयम का सुख धाम।
हृदय सुमनवत् खिल गया पाकर के आराम।
पाकर के आराम ग्राम गोगुदा गाया।
पोरवाल कुलधाम धर्म-उपवन लहराया।
चरण-वोध-दाता मिले मुनिवर वेणीराम[१]।
ईशर मुनि को मिल गया सयम का सुख धाम ॥१॥
दीक्षित वन्धु गुलाव के थे ईशर लघु भ्रात।
सघ-निष्ठ हो साधना कर पाये निष्णात।
कर पाये निष्णात विनय युत श्रुत-अभ्यासी।
सौम्य प्रकृति धृति-मान स्व-पर आत्म-विकासी।
विचरे वनकर अग्रणी करते श्रम हर याम[२]।
ईशर मुनि को मिल गया सयम का सुख धाम ॥२॥
आये थली प्रदेश की निगरानी हित आप।
स्थिति सम्मुख ऋषिराय के की प्रस्तुत दे छाप।
की प्रस्तुत दे छाप सुगुरु वीदासर आये।
ईशर वर्षावास रत्नगढ़ में कर पाये[३]।
सर्वप्रथम गुजरात मे पावस 'वीरमग्राम'[४]।
ईशर मुनि को मिल गया सयम का सुख धाम ॥३॥

दोहा

रोका वन्धु गुलाव को, वोले जव विपरीत।
अंतरंग थी आपके, गण गणपति से प्रीत[५] ॥४॥
रूपचदजी को दिया, संयम का वरदान।
स्वोपकार-उत्थान में, रहता मुनि का ध्यान[६] ॥५॥

छप्पय

उपवासादिक वहु किये रख कर ऊर्ध्व विचार।
एकान्तर नौ साल तक करके खींचा सार।
करके खीचा सार शीत क्या गर्मी सहते।
कर्म निर्जरा हेतु सजग पग-पग पर रहते[७]।
अनशन करके अंत में सिद्ध किया सव काम।
ईशर मुनि को मिल गया संयम का सुख धाम ।।६।।

दोहा

संवत्सर चौतीस का, रहा साधनाकाल।
पाया मरण समाधि युत, सुयश चढ़ाया भाल[८] ।।७।।

१. मुनिश्री ईशरजी गोगुदा (मेवाड़) के वासी, जाति से पोरवाल और मुनि गुलावजी (५३) के छोटे भाई थे। गुलावजी स० १८६५ मे दीक्षित हो गए थे। ईशरजी ने स० १८६६ मे मुनिश्री वेणीरामजी (५८) के हाथ से दीक्षा ग्रहण की[1]।

(ख्यात)

२. मुनिश्री प्रकृति से सौम्य, धैर्यवान्, विनयी और साधु-चर्या मे वड़े सावधान थे। अग्रणी वनकर विहार करते व जन-जन को प्रतिवोध देते[2]।

(ख्यात)

३. कहा जाता है कि सं० १८८६ मे आचार्य श्री रायचदजी ने थली प्रदेश के क्षेत्रो का निरीक्षण करने के लिए मुनि ईशरजी को भेजा था। उन्होने वीदासर आदि गावो में जाकर सारी स्थिति की जानकारी की। वापस आचार्य प्रवर के दर्शन कर सव हकीकत मालूम करते हुए थली प्रान्त की तीन विशेषता-संप, सरलता, सादगी पर उनका ध्यान आकृष्ट किया।

तव आचार्यश्री ऋषिराय ने साधु-साध्वी परिवार से थली मे पधार कर स० १८८७ का चातुर्मास वीदासर मे किया। मुनिश्री जीतमलजी का चूरू, मुनिश्री स्वरूपचदजी (६२) का तारानगर और मुनि ईशरजी का चातुर्मास रतनगढ मे करवाया। अन्य ग्रामो मे साध्वियो के चातुर्मास करवाये।

(ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ७ से ६ के आधार से)

४. स० १८८९ मे आचार्यश्री रायचदजी गुजरात, कच्छ की तरफ पधारे तव मुनि ईशरजी साथ थे। आचार्यश्री शेषकाल मे वहा विहरण कर वापस मारवाड पधार गए। मुनिश्री कर्मचन्दजी (८३) का ठाणा ३ से स० १८९० का चातुर्मास वेला (कच्छ) में फरमाया जो कच्छ प्रान्त मे सर्वप्रथम चातुर्मास था। उनके साथ मुनि मोतीजी वडा (७७) और कृष्णचंदजी (१०३) थे। मुनि ईशरजी का ठाणा ३ से उस वर्ष का चातुर्मास वीरमगांम (गुजरात) मे फरमाया जो गुजरात प्रान्त मे सर्वप्रथम चातुर्मास था। उन्होने वहां अच्छा उपकार

१, गुलावजी रा वधव ईशरजी, सोम्य प्रकृति सुखकारो रे।
वेणीराम स्वामी दी दीक्षा, उगणीसैं सथारो रे।।

(शासन-विलास ढा० ३ गा० १३)

२. ईशरजी स्वामी घणा ओपता रे, ते संजम पालैं रुडी रीत रे।
जिन मार्ग नैं जमावता रे, ते सतगुरु ना सुवनीत रे।।

(सत गुणमाला ढा० १ गा० २९)

किया'।

५. सं० १८६४ में उन्होंने अपने बड़े भाई मुनिश्री गुलाबजी के साथ पुर चातुर्मास किया। दूसरे सहयोगी ३ संत—१. मुनिश्री उदयरामजी (६४) २. रामोजी (१००) ३. जीवराजजी (११३) थे। वहा मुनि गुलाबजी शकाशील हो गए। वे गण के अवर्णवाद बोलने लगे। मुनि ईशरजी ने उन्हे समझाया पर वे नही माने। कुछ दिनो बाद आचार्यश्री रायचन्दजी युवाचार्य श्री जीतमलजी आदि साधुओ सहित पुर पधारे। युवाचार्यश्री के समझाने से गुलाबजी समझ गए और प्रायश्चित्त लेकर गण में आ गए। पूरा विवरण मुनि गुलाबजी के प्रकरण मे दे दिया गया है।

६. मुनिश्री ईशरजी ने स० १६०१ फाल्गुन शुक्ला २ को रतलाम में मुनि रूपचन्दजी (१३४) को दीक्षा दी।

(ख्यात)

७. उन्होंने ६ साल एकान्तर तथा स्फुटकर तप बहुत किया। शीतकाल में सर्दी और उष्णकाल में ताप सहन किया।

(ख्यात)

सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४४ मे उल्लेख है—

ईशरदासजी सैहर गोगुदे रा सोय कै, जावजीव एकान्तर आदर्‌या जी।
सोम प्रकृति वर संथारे परलोय कै, भारीमाल गुरु भेटिया जी॥

इसका तात्पर्य यही लगता है कि उन्होंने जीवन के अन्तिम ६ वर्षो में एकान्तर तप किया।

८. मुनिश्री ने लगभग ३४ साल साधुत्व का पालन कर स० १६०० मे अनशनपूर्वक स्वर्ग प्रस्थान किया, ऐसा ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० १३ तथा वार्त्तिका मे लिखा है।

परन्तु उपर्युक्त उल्लेख से प्रश्न होता है कि मुनि ईशरजी ने सं० १६०१ फाल्गुन शुक्ला २ को मुनि रूपचन्दजी को दीक्षा दी तब मुनि ईशरजी का स्वर्गवास संवत् १६०० में कैसे हुआ?

ख्यात मे रूपचन्दजी की दीक्षा स० १६०१ फाल्गुन शुक्ला २ को हुई तथा

---

१. जद कर्मचद नें सत मोती, वलि कृष्णचंदजी नै तदा।
ए तीनूं नै चोमास वेले, ठहराय नै गणपति मुदा।
अनें ईसर आदि मुनि मतिवत हे, रह्या गुजरात में तिहुं संत हे।
सत त्रिहु त्यां 'ग्रामवीरम' कियो चोमास सुहामणो।
वहु लोक तिहां थोक समझ्या, हुवो उपगार तो त्या अति घणो॥

(जय सुजश० ढाल० १६ गा० १२, १३)

उनके पहले दो दीक्षा स० १९०१ मृगसर महीने मे हुई लिखा है। ख्यात के अतिरिक्त आर्या दर्शन ढा० ४ सो० ३ मे भी रूपचन्दजी का दीक्षा संवत् १९०१ है—

'रूपचद मुनिराय रे, एके चरण लियो हुतो।'

इससे मुनि ईशरजी का स्वर्गवास संवत् १९०१ मे हुआ ऐसा प्रतीत होता है।

शासन-प्रभाकर ढा० ४ गा० ६६ मे उनका स्वर्ग सवत् १९१९ है जो भूल से लिखा गया है।

६१।२।१२ मुनि श्री गुमानजी

(सयम पर्याय १८६६-१९१०)

छप्पय

शासन के सुख सदन में आये संत गुमान।
बहुत वर्ष कर साधना पाये शांति महान्।
पाये शांति महान् चरण मुनि वेणी द्वारा[1]।
धर गुरु आज्ञा शीष विविधतर खोली धारा।
दिन प्रतिदिन चढ़ते गये उन्नति की सोपान।
शासन के सुख सदन मे आये संत गुमान ॥१॥
सेवा कर मुनि वर्ग की लेते लाभ अपार।
ज्ञान ध्यान में लीन हो करते धर्म-प्रचार।
करते धर्म-प्रचार मधुर उपदेश सुनाते।
साथ हेतु दृष्टान्त बोधमय चित्र दिखाते।
करवाई गुरु धारणा बहुजन को दे ज्ञान[2]।
शासन के सुख सदन मे आये सत गुमान ॥२॥
शतोन्नीस दस साल का आया मृगसर मास।
अम्बापुर से ली विदा किया स्वर्ग में वास।
किया स्वर्ग मे वास बने संयम-आराधक।
जय ने भेजे संत अन्त में बने सहायक।
की मुनियो ने शुश्रुषा देकर गहरा ध्यान[3]।
शासन के सुख सदन में आये संत गुमान ॥३॥

१. मुनिश्री गुमानजी ने स० १८६६ मे मुनिश्री वेणीरामजी (२६) के हाथ से दीक्षा स्वीकार की[1]। उनके गाव दीक्षा जाति तथा दीक्षा स्थान आदि का उल्लेख नही मिलता।

ख्यात आदि मे दीक्षा सवत् नही है पर क्रमानुसार उक्त सवत् ठीक लगता है।

२. मुनिश्री वड़े आत्मार्थी, सेवार्थी और धर्म-प्रचारक थे। वे हेतु, दृष्टान्त तथा वोधात्मक चित्रो के माध्यम से धर्मोपदेश देकर लोगों को समझाते। अनेको व्यक्तियों को उन्होने गुरु-धारणा करवाई[2]।

३. मुनिश्री ने लगभग चौवालीस साल साधुत्व का पालन कर स० १९१० के मृगसर महीने मे समाधि-पूर्वक पडित-मरण प्राप्त किया। अन्तिम समय मे जयाचार्य ने संतो को भेजकर उनकी वडी परिचर्या करवाई[3]।

---

१. गुमानजी नै दीक्षा दीधी, वेणीरामजी स्वामी रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

२. गुमानजी स्वामी सीखावै भाया भणी रे, चोखो पालै सजम सार रे।
वले व्यावच करै साधा तणी रे, त्यारोई खेवो पार रे॥

(सत गुणमाला ढा० १ गा० ३०)

'घणां वरस चारित्र पाल्यो, वडा जूना हा, लोका नै हेतु दृष्टान्त दे नै पाना वताय नै समझाया, गुरुधारणा घणा नै कराई।'

३. आमेट मे उगणीसै दशके, परभव शिव सुखकामी रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० १४)

देवीचद (१५४) त्रिय साथ रे, उगणीसै पांचे दिख्या।
गुमान वृद्ध विख्यात रे, मृगसर परभव वेहु मुनि॥

(आर्या दर्शन ढा० २ सो० ५)

'स० १९१० आमेट मे आयु, जयाचार्य साध मेल नै चाकरी जवर कराई।'

(ख्यात)

६।२।१३ मुनि श्री स्वरूपचन्द जी (रोयट)

(संयम पर्याय १८६६-१९२५)

लय—पल पल बीती जाए…।

गाऊं गुण गरिमा गाऊं, मैं सत स्वरूप सितारे की।
यश की परिमल फैलाऊ, कल्लू के लाल दुलारे की ।।ध्रुवपद।।
है रोयट ग्राम ललाम मरुधरा जन्म स्थल कहलाया। अजि जन्म…
है आईदान पिता गोलेछा गोत्र स्वजन का गाया ।।अजि।।१।।
तीन सहोदर तीन रत्नवत्, मिले एक ही घर में।
प्रथम स्वरूप भीम जय क्रमशः, आये मातृ-उदर में ।।२।।
पूज्य भिक्षु के शुभागमन से, समझा परिकर सारा।
'अजवू' के दीक्षित होने से, वही धर्म की धारा[1] ।।३।।
किया नद सवध तात ने, शादी की उत्कठा।
मनो मनोरथ फल न सके है, बजा काल का घंटा ।।४।।
अकस्मात् यवनो की फौजे, रोयट में चल आई।
आईदान प्रधान गेह मे, भारी लूट मचाई ।।५।।
साफ कर दिया है सब घर को, ले धन माल सिधाये।
धसके से परलोक पिताजी, पलकों में पहुचाये ।।६।।
ज्येष्ठ स्वरूप वधु साहस धर, ले जननी युग भाई।
कुछ वर्षान्तर आ हरिगढ मे, करते द्रव्य कमाई[2] ।।७।।
एक बार रोयट में जाकर, कुछ दिन तक ठहराये।
श्वसुरादिक तब निजी योजना लेकर सम्मुख आये ।।८।।
बिना विवाह किये हम वापस, तुम्हे न जाने देगे।
बेटी बडी हुई अब उसको, घर में रख न सकेगे ।।९।।
आग्रह करते शपथ दिलाते, अपना गाना गाते।
पिण्ड छुड़ाने उनको उत्तर, मीठा सा दे आते ।।१०।।

दोहा

जननी बांधव है जहां, वहा रोग-उत्पात।
रह न सकूगा मैं अभी, यहां अधिक दिन रात ।।११।।

फिर वापस आकर यहा, कर लूगा सुविवाह ।
कामदार से मिल चले, ली हरिगढ की राह[३] ॥१२॥

गीतक-छन्द

किशनगढ में किया पावस हेम ने उस वर्ष है।
संग से मां पुत्र तीनों खिले पाकर हर्ष है।
सुना हित उपदेश मुनि का लाभ सेवा का लिया ।
चन्द्र चदन से अधिक शीतल सजल दिल को किया ॥१३॥

भेट भारीमाल के पद शहर जयपुर में मुदा ।
रात दिन संपर्क करके पिया है शिक्षा-सुधा ।
मिला अजबू सती का भी वहां शुभ सयोग है।
प्रवल उनकी प्रेरणा से हुआ सफल प्रयोग है ॥१४॥

दोहा

जय उद्यत थे प्रथम ही, फिर स्वरूप तैयार ।
अग्रज को गुरु दे रहे, पहले सयम सार ॥१५॥

माता की अनुमति मिली, दीक्षा तिथि निर्णीत ।
दीक्षार्थी के गा रही, वहने मगल गीत ॥१६॥

गीतक-छन्द

किये है हरचंद लाला ने महोत्सव चरण के।
वने शिष्य स्वरूप भारीमाल तारण-तरण के।
थी अठारह सौ उनहतर पौष नवमी शुक्लतर।
लगी मोहनवाटिका मे छटा दीक्षा की प्रवर ॥१७॥

दोहा

माघ कृष्ण तिथि सप्तमी, जय दीक्षा-सस्कार ।
जननी कल्लू भीम सह, फिर दीक्षित सविचार ॥१८॥
सौपे है मुनि हेम को, गुरु ने जीत स्वरूप ।
करते शिक्षा ग्रहण वे, भरते श्रुत रस कूप[४] ॥१९॥

लय—धर्म की जय हो…।

विद्या पढ़ने को, रहे हेम के पास।
मुनि स्वरूप सोल्लास।विद्या। करते सतत प्रयास।विद्या।।ध्रुव।।
वने कुशल आचार-विचारी, संयम से रखते इकतारी।
गण गणपति में निष्ठा भारी, जागरूक हर श्वास।विद्या…।।२०।।
आवश्यक सह दशवैकालिक, सूत्र उत्तराध्ययन रसाधिक।
वेदकल्प .आचारागादिक, सीखे आगम खास।।२१।।
थी व्याख्यान-कला सुन्दरतर, वाचन-शैली स्पष्ट स्पप्टतर।
मुक्तावलिवत् मनहर अक्षर, अच्छा किया विकास।।२२।।
विनय भक्ति मे बने अग्रसर, नीति रीति में निपुण निपुणतर।
गुण सुषमा से वढे निरतर, चढ़े ऊर्ध्व कैलास।।२३।।

दोहा

छह पावस मुनि हेम सह, गुरु चरणों में एक।
योग्य बने विनयाग्रणी, विकसित ज्ञान विवेक।।२४।।
अगुआ किया स्वरूप को, गुरु ने धर आल्हाद।
हुई मधुर मनुहार तव, चला सरस सवाद।।२५।।

लय—जावण द्यो रे…।

शीष धरो जी शीश धरो, मेरी आज्ञा शीश धरो।
अग्रगण्य पद में विचरो। शीष। निज पर का उद्धार करो।।शीष।।
।।ध्रुवपद।।
भारीमाल गणि ने दिलदार, देख योग्यता कला निखार।
दे पुस्तक सहगामी चार, अगुआ पद का सौपा भार।
कहा उन्हे सुख से विहरो। शीष।।२६।।
साञ्जलि वे वोले गणनाथ। मुझको रखे हेम के साथ।
सेवा भक्ति करू उनकी, भरूं ज्ञान निधि ध्रुव धन की।
स्वीकृत मेरी विनति करो।।२७।।

दोहा

गुरुवर भारीमाल तव, वोले महानुभाग।
हेम साथ में बोलने का, तुमको परित्याग।।२८।।

करवाया मुनि हेम को, भी प्रभुवर ने त्याग।
सुनकर सब विस्मित हुए, गुरु का वड़ा दिमाग ॥२९॥
जय ने श्रमण स्वरूप को, करवाया स्वीकार।
मान्य सिघाडा जब किया, तब तो उतरा भार ॥३०॥
चाह् वड़ों के साथ में, रहने की अतिरेक।
विनयी गुणी स्वरूप का, उदाहरण यह एक ॥३१॥

लय—जावण द्यो रे ·।

याद न मुझे देव ! व्याख्यान, निशा समय क्या गाऊ गान।
स्मृति में सिर्फ अजना है, चार मास तक रहना है।
मेरा चिता भार हरो ॥३२॥
पुनः पुनः गाते जाना, मति से रस लाते जाना।
गुरु वाणी को मन मे धार, पढ़ी अजना को छह् वार।
गुरु आस्था रख विनय वरो ॥३३॥
रामायण फिर कर-कर याद, रजनी मे गाते साल्हाद।
प्रतिपादन-शैली सुदर, जनता खुश होती सुनकर।
सद्गुण रत्न सयत्न भरो[१] ॥३४॥

लय—म्हारी रस सेलडियां··।

सुनलो रे सुनलो, सुनलो कुछ अनुभव संत स्वरूप के।
चुन लो रे चुनलो, चुनलो गुण अभिनव संत स्वरूप के ॥ध्रुवपद॥
साल सततर का 'पुर' पावस कर गगापुर आये।
दीक्षित कर चुपचाप 'जीव' को, गुरु चरणों मे लाये रे।सुन लो ॥३५॥
प्रभु आज्ञा से पुनरपि आकर, अच्छा सुयश लिया है।
'चत्रू' पत्नी साथ दीप को, सयम रत्न दिया है रे' ॥३६॥
किया कांकड़ोली चौमासा, साल अठतर वाला।
उन्यासी में शहर लाड़नू, पहला दिया हवाला रे' ॥३७॥
अस्सी का वोरावड पुर में, उज्जयिनी इक्यासी।
दीक्षाए दी तीन, किया कोदर को विरति-विकासी रे ॥३८॥
मालव-यात्रा कर गुरु-पद में, आठ संत सह आये।
समाचार सुन संघ-वृद्धि के, हर्ष रायऋपि पाये रे' ॥३९॥

गीतक-छन्द

कांकड़ोली और वोरावड़ किया रतलाम मे।
नाथद्वारा उदयपुर फिर वास रीणी ग्राम मे।
कालवादी थे वहां प्रतिबोध जन-जन को दिया।
थली देश विशेप ने उस वर्प शिर ऊंचा किया[१०] ॥४०॥

रामायण-छन्द

वोरावड़ श्रीजीद्वारा फिर गोगुंदा में पावस खास।
मोता को चारित्र दिया फिर गंगापुर दो वर्पावास।
शेपकाल में मुनि अनूप को संयम-रत्न प्रदान किया।
घोर तपस्वी हुए संघ मे कीर्तिमान कर सुयश लिया[११] ॥४१॥

किया काकड़ोली में पावस नवति तीन की साल सुखद।
ज्ञान-ध्यान की अधिक वृद्धि से रहा वडा वह लाभप्रद॥
प्राय: शेपकाल मे करते मुनि श्री गुरु-सेवा हर वर्प।
विनय भक्ति कर उन्हे रिझाते पाते तन-मन मे अति हर्प ॥४२॥

नवति तीन में गुरु ने जय को युवाचार्य पद गुप्त दिया।
सौंपा पत्र स्वरूप श्रमण को, व्यक्त अनुग्रह भाव किया।
पावस पूरा होने पर जव किये जीत ने गुरु दर्शन।
प्रकट किया पद चार तीर्थ मे फूला है सवका तन-मन[१२] ॥४३॥

दोहा

पच नवति का लाडनू, मुनि स्वरूप जय संग।
कर पाये सप्तर्पि सह, चतुर्मास सोमग ॥४४॥

रामायण-छन्द

किया कांकड़ोली वोरावड़ चंदेरी चूरु पावस।
तदनन्तर 'रीणी' में नूतन वरसाया अध्यात्मिक रस।
क्रमश. विहरण करते-करते चंदेरी का स्पर्श किया।
माघ मास में 'वन्ना' 'चूनां' मा वेटी को चरण दिया[१३] ॥४५॥

एक साल मे शहर उदयपुर, तप मोती ने बड़ा किया।
दो में हरिगढ़ जीत आदि सह शात सुधारस घोल दिया।
शहर लाडनू में 'सरसां' को सयम की स्थिर निधि दी है।
चंदेरी बीदासर पट्टुगढ़, चूरू पावस स्थिति की है ॥४६॥

दोहा

बीदासर आकर दिया, मूला को चारित्र।
चरण टिकाते मुनि जहां, करते भूमि पवित्र[१४] ॥४६॥

रामायण-छन्द

जय सह वीकानेर सात का और आठ का बीदासर।
सुरपुर श्री ऋषिराय गये तब जीत हुए आचार्य प्रवर[१५]।
भारी गुरु के कृपापात्र फिर रायचन्द के अधिकाधिक।
जय ने वहु सम्मान बढ़ाया कर बख्शीश विभागादिक[१६] ॥४८॥

लय—म्हांरी रस सेलडियां…

उपाध्याय उपमान सघ मे, गये गुणों से बढ़ते।
शान्त प्रकृति सौम्याकृति धृति से, प्रगति शिखर पर चढते रे॥
सुनलो…॥४६॥
सरल तरल दिलदार गुणों के ग्राहक और विचारक॥
शिक्षक व्यक्ति-परीक्षक नय के पोषक दोष-निवारक रे॥५०॥
साधु-क्रिया मे सजग बड़े ही, देख-देख पग धरते।
आलस निद्रादिक को तजते, सफल समय को करते रे॥५१॥
विद्यार्जन करवाते देते शिक्षा-धन मुनिजन को।
कला निभाने की थी अच्छी, करते वश में उनको रे॥५२॥
शासन में अनुरक्ति भक्ति बहु सुविनीतों की करते।
अविनीतों से नजर न मिलती, सम्मुख कदम न धरते रे[१७] ॥५३॥
सूत्र तीस दो ग्रंथ अनेको, पढे ध्यान अति देकर।
सीखे है बहु बडे थोकड़े, रचे नये चिन्तन कर रे[१८] ॥५४॥
गण की मर्यादा का पालन करते और कराते।
एक वार लघु ग्राम एक में, आये चरण बढाते रे॥५५॥

जल कम आने से मुनि बोले—माप माप कर पीना।
'असंविभागी नहु तस्स मोक्खो' वाक्य हृदय में सीना रे ॥५६॥
अनुशासन का ध्यान सभी रख, पीते कर वटवारा।
एक साधु झट पात्र उठाकर, सलिल पी गया सारा रे ॥५७॥
कहने से फिर उलटा बोला, अविनय बड़ा किया है।
तब तो सब संबध सघ से, उसका तोड़ दिया है रे ॥५८॥
कहा रायऋषि ने स्वरूप से, रे ! क्यों उसे विगाड़ा।
उचित किया भारी गुरु बोले, दूषित दांत उखाड़ा रे[१९] ॥५९॥
नौ की साल लाडनू पुर मे, नौ मुनियों से आये।
ज्ञान-ध्यान जागृति से घर-घर, मगल दीप जलाये रे ॥६०॥
'सिणगारां' को सयम देकर, लाये नई बहार।
मेदपाट की तरफ किया है, नव-कल्पिक सुविहार रे ॥६१॥
मोखणदा में खेमाजी को, दी दीक्षा दिलदार।
शहर उदयपुर दश का पावस, कर पाये अणगार रे ॥६२॥
ग्यारह संतों से ग्यारह का, किया वखतगढ़ वास।
वारह संतों से बारह का, श्रीजीद्वारा खास रे ॥६३॥
पादू में मुनि हसराज को, दिया चरण सुविशाल।
तेरह का ग्यारह ऋषियों से, जयपुर वर्षाकाल रे ॥६४॥
माघ मास में लिछमांजी को, संयम की श्री दी है।
चदेरी बीदासर चूरू में पगफेरी की है रे ॥६५॥
सतरह में फिर शहर लाड़नू, तेरह मुनि सह आये।
साल अठारह में बीदासर, ग्यारह मुनि रह पाये रे ॥६६॥
दिया 'ज्ञान' को रत्नदुर्ग' में, जाकर सयम भार।
ग्यारह ठाणों से चूरू मे, पावस किया उदार रे ॥६७॥
वीस साल से पंचबीस तक, चंदेरी स्थिरवास।
वृद्ध अवस्था अग-व्याधि से, हुआ शक्ति का ह्रास रे[२०] ॥६८॥

लय—पल पल बीती जाए···

अप्रतिबध-विहारी मुनिवर, विचरे पर उपकारी।
चतुर्मास उनचास किये कुल, तारे वहु नर-नारी[२१] ॥६९॥
चर्चा वोल-थोकड़े श्रम कर, बहुतों को सिखलाये।
सुलभ-वोधि श्रावक दृढधर्मी, दे प्रतिवोध वनाये ॥७०॥

सतरह दीक्षाएं दी सारी, भारी कीर्ति कमाई।
श्रम बूंदो से सींच-सींच कर, गण-वनिका विकसाई[२२] ।।७१।।
दे सहयोग साधु-सतियों को, परम शान्ति पहुंचाई।
तप अनशन के प्रेरक बनकर, नूतन ज्योति जलाई[२३]।।७२।।
रहे पास में उन मुनियों को, गुण भर निपुण बनाये।
पच अग्रणी उनके द्वारा दीक्षित मुनि हो पाये[२४] ।।७३।।
मुनि भवान कालू मुनि श्री की सेवा बहु कर पाये।
पढा लिखाकर जय सोदर ने, उनको योग्य बनाये ।।७४।।
बने बाद में उभय अग्रणी, अच्छी सुषमा लाये।
कालूजी स्वामी तो गण में, नाम अमर कर पाये[२५]।।७५।।
तप उपवासादिक पन्द्रह तक, जय स्वाध्याय अधिकतर।
शीत समय मे एक पटी में, रहे बहुत सवत्सर[२६] ।।७६।।
शहर लाड़नू में छह वार्षिक, स्थित सकुशल कर पाये।
वड़े भाग्य जनता के जिससे, वड़े अतिथि घर आये ।।७७।।
लिये आपके रहते प्राय:, निकट-निकट जय गणिवर।
वार-वार आकर उपजाते, चित्त समाधि अधिकतर ।।७८।।
पचवीस का शहर जोधपुर, पावस कर जय आये।
सम्मुख गये स्वरूप श्रमण सह, पुर मे नव छवि लाये ।।७९।।
जन समूह में जय ने वंदन, किया स्वरूप श्रभण को।
देख मिलाप राम भरतोपम, हुआ हर्ष जन-गण को ।।८०।।
एक मास जयगणी विराजे, फिर आना फिर जाना।
मधुरालापों से बरसाते, रस तो सौलह आना ।।८१।।
कर स्वाध्याय सूत्र की मुनि श्री, क्षण-क्षण सफल वनाते।
मस्तक आदि व्याधि को सहते, धृति-बल सतत बढाते ।।८२।।
भाव भरे वचनो से बहु विध, जय परिणाम चढ़ाते।
महाव्रतारोपण आलोचन, शरण चार दिलवाते ।।८३।।
पचवीस की साल श्रेष्ठतर, ज्येष्ठ चोथ तिथि आई।
समय सुवह का था मगलमय, चरमोत्सव छवि छाई ।।८४।।
चुम्बक रूप स्वरूप संत का, जीवन विवरण गाया।
है 'स्वरूप नवरसा' आदि में, जिनकी विस्तृत छाया[२७] ।।८५।।

१. मुनिश्री स्वरूपचदजी का जन्म रोयट (मारवाड़) मे सं० १८५० मे हुआ। वे मुनिश्री भीमजी (६३) और जीतमलजी (जयाचार्य) के संसार पक्षीय वडे भाई थे। उन दोनो का जन्म सं० १८५५ और १८६० मे हुआ।

वे जाति से ओसवाल और गोत्र से गोलेछा थे। उनके पिता का नाम आईदानजी और माता का कल्लूजी था।

एक वार स्वामी भीखणजी रोयट पधारे। तव उनके उपदेश से वहा गोलेछा आदि अनेक परिवार के लोग समझकर तेरापथ के अनुयायी वने। मुनि स्वरूपचदजी की ससार पक्षीया वुआ साध्वीश्री अजवूजी (२९) ने स्वामीजी के पास स० १८४४ मे दीक्षा ग्रहण की। उनके प्रसग से गोलेछा परिवार मे धर्म-ध्यान की विशेष जागृति हुई।

(सरूप नव० ढा० १ दो० १ से ९ के आधार से)

२. आईदानजी ने अपने पुत्र स्वरूपचन्दजी की लघुवय में ही सगाई कर दी थी। उनके विवाह के लिए भी वे उत्साहित हो रहे थे। किन्तु अकस्मात् स० १८६३ मे 'मीर खा' नामक एक मुसलमान सरदार ने ग्राम को लूट लिया। आईदानजी के घर से भी अधिकाश धनमाल ले गए। उस धनापहरण के मानसिक आघात को आईदानजी सहन नही कर सके, अतः उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो गए[1]।

धन और जन की आकस्मिक क्षति से उनके परिवार को वड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ा। वडे भाई होने के कारण घर का सारा भार सरूपचदजी पर आ गया। उन्होने कुछ वर्षो तक तो वहा रहकर अपना व्यावसायिक कार्य जमा लेने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमे सफलता नही मिली तव वे अपनी माता कल्लूजी तथा दोनो भाई भीमजी और जीतमलजी को साथ लेकर किशनगढ मे आकर रहने लगे, उन्होने व्यापारिक कार्य प्रारंभ कर दिया[2]।

(स्वरूप न० ढा० १ गा० ९, १० ढा० २ दो० १ के आधार से)

३. एक वार सरूपचंदजी किसी कार्यवश किशनगढ से वापस रोयट गए तो वहा उनके ससुराल वालो ने उन्हे रोक लिया। उन लोगों का आग्रह था कि हम

---

१. सवत् अठारै तेसठे, 'मीर खां' लूट्यो ग्राम।
धसका थी आइदानजी, परभव पहुता ताम॥

(जय सुजश ढा० २ दो० १)

ख्यात मे सिंधियो की सेना द्वारा लूटे जाने का उल्लेख है।

२. विखो पड्या वर्स केतलै, मात त्रिहु सुत लेह।
कृष्णगढ आया वही, विणज सरूप करेह॥

(स्वरूप नवरसो ढा० २ दो० १)

विवाह किये विना आपको यहां से जाने नही देंगे क्योकि हमारी लडकी काफी बडी हो चुकी है अत· अधिक प्रतीक्षा का अवसर नही है।

सरूपचंदजी ने उन सबको वापस आने का आश्वासन दिया और वतलाया कि मुझे इस समय शीघ्र ही किशनगढ पहुचना है। मैंने सुना है कि वहां कोई रोग फैला हुआ है अत माता और भाइयो को सभालने के पश्चात् उनकी सम्मति से ही विवाह का समय निश्चित किया जायेगा। इस प्रकार ससुराल वालो को समझाकर और वहां के कार्य से निवृत्त होकर वापस किशनगढ आ गये।

(स्वरूप नवरसा ढा० २ दो० २ से ६ के आधार से)

४. स० १८६८ के शेपकाल मे आचार्यश्री भारीमालजी का मुनि हेमराजजी आदि साधुओ के साथ किशनगढ मे पदार्पण हुआ। वे स० १८६९ का चातुर्मास करने के लिए जयपुर की ओर जा रहे थे। मार्ग मे कुछ दिनो के लिए वहा भी ठहरे। उस समय कल्लूजी आदि को आचार्य प्रवर की सेवा का अच्छा अवसर मिला। वहा से आचार्यश्री भारीमालजी ने जयपुर की तरफ और मुनिश्री हेमराजजी ने माधोपुर की तरफ चातुर्मास के लिए विहार किया। आचार्यश्री तो निर्विघ्न जयपुर पहुच गये। परन्तु मुनि हेमराजजी माधोपुर नही जा सके, क्योकि वर्षा अधिक होने के कारण मार्ग अवरुद्ध हो गया था। वे वापस किशनगढ आ गये और वह चातुर्मास उन्होंने वही किया। कल्लूजी आदि को अनायास ही सेवा का दूसरा अवसर प्राप्त हुआ। वालको के धार्मिक सस्कारी होने की सुदृढ भूमिका के लिए वह वहुत उपयोगी हुआ।

उस चातुर्मास मे कल्लूजी का किशनगढ मे थोडा ही रहना हुआ। वे पुत्रों सहित जयपुर मे आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा मे चली गई। वहां उन्हे काफी लम्वे समय तक गुरु सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्यश्री भारीमालजी का फाल्गुन महीने तक जयपुर मे ठहरना हुआ। वहा पर स्वरूपचदजी आदि तीनो भाइयो तथा माता कल्लूजी को वैराग्य प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम जीतमलजी का दीक्षा लेने का विचार हुआ। उसके वाद सरूपचद-जी की दीक्षा लेने की भावना हुई। उन्हे दीक्षा की विशेप प्रेरणा उनकी ससार पक्षीया बुआ साध्वीश्री अजवूजी (२९) से मिली। वे चातुर्मास समाप्ति पर गुरु दर्शनार्थ जयपुर आई हुई थी। सरूपचदजी ने जव उनकी सेवा की तो उन्होने उनको धर्मोपदेश दिया। उसका उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होने लगभग एक महीने के अदर-अदर तत्काल दीक्षित होने का सकल्प कर लिया।[1]

---

१. वचन सुणी सतिया तणा रे, चढिया अति परिणाम।
ततक्षिण त्याग किया तदा रे, मास आसरै आम॥

(स्वरूप नव० ढा० ३ गा० १५)

ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ६ मे डेढ महीने का उल्लेख है।

सरूपचदजी जयपुर से अपने घर गये और एक महीने मे गृहस्थ-संबंधी अपने समस्त कार्य से निवृत्त होकर वापस जयपुर आ गये। उन्होंने आवश्यक तात्त्विक ज्ञान सीखकर दीक्षा के लिए गुरुदेव से निवेदन किया तव आचार्यश्री ने जीतमल-जी से पहले स्वरूपचदजी को सयम देने की घोषणा कर दी। स्वरूपचंदजी ने माता कल्लूजी से दीक्षा की स्वीकृति प्राप्त की। जयपुर के लाला हरचदलाल जी ने धूमधाम से उनका दीक्षा महोत्सव किया। स० १८६९ पोप सुदि ९ को 'मोहनवाडी' मे वट वृक्ष के नीचे सरूपचदजी ने आचार्यश्री भारीमालजी से दीक्षा ग्रहण की।[1]

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० २ गा० ८३ मे मुनिश्री की दीक्षा तिथि पोप शुक्ला १५ लिखी है, जो उक्त प्रमाण से गलत है। स्वरूप-विलास तथा जय सुजश मे भी दीक्षा तिथि पोप शुक्ला नवमी ही है।

मुनि सरूपचंदजी की दीक्षा के पश्चात् आचार्यश्री भारीमालजीने जीतमल-जी को दीक्षित करने के लिए मुनि रायचदजी को आदेश दिया। उन्होंने घाट के दरवाजे के वाहर वट वृक्ष के नीचे माघ कृष्णा सप्तमी के दिन उन्हें दीक्षा प्रदान की।[2] माता कल्लूजी ने दोनों पुत्रो को दीक्षा की अनुमति देकर वहुत वडा लाभ प्राप्त किया।

आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनि स्वरूपचंदजी और जीतमलजी को ज्ञाना-र्जन के लिए मुनि हेमराजजी को सौंपा तथा उन्हें कोटा की तरफ विहार करा दिया।

दोनो भाइयो की दीक्षा के वाद माता कल्लूजी और भाई भीमजी की संयम लेने की भावना हुई तव फाल्गुन कृष्णा ११ को आचार्यश्री भारीमालजी ने दोनों को संयम प्रदान किया।[3]

(स्वरूप न० ढा० २, ३, ४ के आधार से)

५. मुनिश्री स्वरूपचदजी को वड़ी दीक्षा (छेदोपस्थानीय-चारित्र) सात

---

१. सवत् अठार गुणतरे, पोह सुदि नवमी पेख कै।
स्वहत्थ भारीमालजी,चरण दीयो सुविसेख कै॥

(स्वरूप नव० ढा० ४ गा० ८)

२. महाविद सातम दिने, जीत चरण सुखकार कै।
वड तरु तल ऋपिरायजी, दीधो सजम भार कै॥

(स्वरूप नव० ढा० ४ गा० १२)

३. फागुण विद एकादशी, स्वहत्थ भारीमाल कै।
मात सघाते भीम नै, चरण दीयो सुविशाल कै॥

(स्वरूप नव० ढा० ४ गा० १७)

दिनों से, मुनि भीमजी को मुनि जीतमलजी से बड़ा रखने के लिए चार मास से और मुनि जीतमलजी को छह महीनों से दी गई।

आचार्यश्री ने मुनि भीमजी को अपने पास रखा। साध्वी कल्लूजी को साध्वी अजबूजी को सौप दिया।

(स्वरूप नवरसा ढा० ५ दो० ३, ४ तथा ढा० ४ गा० १८ के आधार से)

मुनि स्वरूपचदजी मुनिश्री हेमराजजी के साथ रहकर आचार-विचार मे कुशल, गण-गणी के प्रति श्रद्धा-निष्ठ होकर विनय पूर्वक विद्याभ्यास करने लगे। उन्होने आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन (छबीस अध्ययन) वृहत्कल्प तथा आचारांग का द्वितीय सूत्रस्कंध[1] आदि आगमो को कठस्थ किया। अनेक बार बत्तीस सूत्रो का वाचन कर विविध प्रकार की सैद्धान्तिक रहस्यो की धारणा की।[2] व्याख्यान कला, लिपि-कौशल, वाचन-शैली, तथा चर्चा आदि मे भी अच्छा विकास कर लिया।

मुनि स्वरूपचंदजी ने मुनि हेमराजजी के साथ छह एव आचार्यश्री भारीमाल-जी के साथ एक चातुर्मास किया।

	संवत्	ग्राम				
१.	१८७०	इन्द्रगढ	मुनिश्री स्वरूपचदजी और जीतमलजी साथ थे।			
२.	१८७२	कटालिया	,,	भीमजी सहित तीनो भाई साथ थे।[3]		
३.	१८७३	सिरियारी	,,	,,	,,	,,
४.	१८७४	गोगुदा	,,	,,	,,	,,
५.	१८७५	पाली	,,	,,	,,	,,
६.	१८७६	देवगढ	,,	,,	,,	,,

स० १८७१ का चातुर्मास भारीमालजी के साथ बोरावड मे किया। मुनि भीमजी और जीतमलजी ने हेमराजजी स्वामी के साथ पाली चातुर्मास किया।[4]

(स्वरूप नव० ढा० ५ के आधार से)

---

१. स० १८७४ के गोगुदा चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के साथ मुनिश्री ने आचाराग का द्वितीय श्रुतस्कध सीखा था। (शाति विलास ढा० ३ गा० ४)

२. वार अनेक वाचिया, सूत्र बत्तीस उदार हो।
जाण झीणी रहिसा तणा, वारु न्याय विचार हो॥
(स्वरूप न० ढा० ८ गा० १)

३. पभणै भारीमालजी, ए त्रिहु बधव ताम हो।
हेम समीपे भेला रहो, इम कहि सूप्या आम हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० १०)

४. द्वितीय चौमास बोरावडे, भारीमाल रै पास हो।
भीम जीत ऋषि हेम पै, पाली सैहर प्रकाश हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० ६)

सं० १८७६ के देवगढ चातुर्मास मे गाय के द्वारा चोट लगा देने पर मुनिश्री हेमराजजी का घुटना उतर गया। दिल्ली वाले मगनीरामजी वैद्य के कथनानुसार मुनि स्वरूपचंदजी ने घुटने को वापस चढा दिया, परन्तु अत्यधिक पीड़ा होने से पैर को बीच मे छोड़ दिया जिससे थोडी कसर रह गई।

(जय सुजश ढा० ६ गा० ४ से ७ के आधार से)

मुनि स्वरूपचदजी ने मनोनुकूल सेवा-भक्ति करके मुनि हेमराजजी को सुप्रसन्न किया। उन्होने भी परम विनीत समझकर मुनि स्वरूपचदजी को खुले दिल से ज्ञान दिया और सिद्धातो की गूढतम धारणा करवाई।[1]

प्रत्येक चातुर्मास के पश्चात् वे मुनिश्री हेमराजजी के साथ आचार्य भारीमालजी के दर्शनार्थ आते तव उनकी विविध प्रकार से विनय-भक्ति तथा उपासना करते।[2]

६. स० १८७६ गगापुर मे आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनिश्री स्वरूपचदजी को सभी तरह से योग्य समझकर उनका सिंघाड़ा वनाया। उस समय जो पारस्परिक मधुर सवाद हुआ उसका चित्रण मूल पद्यो मे इस प्रकार है—

भारीमाल स्वामी तदा, वारु करी विचार।
अति प्रसन्न चित्त सू कियो, सरूप नो सिंघाड़।
सरूप भाखै स्वामजी, निसुणो मुझ अरदास।
हेम मेवा करवा तणो,मो मन अधिक उल्हास।
भारीमाल 'कहै हेम थी, वोलण रा पचखाण।
हेम भणी पिण त्याग ए, स्वाम कराया जाण।
भाखै जीत सरूप नै, पूज्य तणी ए आंण।
अगीकार कीजै सखर, लीजै सत सुजाण।
ताम सरूप अगीकरी, स्वाम आंण सुखकार।
इम चित्त प्रसन्न थी कियो, सरूप नो सिघाड।
पच सत आप्या प्रवर, पुर सैहरे चउमास।
सम्वत अठार सिततरे, अधिको धर्म उजास।

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ दो० ४ से ९)

---

१. अधिक रिझाया हेम नै, सखर साचवी सेव हो।
झीणी रहिस्य सिद्धात नी, सीखाई स्वयमेव हो॥

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० १४)

२. सहु चौमासा उतर्‌या, दर्श करवा आवै हेम हो।
जद स्वरूप स्वाम भारीमालजी, करै व्यावच धर प्रेम हो॥

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० १५)

मुनिश्री ने आचार्यश्री भारीमालजी से निवेदन किया कि मुझे अजना सती के अतिरिक्त व्याख्यान याद नही है और चातुर्मास प्रवास का लम्बा समय है, अत. रात्रि के समय किस व्याख्यान का वाचन करू ? आचार्यप्रवर ने फरमाया—'अजना के व्याख्यान का ही वार-वार वाचन करते रहना।'

मुनिश्री ने गुरुवाणी को शिरोधार्य कर स० १८७७ का प्रथम चातुर्मास पुर मे किया। वहा रात्रि के समय 'अजना सती' के व्याख्यान का छह वार वाचन किया। कुछ दिनो वाद रामचरित्र कठस्थ करना प्रारभ किया। दिन मे कठस्थ करते और रात्रि मे उसका वाचन करते। उनकी व्याख्यान शैली सुन्दर थी जिससे जनता वहुत आती और सुनकर प्रभावित होती।[1]

(श्रुतिगत)

उस चातुर्मास मे मुनिश्री सहित पांच साधु थे। उनमे मुनि पीथलजी (५६) ने चातुर्मासिक तप किया जो तेरापथ मे तव तक सर्वप्रथम था।

(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ७ के आधार से)

७ मुनिश्री के स० १८७७ के पुर चातुर्मास मे धर्म का प्रचार-प्रसार अच्छा हुआ। अपना प्रथम चातुर्मास सानद सम्पन्न कर वे गगापुर पधारे। वहा भी धर्म-ध्यान की अच्छी जागृति हुई। उन्होने जव वहा से विहार किया तव गंगापुर से डेढ कोस दूर 'कांगणी के माल' (ताल) मे कुआ के पास स० १८७७ पौष वदि ६ के दिन मुनि जीवोजी (८६) को तेरह वर्ष की वय मे गृहस्थ के वस्त्रो सहित दीक्षा दी और फिर काकडोली आकर भारीमालजी स्वामी के दर्शन किये एव नव दीक्षित मुनि को प्रथम भेट मे समर्पित किया।[2]

इसी वर्ष दूसरी वार गगापुर जाकर मुनिश्री ने स० १८७७ ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी को जीवोजी के वडे भाई मुनि दीपोजी (८५) को तथा उनकी पत्नी साध्वीश्री चत्रूजी (१००) को सयम प्रदान किया।[3]

---

१. रामचरित्र दिन नै विसँ गु०, काई मूढै करी तिवार।
रात्रि समय व्याख्यान दै गु०, काई एहवी वुद्धि उदार॥

(स्वरूप विलास ढा० ३ गा० ५)

१. पुर सू विहार करी मुनि रे, गगापुर मे आय।
जीव ऋषि ने सोभतो रे, चरण दियो सुखदाय॥
पूज समीपे आय नै रे, दर्शण कर हरषाय।
दिवस कितै भारीमाल नी रे, सेव करी सुखदाय॥

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० १, २)

२. इतलै बधव जीव नो रे, दीप सजोड़े न्हाल।
चरण लेण त्यारी थयो रे, साभलियो भारीमाल॥

मुनि दीपोजी और जीवोजी की दीक्षा का विस्तृत वर्णन उनके प्रकरण मे पढ़े।

८. मुनिश्री ने सं० १८७८ का चातुर्मास कांकड़ोली में किया। वहां भाइयों को तत्त्वचर्चा व थोकड़े आदि सिखलाने का विशेष प्रयास किया।

उसी वर्ष माघ कृष्णा ८ को आचार्यश्री भारीमालजी का स्वर्गवास हो गया। तीसरे आचार्यश्री रायचदजी पदासीन हुए। उन्होंने मुनि स्वरूपचंदजी को सर्व-प्रथम धर्म-प्रचार के लिए थली प्रदेश की तरफ भेजा। मुनिश्री ने पाच ठाणों से स० १८७९ का चातुर्मास लाडनू मे किया।[1]

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० ६ से ९ के आधार से)

९. लाडनू चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री ने ऋषिराय के दर्शन किये। सं० १८८० का चातुर्मास वोरावड मे किया। उसके वाद आचार्य प्रवर ने मुनिश्री को परमोपकारी जानकर मालव प्रान्त मे भेजा। उन्होंने सं० १८८१ का चातुर्मास पांच ठाणो मे उज्जैन मे किया। वहा मुनि पूजोजी(८८) 'उज्जैन' को दीक्षा प्रदान की। चातुर्मास के पश्चात् वडनगर पधार कर मुनि हिन्दूजी (९२) 'वड़नगर' को तथा धनजी (९३) 'उज्जैन' को दीक्षित किया एवं कोदरजी को दीक्षा के लिए तैयार किया। फिर वे आठ ठाणों से नाथद्वारा पधारे। वहां मुनि जीतमलजी से मिलन हुआ। वहा से उनके साथ (कटालिया) आकर आचार्यश्री रायचंदजी के दर्शन किये तथा मालव यात्रा के सव सस्मरण सुनाये। आचार्यश्री वहुत प्रसन्न हुए। मुनि कोदरजी(८९) 'वड़नगर' ने वहा आचार्यश्री के हाथ से दीक्षा स्वीकार की।

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० ९ से १६ के आधार से)

१०. सं० १८८२ से १८८६ तक मुनिश्री ने क्रमशः काकड़ोली, वोरावड़, रतलाम, नाथद्वारा और उदयपुर मे चातुर्मास रीणी (तारानगर) मे किया। उस क्षेत्र मे कालवादियों (निश्चय वादियो) की मान्यता थी। मुनिश्री ने समझाकर

तांम स्वरूप नै म्हेलियो रे, चारित्र देवा सार।
वलि म्हेली समणी भणी रे, भारीमाल तिणवार॥
तांम सरूप आवी करी रे, विहुं नै दिख्या दीध।
दर्शन कीधा पूज ना रे, जग मांहे जश लीध॥

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० ३ से ५)

[1] तांम स्वाम ऋषिरायजी रे, आंणी अति उचरंग।
थली देश मे मेलिया रे, प्रवर पच मुनि संग॥
गुण्यासीये वर्ष लाडनू रे…

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० ८, ९)

अनेक लोगो को तेरापथ की गुरुधारणा करवाई।[1]

उस समय वहा समझने वाले व्यक्तियों में एक शिवजी मथेरण भी थे।[2]

इस (१८८७) वर्ष आचार्यश्री रायचन्दजी का बीदासर, मुनिश्री जीतमलजी का चूरू, मुनि ईशरजी (६०) का रतनगढ तथा कुछ अन्य क्षेत्रो मे साध्वियो के चातुर्मास थे। सभी स्थानो मे अच्छा उपकार हुआ। स्थली प्रदेश मे सर्वप्रथम सत्य धर्म की सरिता प्रवाहित हुई।

(ऋषिराय सुजश ढा० ६ गा० ७ से १० के आधार से)

११. स० १८८८, ८६ और ६० मे मुनिश्री का चातुर्मास वोरावड, श्रीजीद्वारा और गोगुदा था। गोगुदा मे चातुर्मास के बाद मृगसर वदि १० को साध्वीश्री मोताजी (१६३) 'गोगुदा' कुमारी कन्या को दीक्षित किया। सं० १८६१ और १८६२ के वडे सतो के कल्प से) लगातार दो चातुर्मास गगापुर मे किये।

स० १८६२ चैत्र कृष्णा अष्टमी को नाथद्वारा मे मुनि अनोपचन्दजी (११४) नाथद्वारा को सयम दिया। जो सघ मे उग्र तपस्वी हुए। जिन्होने चार बार छह-मासी और एक बार सवा सातमासी तप करके गण मे नया कीतिमान स्थापित किया।

(स्वरूप नवरसा ढा० ७ दो० १ से ५ के आधार से)

---

१. 'उदियापुर' वर्स छयासीये रे, सत्यासीये 'रीणी' माय।
क्षेत्र ते कालवादी तणो रे, वहुजन नै लिया समझाय॥

(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० २०)

२. इस सदर्भ मे शिवजी के पुत्र गणेशजी मथेरण द्वारा रचित ढाल के पद्य इस प्रकार है—

कुल रा सतगुरु स्वरूप ऋषिवर, जय गणपत रा बडा भाई रे।
कुगुरु कालवाद्यां री श्रद्धा, मुझ पिता थकी छोडाई रे।
अठारै सौ सित्यासी वरसै, रीणी शहर मझारी रे।
सच्चा सतगुरु पिता नै मिलिया, म्हारै कुल रा मोटा उपगारी रे॥

(वैराग्य स्तुति पृ० ६३ ढा० २६ गा० १५, १६)

उक्त गीतिका के गाथा १७, १८ मे गणेशजी अपने सबध मे लिखते है कि मै जब वालक था तव मुनि गुलहजारीजी ने मुझे तत्त्व-वोध कराया। स० १६३२ लाडनू मे सर्वप्रथम मैने जयाचार्य के दर्शन किये तथा स० १६३६ जयपुर मे जयाचार्य की सेवा की।

गीतिका का अन्तिम पद्य इस प्रकार है—

उगणीसै अड़सठे चौमासे, पाछली रात मझारी रे।
ए जोड करी उछरग आणी ने, 'शिव-सुत' नीद निवारी रे॥२२॥

१२. मुनि स्वरूपचंदजी ने सं० १८९३ का चातुर्मास कांकडोली में किया। वहां भाई-बहनो मे ज्ञान-ध्यान एवं तप-त्याग की अच्छी वृद्धि हुई। मुनिश्री प्रतिवर्ष शेषकाल मे प्राय. आचार्यश्री रायचन्दजी की विशेष रूप से सेवा करते थे। कांकडोली चातुर्मास के पश्चात् भी उन्होने गुरु दर्शन कर काफी महीनो तक सेवा की। आषाढ़ महीने मे आचार्यश्री ऋषिराय नाथद्वारा पधारे। अन्य साधु भी उनके साथ मे थे। उस समय मुनि अमीचन्दजी (८०) कोचला वालों ने ऋषिराय से निवेदन किया—'यहा आपके साथ संत बहुत है, उन्हे अलग विहार करवा दें तो विशेष उपकार हो सकेगा।' तब ऋजुमना आचार्यश्री ने अधिकाश साधुओ को विहार करवा दिया। मुनि स्वरूपचन्दजी को भी विहार करने का आदेश दिया। मुनिश्री ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आप मुझे पहले तो विहार करवा देते है और फिर आवश्यकता होने पर वापस बुला लेते है, इसलिए अच्छा हो कि आप मुझे अपनी सेवा मे ही रखाए। ऋषिराय ने फरमाया—'इस बार मैं बुलाऊं तो भी मत आना, यह मेरी आज्ञा है।' मुनिश्री बोले—'यह कैसे हो सकता है कि आपके बुलाने पर भी मैं न आऊ। मेरी प्रार्थना का तात्पर्य तो इतना ही था कि आपको वापस बुलाने का कष्ट न उठाना पड़े, मुझे तो वापस आने मे कोई कष्ट नही है।' इस प्रकार विनति कर मुनि स्वरूपचन्दजी ने वहा से विहार किया और वे आमेट होते हुए कुवाथल पधार गये।

पीछे मुनि अमीचन्दजी (८०) आदि आचार्य भी ऋषिराय के पास थे। अमीचन्दजी की नीति अच्छी नही थी। उन्होंने अपने साथ वाले सभी सन्तों को वहां से विहार करवा दिया। स्वय अकेले ही रहे। उन्होने आचार्यश्री रायचन्दजी से कहा—'मैं गोगुदा चातुर्मास करूगा। आप राजनगर मे मुनि माणकचन्दजी (७१) है, उनके पास चले जाए।' इस प्रकार कहकर वे बनास नदी तक ऋषिराय के साथ आये और बोले—'मेरे नदी क्यो लगाएं अर्थात् नदी के पानी का स्पर्श क्यों करवाए, मैं वापस जाता हू आप राजनगर पधार जाए।' यह सुनकर तथा उनके दुष्ट विचार जानकर ऋषिराय वापस नाथद्वारा पधार गये। बाद मे भाइयो ने मुनिजी स्वरूपचन्दजी के पास कासीद भेजा। सवाद सुनते ही मुनिश्री ने तत्काल कुवाथल से विहार कर दिया। वे एक मजिल की दूरी पर रहे तब अमीचन्दजी आचार्यश्री रायचन्दजी को अकेला छोड़कर चले गये। उस समय ऋषिराय ने अमीचन्दजी से कहा—'तुमने इतनी बड़ी आशातना की है कि छह महीनो मे ही सम्भवत. पाप उदय में आ जायेगे। इस बार जीतमल के आने पर तुम्हारा सघ से बहिष्कार करवा दूगा।' दूसरे दिन मुनिश्री स्वरूपचन्दजी ने ऋषिराय के दर्शन किये। उनके आने से आचार्यश्री का मन बडा प्रसन्न हुआ। वे विनम्रतापूर्वक आचार्यश्री की सेवा का लाभ लेने लगे। अमीचन्दजी ने अपनी इच्छानुसार गोगुदा चातुर्मास किया। कार्त्तिक महीने मे

शीत उधड़ गया[1] जिससे बुरी तरह विराधक रूप मे मरण प्राप्त किया।

(प्रकीर्णक पत्र स० २७ प्रकरण ४)

आचार्यश्री रायचन्दजी ने गहराई से चिंतन कर एव मुनिश्री स्वरूपचन्दजी से परामर्श कर प्रच्छन्न रूप से परम योग्य समझकर मुनिश्री जीतमलजी के लिए युवाचार्य पद का पत्र लिखा और मुनि स्वरूपचन्दजी को सौप दिया। स्वरूप नवरसा मे उसका उल्लेख इस प्रकार है—

'श्रीजीद्वार' सरूप नै, आसाढ मास मझार।
अति ही प्रसन्न चित्त थई, भाखै वचन विचार॥
श्री मुख वचन फुरमावियो, साभल सीस स्वरूप।
जीतमल्ल भणी स्थापियो, पद युवराज अनूप॥
ए कांम कियो स्वमत थकी, इण मे अन्य तणो जश नाय।
इम वहुविध लिख सूपियो,सरुप भणी ऋषिराय॥
जीत परपूठे स्वामजी, स्थाप्यो पद युवराज।
सुगुरु रीजाया उभय भवे, सीझै वछित काज॥

(स्वरूप नवरसा ढा० ७ दो० १ गा० १ से ३)

स० १८९४ का चातुर्मास मुनिश्री स्वरूपचन्दजी ने आचार्यश्री के साथ नाथद्वारा मे किया। चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री जीतमलजी ने ऋषिराय के दर्शन किये तव युवाचार्य पद प्रकट कर दिया। इसका विस्तृत वर्णन ऋषिराय पचढालिया ढा० ३, ४ तथा जय सुजश ढा० २२, गा० ७ से १७ तथा ढा० २३ मे है।

१३. मुनिश्री स्वरूपचन्दजी ने युवाचार्य जीतमलजी के साथ स० १८९५ का चातुर्मास लाडनू मे किया। वहां सात साधु थे।[2] स० १८९६ से १९०० तक मुनिश्री ने क्रमश काकडोली, बोरावड, लाडनू, चूरू और रीणी (तारानगर) मे वर्षा वास किया।

फिर लाडनू आकर सं० १९०० माघ वदि ७ को 'सवाई की दो वहनों(माता-

---

१. शीताग (सन्निपात) चित्त विभ्रमता होने से पागल की तरह सुध-बुध रहित होना।

२. सवत् अठारै पिचाणुए, कियो 'चोमास सुचंग।
सात श्रमण सूं लाडणू, त्या सरूप-शशी पिण सग॥

(जय सुजश ढा० २६ गा० १)

पुत्री) वन्नाजी (२०६) और चूनांजी(२१०) कुमारी कन्या को दीक्षा प्रदान की।

(उक्त साध्वियों की ख्यात)

१४. सं० १६०१ में मुनिश्री ने उदयपुर चातुर्मास किया। वहा मुनिश्री मोतीजी (११८) 'दूधोड' ने पानी के आधार से १०८ दिन का तप किया, जो तेरापन्थ मे सर्वोत्कृष्ट था।[1]

स० १६०२ मे मुनिश्री का चातुर्मास युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ किशनगढ था। वहा सात साधु थे।[2] चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री ने लाडनूं पधारकर मृगसर सुदि ४ को साध्वीश्री सरसांजी (२२२) 'लाडनूं' को दीक्षित किया।

(साध्वीश्री सरसाजी की ख्यात)

स० १६०३ से १६०६ तक के चातुर्मास—लाडनू, बीदासर, सुजानगढ और चूरू मे किये।

(स्वरूप न० ढा० ७ गा० ६, १० के आधार से)

स० १६०६ जेठ सुदि तेरस को बीदासर में साध्वीश्री मूलांजी (२२५) 'बीकानेर' को चारित्र दिया।

(सा० मूलांजी की ख्यात)

१५. युवाचार्यश्री जीतमलजी ने स० १६०६ का चातुर्मास बीकानेर मे किया था। फिर श्रावकों की विशेष प्रार्थना पर आचार्यश्री रायचदजी ने युवाचार्यश्री को स० १६०७ का चातुर्मास भी बीकानेर मे करने का आदेश दिया। कल्प के लिए मुनिश्रीस्वरूपचदजी को भेजा[3]। मुनिश्री ने युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ वह चातुर्मास किया। चातुर्मास मे १० साधु थे[4]।

स० १६०८ का चातुर्मास भी मुनिश्री ने युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ बीदासर मे किया। वहां बारह साधु थे। चातुर्मास मे बालक मघवा को दीक्षा के

---

१. उगणीसै एके समै, उदीयापुर सैहर मझार।
एक सौ आठ 'मोती' किया, वर तप उदक आगार॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ८)

२. उगणीसै बीये वर्ष, साथ मुमुक्ष सात।
कृष्णगढ माहे कियो, चतुरमास विख्यात॥

(जय सुजश ढा० ३० दो० १)

३. जिन मुनियो ने चातुर्मास किया वहा उन्हे अगले दो वर्षो तक बड़े साधुओं के साथ मे रहने से ही चातुर्मास करने का विधान है।

४ साते वर्ष सरूप शशि दे रे, दस मुनि सग चौमास।

(जय सुजश ढा० ३१ गा० १३)

लिए तैयार किया[1]।

स० १९०८ माघ वदि १४ को आचार्यश्री रायचदजी का छोटी रावलियां (मेवाड) मे स्वर्गवास हो गया। स० १९०८ माघ शुक्ला पूर्णिमा को बीदासर मे जयाचार्य चतुर्थ पट्ट पर आसीन हुए।

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ३ से ८)

१६ मुनिश्री स्वरूपचदजी आचार्यश्री भारीमालजी तथा रायचदजी के विशेष कृपापात्र थे। जयाचार्य ने पदासीन होकर उनको बहुत सम्मान दिया एव आहारादिक के विभाग से मुक्त किया[2]।

ख्यात मे उल्लेख है कि उन्हे आहार तथा सभी प्रकार के कार्य विभाग से मुक्त किया।

१७. जयाचार्य ने मुनिश्री की प्रमुख-प्रमुख विशेषताओ का सत गुणमाला तथा 'स्वरूप नवरसा' मे उल्लेख किया है। उसके कुछ पद्य निम्न प्रकार है—

स्वामी स्वरूपचदजी शोभता रे, त्या सजम लीयो जयपुर माय रे।
ते पडत हुआ छै परवडा रे, त्यानै वादो पाचू अग नमाय रे॥

(सत गुणमाला ढा० १ गा० ३१)

लिखणो पढणो वाचणो, चित्त चरचा नी चूप हो।
विनय वैयावच्च करण मे, अति उजमाल अनूप हो॥
जबर सासण नी आसता, परम पूज्य सू प्रीत हो।
प्रबल पडित बुद्धि सागरु, सतगुरु ना सुविनीत हो॥
कला घणी चरचा तणी, अन्य मति ने आप हो।
बद करै इक बोल मे, साधीर्यता चित्त स्थाप हो॥

(स्वरूप नव० ढा० ५ गा० १४, १७, १८)

भारीमाल ऋषिराय नी, हेम व्यावच विध रीत हो।
विध-विध सू रीझाविया, पूर्ण त्यासू प्रीत हो॥

---

१. हिवे सवत उगणीसै वर्ष आठे, कियो बीदासर चउमास जी।
स्वरूपचदजी स्वामी पिण साथे, द्वादस मुनि गुणरास जी॥

(जय सुजश ढा० ३४ गा० ८)

आठे बीदासर सैहर मे, जीत सग चउमास।
चारित्र लेण मघराज नै, त्यार कियो सुप्रकास॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० ११)

२. सरूप नै तिणवार रे, असणादिक पाती विना।
जय वर बगसी सार रे, वलि अति कुर्व वधावियो॥

(स्वरूप नव० ढा० ७ का अन्तर्गत सो० १०)

अधिक सासण नी आसता, जिला नी चिड अधिकाय हो।
कोइ कटमी वात करै गण तणी, तिण नै जेहर सरीसो जाणै ताय हो ॥

सम्यक्त मे सेंठा घणां, ए गुण अधिक अमोल हो।
खामी देख भयभ्रत होवै नही, मदर जेम अडोल हो ॥
सत निभावण नी कला, ते पिण कहिय न जाय हो।
'ऊचंचलाइ पणो' तजी, देवै धीरप सू समजाय हो ॥
आलोचना ऊडी घणी, ए पिण गुण इधिकाय हो।
तीन काल री विचारणा, जवर हिया रै मांय हो ॥
गुणग्राही पिण अति घणां, अधिक निभावत प्रीत हो।
जेहनै आप अगी कर्यो, राखै तेहनी रीत हो ॥
अधिक मनुष्य नी पारखा, स्वाम सरूप रै सार हो।
कोई कपट प्रपच करै तसु, ओलखी संग निवार हो ॥
जय गणपति नी आगन्या, अखड अराधी आप हो।
परम प्रीत चित मे घणी, मिलवै हर्ष सुव्याप हो ॥
सासण अधिक दिढ़ावता, व्याख्यानादिक माय हो।
सासण दिढावै तेह सूं, राखै हेत सवाय हो ॥

(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १३, १६ से २१, २३, २४)

१८. मुनिश्री ने अनेक वार ३२ सूत्रों का वाचन किया। गूढतम रहस्यो की वारीकी से छानवीन की। नियठा, सजया, वद्धी लद्धी, समोसरण, गम्मा, चरम पद, महादंडक, खडाजोयण, गांगेय का भागा, पुद्गल परावर्तन, डाला, पाला, कंपमान आदि अनेक थोकड़े कठस्थ किये तथा अपनी प्रतिभा से नये थोकड़े भी वनाये।

(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १ से ८ के आधार से)

१९. एक बार मुनिश्री स्वरूपचंदजी विहार करते हुए मार्ग के किसी गांव मे ठहरे। वहां आहार तो पर्याप्त आ गया परन्तु पानी वहुत कम आया। मुनिश्री ने साथ के सभी साधुओं से कहा—'आज पानी वहुत कम है इसलिए सभी को ऊनोदरी तो करना ही है, फिर भी सम विभाग के लिए टोपसी से माप-माप कर ही पानी पीना है, जिससे दूसरो को उसका पूरा विभाग मिल सके।'

मुनिश्री के कथन का प्राय. सभी साधुओ ने ध्यान रखा पर एक साधु ने विना मापे ही पानी पी लिया। मुनिश्री ने उसे उपालभ देते हुए कहा—'मेरे कहने के पश्चात् तुमने विना मापे पानी क्यो पिया ?' वह साधु वेपरवाहीसे उत्तर देता हुआ वोला—'पानी भी कोई माप-माप कर पिया जाता है ? मुझे प्यास लगी थी अतः अधिक पी लिया तो क्या हुआ ?'

मुनिश्री ने उसे समझाते हुए कहा—'सामान्य स्थिति मे पानी को मापकर

पीना आवश्यक नही होता पर आज तो विशेष स्थिति थी, इसलिए तुम्हे ध्यान रखना था।' फिर भी वह साधु आग्रह करता रहा और अट-सट बोलता रहा। न तो वह अपनी गलती मानने को तैयार हुआ और न व्यवस्था को ही। आखिर अनुशासन और व्यवस्था का भग करने पर मुनिश्री ने उसका सघ से सबध विच्छेद किया।

कुछ दिन पश्चात् मुनिश्री ने आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन किये। उस समय ऋषिराय ने मुनिश्री से कहा—'स्वरूप! तुमने छोटी-सी बात के लिए उसे गण से अलग कर दिया, यह अच्छा नही किया।'

आचार्यश्री भारीमालजी ने बीच मे टोकते हुए फरमाया—'नही, स्वरूप ने ठीक काम किया। जो साधु अनुशासन का भग करे, उसे सघ मे रखना कभी भी हितकर नही होता।'

(अनुश्रुति के आधार से)

२०. मुनिश्री ने स० १९०९ का चातुर्मास ९ साधुओ से लाडनू मे किया। वहा साध्वीश्री सिणगाराजी (२८०) को दीक्षा दी। सिणगाराजी की ख्यात मे दीक्षा तिथि कार्त्तिक शुक्ला ३ है तथा स्वरूप नवरसा ढा० ७ सो० १ मे मृगसर महीने मे दीक्षा देने का उल्लेख है।

स० १९०९ के शेषकाल मे मुनिश्री मेवाड पधारे। वहा जयाचार्य ने मुनिश्री स्वरूपचदजी तथा साध्वीश्री नवलाजी (२४०) को मोखणदा भेजा। मुनिश्री ने मोखणदा मे फाल्गुन वदि ७ को खेमाजी (२८४) 'मोखणदा' को दीक्षित किया। साध्वी खेमाजी मुनिश्री जोगीदासजी (१९०) की पुत्री तथा साध्वीश्री हस्तूजी (३६२) की वहिन थी।

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० १२, सो० १, २ तथा ख्यात के आधार से)

मुनिश्री ने स० १९१० का चातुर्मास उदयपुर, १९११ का ग्यारह ठाणा से वखतगढ और १९१२ का बारह ठाणो से श्रीजीद्वारा मे किया। स० १९१२ की चातुर्मास तालिका मे ९ ठाणो का उल्लेख है।

स० १९१२ के शेषकाल मे मुनिश्री विहार करते हुए बड़ी पादू पधारे। वहा मुनि हसराजजी (१७२) 'वडी पादू' को दीक्षा प्रदान की।

स० १९१३ मे ग्यारह साधुओ से जयपुर चातुर्मास किया। वहां माघ सुदि २ को लिछमांजी (३११) 'जयपुर' को दीक्षा देकर साध्वी मोताजी (१३६) को सौप दिया।

स० १९१४ का चातुर्मास १२ साधुओं से लाडनूं १९१५ का बीदासर, १९१६ का चूरू, १९१७ का तेरह साधुओं से लाडनू और स० १९१८ का ११ साधुओ से बीदासर किया। सं० १९१८ के शेषकाल मे मुनि ज्ञानचदजी (१८९) को दीक्षा दी। वे रतनगढ़ के थे और उन्हे रतनगढ मे दीक्षा दी, ऐसा उनकी

ख्यात मे लिखा है।

सं० १९१९ का ११ साधुओं से चूरू चातुर्मास किया। तत्पश्चात् वृद्धावस्था एवं शारीरिक दुर्बलता के कारण मुनिश्री धीरे-धीरे लाडनू पधारे और स० १९२० से १९२५ तक वहा स्थिरवास किया।

(स्वरूप नव० ढा० ७ गा० १३ से १६ तथा ढा० ८ दो० १ से ५ के आधार से)

२१. मुनिश्री के अग्रणी अवस्था के चातुर्मासो की तालिका इस प्रकार है—

	संवत्	ग्राम
१.	१८७७	पुर, पाच साधुओ से।
२.	१८७८	काकडोली, पांच साधुओ से।
३.	१८७९	लाडनू, पाच साधुओं से।
४.	१८८०	बोरावड़।
५.	१८८१	उज्जैन, ५ साधुओ से।
६.	१८८२	काकडोली।
७.	१८८३	बोरावड।
८.	१८८४	रतलाम
९.	१८८५	श्रीजीद्वारा
१०.	१८८६	उदयपुर
११.	१८८७	रीणी (तारानगर)
१२.	१८८८	बोरावड
१३.	१८८९	श्रीजीद्वारा
१४.	१८९०	गोगुदा
१५.	१८९१	गगापुर
१६.	१८९२	गंगापुर (वड़े सतो के कल्प से)
१७.	१८९३	काकड़ोली
१८.	१८९४	श्रीजीद्वारा, आ० रायचंदजी के साथ
१९.	१८९५	लाडनू युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, साधु ७[1]।
२०.	१८९६	काकड़ोली
२१.	१८९७	बोरावड
२२.	१८९८	लाडनूं आ० रायचदजी के साथ
२३	१८९९	चूरू
२४.	१९००	रीणी

१. जय सुजश ढा० २७ दो० १।

२५. १६०१ उदयपुर
२६. १६०२ किशनगढ़ युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, साधु ७[1]।
२७. १६०३ लाडनूं
२८. १६०४ बीदासर
२६. १६०५ लाडनू
३० १६०६ चूरू
३१. १६०७ बीकानेर युवाचार्यश्री जीतमलजी के साथ, साधु १०[2]।
३२. १६०८ बीदासर ,, ,, ,, ,, ,, ,, १२[3]।
३३. १६०९ लाडनू ६ साधुओ से
३४. १६१० उदयपुर
३५. १६११ वखतगढ ११ साधुओ से
३६. १६१२ श्रीजीद्वारा १२ ,, ,,[4]
३७. १६१३ जयपुर ११ ,, ,,
३८. १६१४ लाडनू १२ ,, ,,
३९. १६१५ बीदासर
४०. १६१६ चूरू
४१. १६१७ लाडनू १३ ,, ,,
४२. १६१८ बीदासर ११ ,, ,,
४३. १६१६ चूरू ११ ,, ,,
४४ से ४६. १६२० से १६२५ तक लाडनू मे स्थिरवास किया।

(स्वरूप नव० ढा० ६ से ८ के आधार से)

जयाचार्य पदासीन होने के पश्चात् मुनिश्री की सेवा मे कम से कम ८ साधु

---

१. जय सुजश ढा० ३० दो० १।
२. जय सुजश ढा० ३१ गा० १३।
३. जय सुजश ढा० ३४ गा० ८।
४. मुनि जीवोजी (८६) कृत साध्वी नवलाजी (२८५) की गुण वर्णन गीतिका के अन्तर्गत एक दोहे के उल्लेखानुसार इस चातुर्मास मे नौ साधु थे।

चेतन (८६), उदैचद (६४), जीव ऋषि (११३), बीजराज (१३५), रूपचद (१३४) भवानजी (१२०), माणक (६६), मन वसिये कालू (१६३) करै आनंद॥

(नवल सती गु० व० ढा० दो० १)

उदयपुर के श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मासिक तालिका मे भी ६ ठाणो का उल्लेख है।

तथा अधिक से अधिक १८ साधु तक रहे ऐसा ख्यात तथा शासन प्रभाकर भारी संत वर्णन ढा० ४ गाथा ६१ मे उल्लेख है।

२२. मुनिश्री वडे परिश्रमी और यशस्वी थे। वे जो कार्य करते उसमे प्रायश: सफल होते। उन्होने प्रतिवोध देकर तथा तत्त्वज्ञान सिखाकर अनेक व्यक्तियो को सुलभ वोधि, सम्यक्त्वी और श्रावक वनाया तथा कई भाई-वहिनो को दीक्षा प्रदान की[1]।

मुनिश्री द्वारा दीक्षित ८ साधु और ६ साध्वियो की सूची इस प्रकार है—

साधु—

१. स० १८७७ पोप वदि ६ को मुनिश्री जीवोजी (८६) 'गंगापुर' को गगापुर से १॥ कोश दूर कागणी के माल म कुएं के पास दीक्षा दी।
२. स० १८७७ जेठ सुदि १३ को मुनिश्री दीपोजी (८५) जीवोजी के वड़े भाई को उनकी पत्नी चन्नूजी सहित गगापुर मे दीक्षा दी।
३. स० १८८१ मे मुनिश्री पूजोजी (८८) 'उज्जैन' को उज्जैन मे।
४. स० १८८१ मे मुनिश्री हिन्दूजी (६१) 'वड़नगर' को वड़नगर मे धनजी के साथ दीक्षा दी।
५. सं० १८८१ मे मुनिश्री धनजी (६२) उज्जैन को वड़नगर मे हिन्दूजी के साथ दीक्षा दी। (जय सुजश ढा० १० दो० २)
६. स० १८६२ चैत्र कृष्णा ८ को मुनिश्री अनोपचंदजी (११४) 'नाथद्वारा' को नाथद्वारा मे दीक्षा दी।
७. सं० १६१२ मे मुनिश्री हसराजजी (१७२) 'वडी पादू' को वड़ी पादू मे दीक्षा दी।
८. सं० १६१६ मे मुनिश्री ज्ञानचदजी (१८६) 'रतनगढ' को रतनगढ़ मे दीक्षा दी।

(उक्त साधुओं की ख्यात)

साध्वियां—

१. स० १८७७ जेठ सुदि १३ को साध्वीश्री चन्नूजी (१००) 'गगापुर' को पति दीपोजी सहित गगापुर मे दीक्षा दी।

---

१. चार तीर्थ नै सीखायवा, उद्यमी अधिक अनूप।
वहु नै बोध पमावियो, वले वहुजन नै समजाय हो॥
श्रावक कीधा सुदरु, वहु नै चरण दीयो सुखदाय हो।
(स्वरूप नवरसो ढा० ८ गा० ८, ६)

२. स० १८९० मृगसर वदि १० को कुमारी कन्या मोताजी (१३६) 'गोगुदा' को गोगुन्दा मे दीक्षा दी।
३. सं० १९०० माघ वदि ७ को वन्नाजी (२०६) 'लाडनू' को पुत्री चूनाजी सहित लाडनू मे दीक्षा दी।
४. स० १९०० माघ वदि ७ को कुमारी कन्या चूनाजी (२१०) 'लाडनू' को माता वन्नाजी सहित लाडनू मे दीक्षा दी।
५. स० १९०२ मृगसर सुदि ४ को साध्वीश्री सरसांजी (२२२) 'लाडनू' को लाडनू मे दीक्षा दी।
६. स० १९०६ जेठ सुदि १३ को साध्वीश्री मूलाजी (२५५) 'बीकानेर' को बीदासर मे दीक्षा दी।
७. स० १९०९ कार्त्तिक शुक्ला ३ को साध्वीश्री सिणगांराजी (२८०) 'लाडनू' को लाडनू में दीक्षा दी। ऐसा ख्यात मे है पर स्वरूप नवरसा ढाल ७ सो० १ मे मृगसर महीने मे दीक्षा देने का उल्लेख है।
८. स० १९०९ फाल्गुन वदि ७ को खेमांजी (२८४) 'मोखणदा' को मोखणदा मे दीक्षा दी।
९. स० १९१३ माघ सुदि २ को साध्वीश्री लिछमाजी (३११) 'जयपुर' को जयपुर मे दीक्षा दी।

(उक्त साध्वियो की ख्यात)

२३ मुनिश्री ने अनेक साधु-साध्वियो को अस्वस्थता के समय चित्त-समाधि उपजा कर, तप तथा अन्तिम समय मे अनशन करवा कर बहुत सहयोग दिया[१]। उनकी प्राप्त तालिका इस प्रकार है—

१. स० १८८७ मे माता कल्लूजी (७४) को अन्तिम सलेखना के समय दर्शन, सेवा का लाभ देकर मातृ-ऋण से मुक्त हुए।

(साध्वी कल्लूजी की ख्यात)

२. सं० १८९० गोगुदा चातुर्मास मे मुनिश्री जीवोजी (४४) तासोल वालों को अस्वस्थता के समय अच्छा सहयोग दिया[२]।

३. स० १८९७ मे मुनिश्री मोतीजी (९६) 'बाघावास' वालों को अन्त

---

१. पडित मरण घणा भणी, आप करायो ताय हो।
अधिक साहज्य दीधो मुनि, वलि संजम साहज्य सवाय हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० २२)

२ पाचू साध सेवा कीधी प्रेम सू, सरूपचन्दजी भले दीधो साज रे।
सागारी अणसण कीधो अति सोभतो, जीत नगारा रह्या बाज रे॥
(जीव० मु० गु० व० ढा० १ गा० १०)

समय में शरणे आदि दिलाकर उनकी भावना बलवती की[1]।

४. स० १९१२ में मुनिश्री का चातुर्मास नाथद्वारा में था। चातुर्मास में कोठारिया पधार कर उन्होने साध्वीश्री नवलांजी (२८५) को साहाय दिया।

(साध्वी नवलांजी की गु० व० ढाल)

५. मुनिश्री जीवोजी (८६) रचित साध्वीश्री नवलांजी (२८५) की ढाल के अन्तर्गत दोहे के उल्लेखानुसार मुनि रूपचंदजी (१३४) सं० १९१२ के नाथद्वारा चातुर्मास मे मुनिश्री स्वरूपचदजी के सिंघाड़े मे थे। ख्यातानुसार उस वर्ष अनशन-पूर्वक नाथद्वारा मे दिवगत होने से लगता है कि वे मुनिश्री के पास चातुर्मास मे पंडित-मरण प्राप्त हुए और मुनिश्री सहायक बने।

६. स० १९२२ लाडनू मे मुनिश्री उदयराजजी (९५) को अनशन करवाया एवं सलेखना, संथारे के ६५ दिनो मे पूर्ण सहयोग दिया।

(उदयचद चो० ढा० ३, ४)

७. सं० १९२४ वैसाख मे मुनिश्री शिवलालजी (११७) को सथारा करवाया[2]।

८. स० १९२५ मृगसर मे मुनिश्री भेरजी (७९) देवगढ़ वालों को सहयोग दिया[3]।

९. स० १९२५ द्वितीय वैसाख मे साध्वीश्री वन्नांजी (२७०) (मघवागणी की माता) को अतिम समय मे अच्छा सहयोग दिया।

(जय सुजश ढा० ५२ गा० १४)

२४. ख्यात में उल्लेख है कि मुनिश्री द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रगामी बनें—

१. मुनिश्री दीपोजी (८५), जो बड़े तपस्वी हुए, जिन्होंने छह मासी तप किया।
२. मुनिश्री जीवोजी (८६), जिन्होंने ११ सूत्रो की जोड़ की, अनेक सत-सती गुण वर्णन की ढाले बनाई। आयम्बिल वर्धमान तप की ४४ अवली तक चढकर सघ मे नया कीर्तिमान स्थापित किया।

---

१. छेहड़ै साझ दीयो भलो, सरूपचंद जसोती हो।
चित्त साचै कर सरधिया, गुण ग्राहक मोती हो॥

(मोती गु० व० ढा० १ गा० ६)

२. स्वाम सरूप रे आगलै रे, सप्त पोहर संथार।
चौवीसे वैसाख मे रे, कर गयो खेवो पार॥

(शिवलाल मुनि गुण० व० ढा० १ गा० ६)

३. स्वरूपचंदजी स्वामीजी, सखरो दीधो स्हाज।
वर्ष पणवीसे गाइयो, भैर भवोदधि पाज॥

(भैर मुनि गु० ढा० १ गा० ७)

३. मुनिश्री पूजोजी (८८), जो तपस्वी संत हुए। जिन्होने २२ तक की लडी, ऊपर मे ३३ दिन का तप तथा अनेक बार मासखमण किये।
४. मुनिश्री हिन्दूजी (९२), जिनमे हस्तकौशल अच्छा था। जिन्होने १८९७ मे मुनिश्री हेमराजजी की आख का ऑपरेशन किया।
५. मुनिश्री अनोपचन्दजी (११४), जो महान् तपस्वी हुए। जिन्होंने साधु-सघ मे सर्वोत्कृष्ट तप किया। सं० १९०९, १०, ११ मे लगातार तीन वर्ष छह-मासी तप किया। स० १९१२ मे सवा सातमासी तप किया। जो साधु-समाज मे सर्वाधिक है। सं० १९१५ मे फिर छहमासी की।

(उक्त साधुओं की ख्यात)

२५. मुनिश्री ने मुनि भवानजी लघु (१६०) तथा मुनिश्री कालूजी वडा (१६३) आदि सतो को पढा-लिखा कर तैयार किया। दोनो ही मुनियो ने मुनिश्री की प्रारम्भ से अत तक बहुत सेवा की[1] एव बाद मे वे अग्रगामी बनकर विचरे। मुनिश्री कालूजी की शासन सेवा तो इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो मे अकित है।

(ख्यात)

२६. मुनिश्री ने उपवास, वेले आदि बहुत किये। ऊपर मे १५ दिन का तप किया[2]।

स० १८७४ मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ गोगुदा चातुर्मास मे १४ दिन की तपस्या की थी। (हेम नवरसो ढा० ५ गा० २५)

स० १८७५ के पाली चातुर्मास मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ ४२ उपवास किये थे। (जय सुजश ढा० ६ दो० २)

मुनिश्री ने शीतकाल मे अनेक वर्षो तक एक पछेवड़ी से अधिक नही ओढी। स० १९०८ के पश्चात् तो वे रात्रि के समय उस पछेवड़ी को उतार कर विशेष रूप से स्वाध्याय किया करते थे[3]।

---

१. वहु वर्षा लग छेडा सूधी, 'भवान' 'कालू' आदि।
तन-मन सेती सेव करि अति, विविध प्रकार समाधि॥
(स्वरूप नवरसो ढा० ९ गा० ६९)

२. चोथ छठादिक तप वलि, पनर दिवस लग कीध हो।
कर्म काटण उद्यमी घणां, जग माहे जश लीध हो॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १२)

३. शीतकाल मांहै मुनि, एक पछेवडी उपरत।
वहुलपणै ओढी नही, वर्ष घणै मतिवत॥
आठा ना वर्ष पछै मुनि, इक पछेवडी परिहार।
प्रवर सझाय निशा विषै, करता अधिक उदार॥
(स्वरूप नव० ढा० ८ गा० १०, ११)

२७. मुनिश्री स्वरूपचदजी का वार्धक्य तथा शारीरिक अस्वस्थता से छह वर्ष (स० १६१६ से २५) लाडनू मे स्थिरवास रहा। उन वर्षों मे जयाचार्य[1] प्रायः आस-पास विहरण करते। समय-समय पर पधार कर मुनिश्री को परम समाधि उपजाते। सं० १६२५ का जोधपुर चातुर्मास करके जयगणी लाडनू पधार रहे थे तब मुनिश्री स्वरूपचदजी ने तीन साधुओ को डेगाना तक आचार्यश्री के सामने भेजा। जयाचार्य ने माघ वदि २ को शहर में प्रवेश किया तब स्वय मुनिश्री ने बहुत साधुओ से सामने पधार कर जयाचार्य की अगवानी की। पारस्परिक मिलन को देखकर भाई-बहिनों मे हर्ष की नई लहर दौड़ गई। सभी अत्यंत प्रभावित हुए। समूचे शहर मे उल्लासमय वातावरण हो गया। विशाल जुलूस के साथ जयाचार्य एव मुनिश्री ने शहर मे प्रवेश किया। पचायत के नोहरे मे विराजना हुआ। व्याख्यानादिक मे अच्छा रग खिलने लगा। जयाचार्य का मुनिश्री के साथ अध्यात्म-प्रधान आगम-रहस्यों के विषय में सरस वार्तालाप हुआ। मुनिश्री की स्वाध्याय मे विशेष रुचि रहती थी। वे दिन-रात मे उत्तराध्ययन, दशवैकालिक आदि के हजारो पद्यो का पुनरावर्तन करते थे। माघ वदि १३ के दिन वमन होने से मुनिश्री के मस्तक मे वेदना बढ गई। वे उसे समभावो से सहते रहे। माघ शुक्ला ७ को मर्यादा महोत्सव मनाया। जयगणी २६ दिन विराजकर सुजानगढ पधारे। वहां ६ दिन रहकर बीदासर पधारे। बीसवे दिन मुनिश्री के हिचकी अधिक आने के समाचार सुनकर जयाचार्य ने बीदासर से तत्काल विहार किया और रास्ते मे एक रात्रि ठहर कर वापस लाडनू पधारे। आचार्यश्री के आगमन से मुनिश्री को पूर्णतः आराम हो गया। जिससे सभी को बहुत हर्ष हुआ। जयाचार्य ६ दिन लाडनू मे ठहरे। मुनिश्री के स्वस्थ होने पर सुजानगढ की तरफ विहार किया। वहा एक महीने लगभग विराजकर वापस लाडनू पधार गए।

एक दिन मुनिश्री स्वरूपचदजी से साधुओ ने विनति की कि आप जयाचार्य को यहा ठहरने के लिए निवेदन करें। मुनिश्री बोले—'यदि जयगणी मेरी बात माने तो मैं उनके पैर पकड कर यहा रख लू।' उस समय साध्वीश्री सरदारांजी ने मुनिश्री के दर्शन करके कहा—'आपकी शक्ति प्रतिदिन क्षीण हो रही है, यदि आपकी इच्छा हो तो जयाचार्य यहां पर और भी विराज सकते है।' मुनि स्वरूपचदजी बोले—'मुझे उनके रहने का कोई भरोसा नही लगता।' सरदाराजी ने निवेदन किया—'आप ऐसा क्यो फरमाते है, आपके लिए ही तो गुरुदेव जोधपुर से विहार कर शीघ्रता से यहां पधारे है। आप पूर्णत. आश्वस्त रहे

---

१. जयाचार्य ने उन वर्षों मे इन ग्रामो में चातुर्मास किये—सं० १६१६ सुजानगढ, स० १६२० चूरू, १६२१ जोधपुर, १६२२ पाली, १६२३ बीदासर, १६२४ सुजानगढ, १६२५ जोधपुर।

किसी तरह मन मे विचार न करे।' फिर सरदार सती ने जयाचार्य को उक्त सब बात कही तब जयाचार्य ने तत्काल स्वरूपचंदजी स्वामी के समीप आकर कहा—'मै आपके पास शेषकाल मे रहने के अतिरिक्त चातुर्मास भी कर सकता हू। आप निश्चित रहे।' ये शब्द सुनकर मुनिश्री का मन हर्ष से भर गया[1]।

जयाचार्य ने मुनिश्री स्वरूपचदजी को महाव्रतो का उच्चारण करवाया। मुनिश्री ने सम्यक् प्रकार से आलोचना तथा क्षमायाचना की। जेठ वदि ३ को मुनिश्री ने अच्छी तरह भोजन किया। दो प्रहर दिन चढने के बाद मुनि भवानजी को अमूल्य शिक्षाए दी। मुनि कालूजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की तब फरमाया—'तुम्हे तो अनेक बार शिक्षा दी हुई है।' युवाचार्यश्री मघराजजी ने मुनिश्री को सुखपृच्छा की तब कहा—'कुछ जी मचल रहा है।' जयगणी ने मेरे लिए किसी प्रकार की कमी नही रखी। फिर 'साल' (शाला') से उठकर ओरे (कमरा) के पास तम्बाकू मसला कर रात्रि-शयन के स्थान पर आए। जयाचार्य और सरदार सती ने मुनिश्री को सुखसाता पूछी तब बोले—'आज कुछ घबराहट हो रही है।' फिर मुनिश्री ने जयाचार्य को सुख-पृच्छा की। इस तरह वे पूर्ण सावचेत थे। सायंकाल अल्प भोजन लिया। थोडा-थोडा कई बार पानी पिया। एक मुहूर्त्त रात्रि के पश्चात् मुनिश्री को पूछकर जयाचार्य ने सागारी सथारा करवाया। चार शरण दिलाकर सैद्धान्तिक उद्धरणो के द्वारा उनके भावो को ऊर्ध्व चढाया। जेठ वदि ४ शनिवार को एक मुहूर्त्त दिन चढने के बाद परम समाधिपूर्वक मुनिश्री स्वर्ग पधार गए[2]। साधुओ ने उनके शरीर का विसर्जन करके चार 'लोगस्स' का ध्यान किया। श्रावक-वृन्द ने इकतीस खडी मडी बना कर धूमधाम से मृत्यु-महोत्सव मनाते हुए मुनिश्री के शरीर का दाह-सस्कार किया।

मुनिश्री के स्वर्गवास से चतुर्विध सघ मे अथक उदासी छा गई। मन मे स्मृति और नयनों के सम्मुख उनकी मूर्त्ति नृत्य करने लगी। मुख-मुख पर उनके गुणों के स्वर गूजने लगे।

जयाचार्य ने मुनिश्री स्वरूपचन्दजी के जीवन-प्रसग मे दो आख्यान बनाए। उनमे उनके विविध पहलुओ पर सुन्दरतम प्रकाश डाला है।

'स्वरूप नवरसा'—इसकी ९ गीतिकाए हैं। जिनमे ६२ दोहे १५ सोरठे और

---

१. आप तणै पासे मुज रहिवू, वलि भेलो चउमास।
सरूप एहवो वचन सुणी नैं, पाम्या अधिक हुलास॥
(स्वरूप नव० ढा० ९ गा० ३१)

२. 'जेठ कृष्ण सनि चौथ प्रभाते, पडित मरण उदार।'
(स्वरूप नव० ढा० ९ गा० ६८)

२२२ गाथाए है। कुल पद्य २९९ और ग्रंथाग्र ३६० है। इसका रचनाकाल सं० १९२५ ज्येष्ठ कृष्णा १३ मगलवार और स्थान सुजानगढ है।

'स्वरूप विलास'—इसकी पाच ढालें है। जिनमे ४४ दोहे और ११० गाथाए है। कुल पद्य १५४ और ग्रथाग्र २०५ है। स० १९३९ ज्येष्ठ कृष्णा ४ गुरुवार को जयपुर मे इसकी रचना की।

इनके अतिरिक्त जय सुजश ढा० १ से ५, ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ८ गा० ६९ से १०२ तथा मुनि गुण वर्णन गीतिकाओ में भी मुनिश्री के सबंध का कुछ वर्णन मिलता है।

६३।२—१४ मुनिश्री भीमजी (रोयट)

(सयम पर्याय १८६६-१८६७)

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

भीम का मंगलकारी नाम, भीम का मगलकारी काम।
पंचाक्षर (अ भी रा शि को) के मत्र जाप से, मिटते विघ्न तमाम।
भीम · ध्रुव० ॥

मरुधरणी जिनकी जनुधरणी, गाया रोयट ग्राम।
कल्लू-आईदान गोलेछा कुल के तिलक ललाम॥ भीम···१॥
प्रथम स्वरूप भीम फिर जय का, जन्म हुआ अभिराम।
मिली त्रिवेणी की सम श्रेणी, खिली पुष्प की दाम॥२॥
युगल बंधु ने पहले संयम, पाया है साराम।
कुछ दिन से मुनि भीम बने है, जननी सह निष्काम॥३॥

दोहा

दी इनको दीक्षा बड़ी, चार मास के वाद।
षड् मासान्तर जीत को, कर चिन्तन अविवाद[1]॥४॥
पहले वर्षावास में, भीम पूज्य के संग।
रहे हेम परिपार्श्व में, जय स्वरूप सोमग॥५॥
भीम जीत ऋषि हेम सह, रहे दूसरे वर्ष।
मुनि स्वरूप गुरुचरण की, सेवा मे धर हर्ष[2]॥६॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

विनयी सेवाभावी कर्मठ, सरलाशय गुणधाम।
सीखे आगम व्याख्यानादिक, करके मति-व्यायाम॥७॥
वाचन करके बत्तीसी का, खीचा रस अविराम।
ज्ञान कठगत है उपयोगी, नगद गांठ मे दाम॥८॥

चर्चावादी बने विचक्षण, चर्चोत्सुक हर याम।
सद्गुरु-कृपया बढ़े चढे है, ज्यों उपवन में आम[३] ॥९॥

दोहा

रहे वर्ष छह हेम सह, फिर स्वरुप मुनि पास।
योग्य बने सब दृष्टि से, अच्छा किया विकास ॥१०॥
इक्यासी की साल में, बने अग्रणी आप।
विचर-विचर पुर नगर में, खूब जमाई छाप ॥११॥
वर्ष बयासी में किया 'मांडा' वर्षावास।
कोदर और भवानजी, युगल संत थे पास ॥१२॥

गीतक-छन्द

तयांसी की साल पावस कांकडोली में किया।
पंच मुनि सह श्रमण ने उपकार कर अति यश लिया।
संत पीथल ने किया छह मास तप का आचरण।
आप सहयोगी बने फिर किया जब पंडित मरण ॥१३॥
मरुधरा मेवाड़ मालव किया हाडोती गमन।
टिके हरियाणा थली ढूंढाड में पावन चरण।
थली देश निवासियों को दिया वहु प्रतिवोध है।
सत्य श्रद्धा सलिल द्वारा की प्रफुल्लित पौध है ॥१४॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

श्रावक सुलभ वोधि कर वहु तर, पाये सुयश निकाम।
वाजोली में अन्तिम पावस, किया लिया विश्राम[४] ॥१५॥

रामायण-छन्द

कर दर्शन सरदार सती ने उनसे किया निवेदन है।
पत्र पांच सौ लिखकर रखना उक्त निभाना सुवचन है[५]।
पावस वाद 'नंद' को दीक्षा दी है पादू में आकर।
भेट किया गुरु को गुरुवर ने सौंपा उनको करुणा कर ॥१६॥

सोरठा

ज्ञानां जी की और, दीक्षा मिलती ख्यात में।
मुनिवर करके गौर, तरते पर को तारते[६] ॥१७॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

तप की ले तलवार किया है, कर्मो सह संग्राम।
उपवासादिक मास ऊर्ध्वतः, भर पुरुषार्थ प्रकाम ॥१८॥
शीत काल में शीत सहा है, ग्रीष्मकाल में घाम।
आत्म नियन्त्रण करते धरते मन में विरति लगाम ॥१९॥
विविध अभिग्रह विगय विवर्जन आदि खोल आयाम।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय मनन मे, रमते आत्माराम[७] ॥२०॥

रामायण-छन्द

चार संत सह अष्ट नवतिका घोषित चूरू चातुर्मास।
पडिहारा-वसुगढ़ हो चूरू आकर ठहरे मुनिवर मास।
गये बिसाऊ और मैणसर किया रामगढ़ मासिक वास।
आये पुनः बिसाऊ, कृष्णाषाढी छठ को भर उल्लास ॥२१॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

वमन दस्त की हुई शिकायत, व्यथा बढ़ी उद्दाम।
सम भावों से सही वेदना, जीत लिया सग्राम ॥२२॥

रामायण-छन्द

बीता दिन रजनी भी बीती उदित सप्तमी का दिनकार।
आत्मालोचन क्षमायाचना किया लिया अनशन सागार।
पुद्‌गल क्षीण पड़ रहे पल-पल निकला एक प्रहर लगभग।
एक मुहूर्त रहा दिन बाकी, तन से चेतन हुआ अलग ॥२३॥

आकस्मिक सुन मरण श्रमण का विस्मित चार तीर्थ हो पाये।
शिष्य सुविनयी के मुक्त स्वर, गणि रायचद ने गुण गाये।
एक भाग बीता घर में दो भाग साधु व्रत का अभ्यास।
दृढ़ संकल्प अनल्प योग से फलित हो गया सकल प्रयास[८] ॥२४॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

दिवस दूसरे भागचंद मुनि, पहुचे है सुर धाम।
साथ निभाया यहां वहा का बना साथ प्रोग्राम ॥२५॥

जोडी 'भीम' 'भागचद' की, भुजा दाहिनी वाम।
एक सरीखी प्रीति निभाई, फलित हुआ सब काम[९] ॥२६॥

दोहा

विघ्नहरण की ढाल मे, 'पंचाक्षर विन्यास।'
'भी' सूचक है भीम का, करता दुरित विनाश ॥२७॥

लय—सभापति मिले हमें मतिमान

पाप ताप हरने को जप लो, जाप सुवह क्या शाम।
ध्यान लगाओ तान मिलाओ, गाओ मुनि गुण ग्राम[१०] ॥२८॥

दोहा

जयाचार्य विरचित विदित, सुललित भीम विलास।
भाव भरी ढालें विविध, भरती सरस सुवास[११] ॥२९॥

१. मुनिश्री भीमजी का जन्म रोयट (मारवाड) मे स० १८५५ मे हुआ। उनके पिता का नाम आईदानजी और माता का कल्लूजी था। उनके वडे भाई स्वरूपचंदजी तथा छोटे भाई जीतमलजी थे।

(ख्यात)

सं० १८६३ में आईदानजी की मृत्यु के पश्चात् उनके बड़े भाई स्वरूपचदजी अपनी माता तथा दोनो भाइयो को लेकर किशनगढ मे आकर रहने लगे। सं० १८६९ मे वहां मुनिश्री हेमराजजी (३६) का चातुर्मास हुआ तब उनके सपर्क का लाभ मिला फिर उसी चातुर्मास मे सभी ने जयपुर मे भारीमालजी स्वामी के दर्शन किये। सेवा भक्ति एव व्याख्यान श्रवण से वैराग्य जागृत हुआ। तात्त्विक ज्ञान सीखकर दीक्षा के लिए उद्यत हो गये। वहा चातुर्मास के बाद पोष सुदि ९ को आचार्य भारीमालजी ने मुनिश्री स्वरूपचदजी को दीक्षा दी। माघ वदि ७ को भारीमाल स्वामी के आदेश से मुनि रायचदजी ने मुनिश्री जीतमलजी को सयम दिया।

(जय सुजश ढा० ३, ४ के आधार से)

आचार्यश्री ने नवदीक्षित दोनो मुनियो को मुनिश्री हेमराजजी को सौप दिया और उन्हे वहां से माधोपुर की तरफ विहार करवा दिया।[1]

दोनो भाइयो की दीक्षा के बाद भीमजी की सयम लेने की भावना हुई। फाल्गुन वदि ११ को उन्होने चौदह वर्ष की अविवाहित किशोर (नाबालिग) वय मे सगाई छोड़कर माता कल्लूजी सहित भारीमालजी स्वामी के हाथ से जयपुर मे दीक्षा ली।[2]

मुनिश्री भीमजी को दीक्षित कर भारीमालजी स्वामी माधोपुर पधारे। मुनिश्री हेमराजजी ने कोटा, बूदी की तरफ विहार कर वहां आचार्यश्री के दर्शन किये।[3]

मुनि भीमजी को वडा रखने के लिए उन्हे बड़ी दीक्षा चार महीनों से और

---

१. सरूप जीत नै सयम देइ करी, ऋषि हेम भणी सूप्या सुविचार।
दिवस किते जयपुर थकी, माधोपुर नै करायो विहार॥
(जय सुजश ढा० ४ गा० १७)

२. सरूप जीत सजम आदर्या पछै, भाई भीम तणा पिण हुआ परिणाम।
फागण कृष्ण ग्यारस मा सहित ही, सजम दियो भारीमालजी स्वाम॥
(जय सुजश ढा० ४ गा० १८)

३. बूदी कोटे विचर करि, स्वरूप जीत पिण सग।
माधोपुर मे हेम मुनि, आग्या धरी उमग॥
(जय सुजश ढा० ५ दो० २)

मुनिश्री जीतमलजी को छह महीनों मे दी गई।[1]

२. आचार्यश्री भारीमालजी ने मुनि भीमजी को स० १८७० के माधोपुर चतुर्मास मे अपने साथ रखा। मुनि स्वरूपचदजी और जीतमलजी को मुनिश्री हेमराजजी के साथ स० १८७० का इन्द्रगढ चातुर्मास करने के लिए भेजा।

स० १८७१ के (दूसरे) चातुर्मास में मुनिश्री भीमजी और जीतमलजी ने तो मुनिश्री हेमराजजी के साथ पाली चातुर्मास किया तथा मुनि स्वरूपचंदजी बोरावड़ चातुर्मास मे भारीमालजी स्वामी के साथ रहे।

(जय सुजश ढा० ५ दो० ५ तथा गा० ८ से १०)

३. मुनिश्री भीमजी बड़े सेवाभावी, प्रकृति से शात व सरल, विनयी, उद्यमी, साहसिक और निर्जरार्थी हुए। आचार्यश्री भारीमालजी, रायचदजी तथा मुनिश्री हेमराजजी की उन्होंने बहुत वैयावृत्य की। साधु-साध्वियों को आहार-पानी आदि लाकर देते।

(ख्यात, भीम-विलास ढा० १ गा० २ से ६ के आधार से)

उन्होंने तीन सूत्र तथा अनेक व्याख्यान कठस्थ किये। बत्तीस सूत्रों का अनेक बार वाचन किया। सूक्ष्म रहस्यो के वे अच्छे ज्ञाता एव चर्चा मे निपुण बने।[2] अपनी मति से कई थोकडे (सेर्‌यां आदि) बनाये। लेखन (प्रतिलिपि) भी बहुत किया।

(ख्यात)

४. मुनिश्री भीमजी ने स० १८७० का चातुर्मास आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा मे किया। सं० १८७१ से ७६ तक मुनिश्री हेमराजजी के सान्निध्य मे रहे। स० १८७२ से ७६ तक तीनो भाई मुनि हेमराजजी के साथ थे। सं० १८७६ मे मुनिश्री स्वरूपचंदजी का सिंघाड़ा हो गया। संभवतः फिर स० १८८१ तक मुनि भीमजी मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ रहे।

इस प्रकार १२ वर्षो तक आचार्यश्री एवं बड़े साधुओं के साथ रह कर उन्होंने सभी तरह से योग्यता प्राप्त की।

जाझेरा वर्स बारा लगै, गण०, रह्या बड़ां रै पास…।

(भीम विलास ढा० १ गा० ११)

---

१. भीम भणी चिहुं मास थी, बड़ी दीक्षा वर दीध।
पट मास थी जय भणी, दीर्घ भीम इम कीध॥

(जय सुजश ढा० ५ दो० ४)

२. तीन सूत्र मुहढै सीखिया, वले सीख्या घणां वखाण।
उपगारी गुण-आगलो, थयो घणां सूत्रां नो जाण॥

(भीम विलास ढा० १ गा० ८)

स० १८८१ कटालिया मे आचार्यश्री ऋषिराय ने मुनि भीमजी को अग्रणी बनाया। वे आचार्य प्रवर के आदेशानुसार ग्रामानुग्राम विहार करने लगे।[1] उनके चातुर्मास तथा धर्म-प्रचार आदि का प्राप्त विवरण निम्न प्रकार है।

उन्होने ३ ठाणा से स० १८८२ का प्रथम चातुर्मास 'माडा' मे किया। साथ मे मुनि कोदरजी (८९) और भवानजी थे।

(जय सुजश ढा० १० गा० ५ के आधार से)

स० १८८३ का उन्होने कांकड़ोली चातुर्मास किया। वहा उनके साथ मुनि पीथलजी (५६), माणकजी (७१), रतनजी (७४) और हुक्मचदजी (६६) थे। मुनि पीथलजी ने १८६ दिन का तप किया। चातुर्मास के पश्चात् ऋषिराय ने पधार कर उन्हे पारणा करवाया और वापस मुनिश्री भीमजी को सौपकर आचार्य प्रवर ने मालव प्रान्त की तरफ विहार कर दिया। पोष सुदि १० को मुनिश्री पीथलजी अकस्मात् पडित-मरण प्राप्त कर गये। मुनिश्री भीमजी ने साग़ारी अनशन करवाकर उन्हे बडा सहयोग दिया।

(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० से ३४ के आधार से)

मुनिश्री ने मारवाड, मेवाड, मालवा, हाड़ोती ढूढाड, हरियाणा तथा थली मे विचरण कर अच्छा उपकार किया। थली मे पहले लोग गण से बहिर्भूत तिलोकचन्दजी (१२), चन्द्रभाणजी (१५) के अनुयायी थे। उन्हे समझाकर तथा तात्त्विक ज्ञान सिखाकर तेरापथ की गुरु-धारणा करवाई।[2] अनेक व्यक्तियों को सुलभवोधि तथा श्रावक बनाये। कई व्यक्तियो को दीक्षा प्रदान की।

(भीम-विलास ढा० ४ गा० १ से ४, ढा० ३ दो० १, २)

स० १८८४ से १८९६ तक चातुर्मासो की सूची नही मिलती। स० १८९७ मे

---

१. समत अठारै इक्यासीये, ऋषिराय बधायो तोल।
टोलो सूप्यो भीम नै, आप्या सत अमोल॥
आज्ञा ले ऋषिराय नी, भीम ऋषि तिणवार।
गामां नगरा विचरता, आप तरै पर तार॥

(भीम-विलास ढा० १ गा० १२, १३)

२. कियो थली देश मे थाट, भीम ऋष आय नै जी।
मत पातसा नो दियो दाट, लोका नै समझाय नै जी॥
घणा बाया भायाने ताय, चरचा मे पक्का किया जी।
सेर्‌या थोकडा सिखाय, घट मे ज्ञान घालिया जी॥

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ३, ४)

उनका अन्तिम चातुर्मास वाजोली था।[1]

५. सं० १८९७ के वाजोली चातुर्मास मे सरदार सती ने दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जाते समय मुनिश्री भीमजी के दर्शन किये। मुनिश्री ने पहले सरदार सती से कहा था कि अगर तूं दीक्षा ले तो मैं तुझे पाच सौ पन्ने लिखकर दूगा। उस कथन को याद दिलाते हुए सरदार सती ने निवेदन किया—'मुनिश्री ! मैं अब दीक्षा लेने के लिए जा रही हूं, आप पांच सौ पत्र लिखकर तैयार रखना[2]।'

६. सं० १८९७ का चातुर्मास सपन्न कर मुनिश्री पादू (बड़ी) पधारे। वहां पादू के नंदरामजी (१२१) को दीक्षा दी।[3]

(नदोजी की ख्यात)

वाद मे मुनि भीमजी ने आचार्यश्री रायचन्दजी के दर्शन कर नवदीक्षित मुनि नदोजी को गुरु-चरणों मे भेंट किया। आचार्यश्री ने वापस उन्हें ही सौंप दिया। गुरुदेव के इस अनुग्रह से मुनि भीमजी अत्यंत प्रसन्न हुए। फिर मुनिश्री वहुत दिनो तक आचार्य प्रवर की सेवा में रहे।

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ९ तथा ढा० ५ दो० १ से ३ के आधार से)

सं० १८८७ चैत्र शुक्ला ३ को लाडनू वासिनी साध्वीश्री गेनाजी (ज्ञानाजी १२४) को लाडनू मे दीक्षा प्रदान की। ऐसा गेनाजी की ख्यात मे लिखा है। भीम विलास में इसका उल्लेख नही है।

७. मुनिश्री वड़े तपस्वी हुए। उन्होंने उपवास, वेले, तेले, चोले अनेक वार किये। पंचोले आदि की तालिका ख्यात मे इस प्रकार है—

$\frac{५}{२}$ $\frac{८}{२}$ $\frac{१२}{१}$ $\frac{१५}{१}$ $\frac{३०}{१}$ ।

---

१. पछै चरम चोमासो श्रीकार, वाजोली मे कर्‌यो जी।
तठै कियो घणो उपगार, सुमता रस थी भर्‌यो जी॥

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ७)

२. ग्राम वाजोली आय ने हो, दर्श भीम ना कीध।
पहिला भीम कह्यो हूंतो हो, जो तू चारित्र लेह।
तो हूं पाना पाचसै हो, लिखिया तुज नैं देह।
चारित्र लेवा कारणे हो, हूं जावूं सुविचार।
लिख्या पत्र वर पांचसौ हो, आप करी राखजो त्यार॥

(सरदार सुजश ढा० ८ गा० १७ से १९)

३. चोमासो उतर्‌यां ताम, भीम पादू आय नैं जी।
नदोजी नैं दिख्या तिण ठाम, दीधी समझाय नैं जी॥

(भीम-विलास ढा० ४ गा० ८)

इनमे कुछ तप आछ के आधार से और कुछ जल के आधार से है।[1]

उक्त १२ दिन का तप उन्होने स० १८७४ के गोगुदा चातुर्मास मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ किया। ऐसा हेम नवरसा ढा० ५ गा० २५ मे लिखा है—

'भीम द्वादस दिन सुविशाली।'

मुनिश्री ने शीतकाल मे १२ वर्ष सिर्फ एक पछेवडी ओढकर (तीन मे से दो पछेवडी छोडकर) शीत सहन किया। ग्रीष्मकाल मे आतापना बहुत बार ली।[2]

उन्होने प्रतिदिन दो विगय के अतिरिक्त खाने का त्याग किया। स्वाध्याय, ध्यान, स्मरण, जाप व नियम-अभिग्रह आदि द्वारा कर्मो की निर्जरा करते हुए आत्मा को निर्मल बनाया।[3]

(ख्यात)

८. आचार्यश्री रायचदजी ने मुनिश्री भीमजी का १८९८ का चातुर्मास चूरू फरमाया। साथ मे मुनि भागचन्दजी(४८) पूजोजी(८८) तथा नदरामजी(१२१) दिये।[4] मुनिश्री पड़िहारा, रतनगढ़ होते हुए चातुर्मास के पूर्व चूरू पधारे और एक महीना ठहरे। चातुर्मास प्रारभ होने मे बहुत दिन बाकी थे इसलिए वहां से

---

१. मुनिवर रे ! बास बेला बहुला कीया रे, तेला चोला तत सार हो लाल।
पाच आठ तप आदर्‍यो रे, आणी हरष अपार हो लाल॥
भीम ऋषी भजियै सदा रे॥
मुनिवर रे ! बारै पनरै तप भलो रे, मास खमण श्रीकार हो लाल।
कोई तप आछ आधार सू रे, कोई तप उदक आगार हो लाल॥
(भीम-विलास ढा० ३ गा० १, २)

२. मुनिवर रे ! वर्स बारै-रे आसरे रे, शीतकाल मे सोय हो लाल।
पछेवडी दोय परहरी रे, शीत सह्यो अवलोय हो लाल॥
मुनिवर रे ! उष्णकाल आतापना रे, लीधी बोहली बार हो लाल।
सम दम सत सुहामणो रे, भीम गुणा रो भडार हो लाल॥
(भीम विलास ढा० ३ गा० ३, ४)

३. मुनिवर रे ! रस नो त्याग कियो ऋषी रे, नित विगै दोय उपरत हो लाल।
उत्तम करणी आदरी रे, ध्यान सज्झाय रमत हो लाल॥
मुनिवर रे समरण जाप सदा धर्‍यो रे, पच पदा नो जाण हो लाल।
नेम अभिग्रह निरमला रे, भीम गुणा री खान हो लाल॥
(भीम-विलास ढा० ३ गा० ५, ६)

४. भागचद पूंजलाल, वलि नंदो आप्यो सुविसाल। आ०।
चूरू चौमासो भलावियो।
(भीम-विलास ढा० ५ गा० ८)

विहार कर विसाऊ, मैणसर होते हुए रामगढ पधारे। रामगढ मे एक महीना विराजे। वापस आषाढ़ वदि ६ को विसाऊ पधारे। उसी दिन वे अस्वस्थ हो गये। वमन व दस्त लगने लगे। हैजा का रूप हो गया।[1] सप्तमी को भी वही हालत रही तब मुनिश्री ने आत्मालोचन, क्षमा-याचना तथा महाव्रतों का उच्चारण कर मुनि पूजोजी से अनशन करवाने के लिए कहा। उन्होने सागारी अनशन करवाया। एक प्रहर के पश्चात् समाधिपूर्वक मरण प्राप्त कर गये।

(भीम वि० ढा० ५ गा० ८, ९ तथा ढा० ६ दो० १, २ एवं गा० १ से १० के आधार से)

इस प्रकार १८९७ आषाढ वदि ७ को एक प्रहर के सागारी अनशन से मुनिश्री ने स्वर्ग प्रस्थान कर दिया।[2]

मुनिश्री के आकस्मिक स्वर्गवास से चतुर्विध संघ एव आचार्यश्री रायचदजी को भी आघात-सा लगा। उन्होने चार 'लोगस्स' का ध्यान करते हुए मुनिश्री की गुण-गाथा का मुक्त कठ से उल्लेख किया।

वे चौदह साल गृहस्थ वास मे और २८ साल साधु पर्याय मे रहे। उनका कुल आयुष्य ४२ वर्षो का था।

(भीम-विलास ढा० ६ गा० ११ से १५ के आधार से)

९. मुनि भागचदजी (४८) अनेक वर्षो से मुनिश्री भीमजी के सिंघाड़े मे थे। वे भी दूसरे दिन आषाढ़ कृष्णा ८ को दिवगत हो गये। जिस प्रकार यहां वे उनके साथ रहे, उसी तरह परलोक गमन मे भी साथ कर लिया।[3]

---

१. वमन थई तन वेदन वाधी, वली दस्तां लागी तिण वारो।
वलण पिण शरीर मे उपनी प्रगट, पिण सम प्रणांमे सहै गुण धारो॥
(भीम-विलास ढा० ६ गा० ५)

२. समत अठारै वर्ष सत्ताणुअे, आषाढ़ सातम दिन जोय।
पाछलो महूरत दिवस आसरै, भीम ऋषी पोहता परलोय॥
(भीम-विलास ढा० ६ गा० १०)

३. आठम दिन आउखो पूरो कीधो, भागचद ऋष ओ पिण भारी।
तपसी त्यागी वैरागी छै सुगणो, वर्स घणा विचर्या भीम लारी॥
(भीम-विलास ढा० ६ गा० १६)

विद आसाढ अष्टमी आई, ऋष भीम वस्यो मन माहि।
जाणे सेवा करूं सवाई ए, ओ पिण चटकै चलतो रह्यो॥
भीम भागचद नी जोरी, एहवी मिलणी जग मे दोरी।
त्यारी प्रीत न टूटै तोरी ए, रिख भागचंद ने भीम री॥
(जीव मुनि विरचित भागचद गुण वर्णन गा० १८, १९)

१०. स० १९१३ माघ शुक्ला ५ को सिरियारी मे विरचित एवं माघ शुक्ला १४ को कटालिया मे स्थापित 'विघ्नहरण' की ढाल मे जयाचार्य ने प्रमुख रूप मे पांच मुनियों का स्मरण किया है।[1]

१. अ—मुनिश्री अमीचन्दजी (७५)
२. भी—मुनिश्री भीमजी (६३)
३. रा—मुनिश्री रामसुखजी (१०५)
४. शि—मुनिश्री शिवजी (७८)
५. को—मुनिश्री कोदरजी (८९)

इन पांचो मे मुनिश्री भीमजी दीक्षा पर्याय मे सवसे वड़े है।

संत गुणमाला मे जयाचार्य ने उनका स्मरण करते हुए लिखा है—

भीमजी स्वामी भांत भांत री रे, चरचा मे घणा सावधान रे।
वले दान देवै साधां भणी रे, त्यांरै लघु भाई जीतमल जाण रे।।
(संत गुणमाला ढा० १ गा० ३२)

भीम सरीखो भीम ऋषीश्वर सार के, पचम आरे परगटियो जी।
चरचावादी भय भ्रम भाजण हार के, जश कीर्ति जग मे घणी जी।।
(सत गुणमाला ढा० ४ गा० २६)

विघ्नहरण की ढाल गा० ७, ८ मे जयाचार्य ने उनकी स्मृति मे लिखा है—

वृद्ध सहोदर जीत नो, जशधारी जयकारी हो।
लघु सहोदर सरूप नो, भीमगुणा रो भडारी हो।।
सखर सुजश ससारी हो।।
समरण थी सुख संपजै, जाप जप्या जश भारी हो।
मन वांछित मनोरथ फलै, भजन करो नर नारी हो।
वारु वृद्धि विस्तारी हो।।

'मुंणिद मोरा' ढाल की गा० ९ मे लिखा है—

---

१. उगणीसै तेरह समै, वस्त पंचमी सोमवारी हो।
पंच ऋषि नो परवड़ो, स्तवन रच्यो ततसारी हो।।
प्रसिद्ध शहर सिरियारी हो, गणपति जय जशकारी हो।
विघ्नहरण नी स्थापना, भिक्षु नगर मझारी हो।।
महा सुदि चवदस पुष्य दिने, कीधी हर्ष अपारी हो।
तास शीख वच धारी हो, तीरथ चार मझारी हो।।
ठाणां एकाणू तिवारी हो। भजो०।।
(गा० ३०, ३१)

'मुणिद मोरा, जीत सहोदर सार,
भीम जबर जयकारी रे स्वामी मोरा,
अति भला रे मोरा स्वाम ॥

प्राचीन अनुश्रुति के आधार से कहा जाता है कि मुनिश्री भीमजी तीसरे देवलोक मे गये। उन्होंने देव रूप मे एक बार मुनिश्री स्वरूपचन्दजी का साक्षात्कार किया और उन्हे बहुमान दिया। इस बात का स्वयं जयाचार्य ने निम्नोक्त पद्य में उल्लेख किया है—

सरूपचंद सहोदर भणी, ते दीधो दीसै सनमांन।
दिव्य रूप देख्यां छता रे, हरष थयो असमांन ॥

(भीम० गु० व० ढा० १ गा० ४)

११. सं० १८६८ वैसाख वदि ७ शनिवार को चूरू मे जयाचार्य ने उनके जीवन-संदर्भ मे 'भीम विलास' की रचना की। जिसकी ७ ढालें हैं जिनमे २१ दोहे ८२ गाथाएं हैं। कुल पद्य १०३ और ग्रंथाग्र १२१ है।

निम्नोक्त स्थलो मे भी उनके संबंध का विवरण मिलता है—

१. जय सुजश ढा० १ से ५ में।

२. ख्यात।

३. शासन प्रभाकर—भारी सत वर्णन ढा० ४ गा० १०३ से ११४।

४. गुण वर्णन ढालें ४ 'संत गुण वर्णन' में।

६४।२।१५ चतुर्थाचार्य जीतमलजी (रोयट)

(संयम-पर्याय १८६९-१९३८)

जय-स्तुति

लय—चांद चढ़यो गिगनार…

जयाचार्य का नाम, अमर इस धरती पर जी धरती पर।
जयाचार्य का काम, अमर इस धरती पर जी धरती पर।।ध्रु व०।।

घर के मंगल चार, द्वार पर आये है जी आये है।
सत्संस्कार विचार, सार भर लाये हैं जी लाये है।। जया…१।।

बोले भारीमाल, राय! तुम दो दीक्षा जी दो दीक्षा।
होनहार यह बाल, उंडेलो रस शिक्षा जी रस शिक्षा।।२।।

हेम पास दे ध्यान, ज्ञान तो गजब किया जी गजब किया।
विद्या गुरु उपमान, स्थान तो अजब दिया जी अजब दिया।।३।।

अगुआ पद में आप, देहली पहुंचाये जी पहुंचाये।
(बन) युवाचार्य आचार्य, कार्य बहु कर पाये जी कर पाये।।४।।

पद चिन्हो को देख, ज्योतिषी व्यथित हुआ जी व्यथित हुआ।
सच सामुद्रिक लेख, देख मुख चकित हुआ जी चकित हुआ।।५।।

आगम टीकाकर, भगवती नजरों पर जी नजरों पर।
भाष्य लिखा साधार, भिक्षु की कृतियों पर जी कृतियों पर।।६।।

देते बहु बहुमान, बड़ों को हर कृति में जी हर कृति में।
गाते गुणि-गुणगान, भिक्षु तो हर स्मृति में जी हर स्मृति में।।७।।

अनुशासन का मत्र, सिखाया मुनि जन को जी मुनिजन को।
मर्यादा का तंत्र, दिखाया जन-जन को जी जन-जन को।।८।।

मघवा को आदेश, मुख्यतः वे देते जी वे देते।
साधु-साध्वियां शेष, हृदय में लिख लेते जी लिख लेते।।९।।

सविभाग से स्वस्थ, व्यवस्था की गण की जी की गण की।
छवि अद्‌भुत आश्वस्त, समर्पण दर्पण की जी दर्पण की ॥१०॥
अधिक ध्यान स्वाध्याय, आखिरी वर्षों मे जी वर्षों में।
जोड़ नया अध्याय, जुड़े युग-पुरुषों में जी पुरुषों में ॥११॥
जयपुर राजस्थान, परम जय-चरणोत्सव जी चरणोत्सव।
वहीं स्वर्ग-प्रस्थान, हुआ जय-चरमोत्सव जी चरमोत्सव ॥१२॥
आया जय निर्वाण-शताब्दी दिन मंगल जी दिन मंगल।
जय स्मृति से कल्याण, सफल शुभ है पल-पल जी है पल-पल ॥१३॥

आचार्यश्री भारीमालजी के शासनकाल में दीक्षित मुनियों में जयाचार्य का १५वा क्रमांक है। उनका जीवन-आख्यान विशालतम होने से इस शासन-समुद्र भाग-२ (क) मे न रखकर शासन-समुद्र भाग २ (ख) मे स्वतंत्र रूप से दिया गया है जिससे पाठकों को पढने मे अधिक सुविधा रह सके। जयाचार्य के बाद में दीक्षित २३ साधुओ का विवरण इसी शासन-समुद्र भाग २ (क) मे संलग्न रूप से प्रस्तुत है।

६५।२—१६ श्री नंदोजी

(दीक्षा स० १८६६, थोड़े समय बाद गणबाहर)

रामायण-छन्द

जाति महाजन स्वामी का था वेष प्रथम फिर कर मुनि संग।
भारीमाल हाथ से दीक्षित होकर पाया भैक्षव संघ।
लेकिन धक्का लगा कर्म का संयम का चक्का उलटा।
स्वल्प समय के बाद हुए च्युत भाग्य खा गया है पलटा[1] ॥१॥

१. नंदोजी जाति से महाजन थे। स्वामी (स्यागी) के वेष मे रहते थे। फिर साधुओं का सम्पर्क कर समझे और आचार्यश्री भारीमालजी द्वारा सं० १८६८ (ख्यात के क्रमानुसार) मे दीक्षित हुए। पर कर्म योग से अल्प समय के बाद गण से पृथक् हो गए।[1]

(ख्यात)

---

१. नदे दीक्षा लीध रे, भारीमालजी स्वाम पैं।
कर्म खुराब कीध रे, अलपकाल में नीकल्यो ॥

(शासन विलास ढा० ३ सो० १६)

नदो स्यामी रैं भेष रे, जाति तणों महाजन हुंतो।
भारीमाल उपदेश रे, दीक्षित थई गण थी टल्यो ॥

(शासन प्रभाकर—भारी सत वर्णन ढा० ४ गा० ११६)

६६।२।१७—मुनिश्री रामोजी

(संयम पर्याय सं० १८७०-१६१६)

दोहा

वासी मालव प्रान्त के, राम नाम अभिराम।
सत्संगति से विरति के, चढे ऊर्ध्वगत धाम ।।१।।

गीतक-छन्द

लिया वेणीराम मुनि से चरण सत्तर साल में।
नगर उज्जयिनी प्रमुख के पुण्य पावस काल मे[१]।
साधुता में रम किया बहु ज्ञान-ध्यान-प्रयास है।
प्रगति की व्याख्यान लेखन कलादिक में खास है।।२।।
विगय-त्यागी विरागी फिर तपस्वी मुनिवर महा।
हेम के सान्निध्य में दो वर्ष का तप मिल रहा[२]।
मिली सेवा उन्हें अन्तिम पूज्य भारीमाल की[३]।
अग्रणी हो किया विहरण साधना बहु साल की[४] ।।३।।

सोरठा

विद नवमी वैसाख, शतोन्नीस उन्नीस की।
बीदासर में शाख, फलित हुई जय चरण में[५] ।।४।।

१. मुनिश्री रामोजी (रामजी) मालव प्रान्त मे अनुमानतः उज्जैन या आस-पास के गांव के वासी थे। मुनिश्री वेणीरामजी (२८) ने सं० १८७० का चातुर्मास उज्जैन मे किया। मालव प्रदेश मे यह उनका सर्वप्रथम चातुर्मास था। उन्होंने वहां रामोजी को दीक्षा दी।[1]

२. ख्यात मे मुनिश्री की विशेषता का इस प्रकार उल्लेख किया है—"भण्या गुण्या, वड़ा दानां साध, चारित्र पर दृष्ट घणी तीखी, लिखणो घणो कीयो, तप पिण, विगयादिक ना त्याग करवोकरता, वखाण वाणी री कला पिण घणी, घणा वर्ष साधपणो पाल्यो।"

हेम नवरसा ढा० ६ गा० १०, ११ में उल्लेख है कि उन्होंने मुनिश्री हेमराज-जी (३६) के साथ सं० १८९४ के लाडनू चातुर्मास मे ३० दिन और सं० १८९५ के पाली चातुर्मास मे ४१ दिन का तप किया—

चोराणुवे लाडणूं चोमासो, रामजी तीस उदारी।
असल विनीत उदै गुण आगर, सैंतीस पांणी आगारी॥
पाली पचाणुंवे रांम कियो तप, एक चालीस उदारी।
तीस उदै किया उदक आगारे, हेम तणो आग्याकारी॥

उक्त गाथाओं मे कथित मुनिश्री रामजी ये ही थे क्योंकि इनके वाद मुनिश्री उदयचदजी (९५) तपस्वी का नाम है। दूसरे मुनिश्री रामोजी गुंदोच वालों की क्रम संख्या १०० है जो मुनि उदयचदजी से छोटे थे और ये वडे। इसलिए इनका नाम हेम नवरसा में मुनि उदयचदजी से पहले है।

३. आचार्यश्री भारीमालजी ने अपना स० १८७८ का अन्तिम चातुर्मास केलवा मे किया। उस समय मुनि रामोजी साथ थे और उन्होने आचार्यश्री की वहुत सेवा भक्ति की—

रामचंद रूडो विनैवत, व्यावच करिवा भणी जी।
(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ७)

जयाचार्य ने उनके लिए लिखा है—

रामोजी साध रूडा रंग सूं, आचार पालै रूडी रीत रे।
ते व्यावच करै विध विध घणी रे, सतगुरु ना सुवनीत रे॥
(संत गुणमाला ढा० ४ गा० ३३)

४. मुनिश्री सिंघाड़वंध होकर विचरे (ख्यात)। सं० १९१२ मे उन्होंने २ ठाणो से 'थामला' चातुर्मास किया ऐसा श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास

---

१. नगर उजेणी शहर मे, आछो कियो उपगार।
रामोजी संजम लियो, पछै कियो तिहां थी विहार॥
(वेणीराम चोढालिया ढा० ४ दो० १)

तालिका मे उल्लेख है। शेष चातुर्मास प्राप्त नही है।

५. वे स० १९१९ वैसाख कृष्णा ९ को जयाचार्य के सान्निध्य मे बीदासर मे दिवंगत हुए।[1] अन्तिम समय मे उनकी भावना निर्मलतम रही।

(ख्यात)

---

१. वेणीरामजी चरण राम नै वरस सत्तरे दीधो रे।
सवत् उगणीसे वर्ष उगणीसे, परलोके सुप्रसीधो रे।।
(शासन विलास ढा० ३ गा० २०)

६७।२—१८ मुनिश्री वर्धमानजी (छोटा) (केलवा)

(सयम पर्याय स० १८७०—१८९४)

लय—चलना आखिरकार

अर्ध निशा अनुमान है, आया समय महान् है।
वर्धमान ने पाया अनुपम सयम का वरदान है।।ध्रु व०।।
हो…तारा ग्रह नक्षत्र छत्र की सुषमा से आभा खिलता।
वढती चन्द्र-चन्द्रिका से सम्मान सौगुना फिर मिलता।
सोते सव इन्सान है, होते बंद मकान है। वर्धमान…१।
हो…रजनी जो है सव जीवों की उसमें जागृत महाव्रती।
जाग रहे जिसमें सब प्राणी उसमें सोते सत-सती।
अन्तर भू-आसमान है, भौतिक-धार्मिक ध्यान[1] है।।२।।
हो…लिए धर्म के समय न निश्चित चाहे दिन वा रात हो।
लिग रग वा वर्ण जाति का भेद न लघु गुरु भ्रात हो।
निर्धन क्या धनवान है, निर्बल सबल समान है।।३।।
हो…अधिकारी सव आत्मोन्नति के वालक वृद्ध जवान है।
नि:श्रेयस सुख का सर्वोपरि साधन भाव प्रधान है।
घर वा धर्म स्थान है, उपवन और श्मसान है।।४।।

दोहा

वास केलवा ग्राम में, था चोरड़िया गोत्र।
भ्राता श्रावक शोभ के, भेरोजी के पौत्र।।५।।

लय—चलना…

हो…अर्ध रात्रि में भाग्योदय का उदित हुआ नव चांद है।
'भारी' गुरु की चरण शरण में पाये पुण्य प्रसाद है।
चढ़े ऊर्ध्व सोपान है, साधक बने सुजान है[2]।।६।।

हो···सिंह वृत्ति से दीक्षा लेकर सिंहवृत्ति से पाल रहे।
जागरुक होकर पल पल में अतिचारों को टाल रहे।
पंच महाव्रत प्राण है, समिति गुप्ति ही त्राण है।।७।।
हो···बड़े विरागी त्यागी तप में झौक दिया है तन-मनको।
चोले पंचोले आदि कर सफल बनाया जीवन को।
मासादिक बहुमान है, तयालीस दिनमान है।।८।।
हो···दिवस पचहत्तर किये किये फिर जल से सौ पर चार हैं।
एक साथ छह मासी पच्चखी भर साहस अनपार है।
बोले सीना तान है, करली ऊर्ध्व उड़ान है[३]।।९।।

दोहा

सेवा की रुचि थी बड़ी, करते काम तुरत।
दृष्टि निर्जरा की परम, साताकारी सत।।१०।।
भारी गुरु की आखिरी, सेवा सजी सजोर।
तन्मय होकर हृदय से, लाभ लिया कर गौर[४]।।११।।
किये अग्रणी जीत को, दिये इन्हें तब साथ।
सहयोगी बनकर रहे, जैसे तन के हाथ[५]।।१२।।

लय—चलना आखिरकार

हो···परिषह सहा शीत उष्मा का क्षमा शीतला में जमके[६]।
सम दम उपशम स्वाद चखा है विषय विकारों को दम के।
किया आत्म उत्थान है, लिया सुयश अम्लान[७] है।।१३।।

दोहा

बाल मित्र जय के प्रवर, विनयी गुणी उदार।
अद्भुत थे उनके लिए, जय के हृदयोद्गार[८]।।१४।।

१. गीता अध्याय २ श्लोक ६९ मे लिखा है—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्या जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

सब प्राणियो के लिए जो रात है उसमे साधु जागते है। जिसमें सब प्राणी जागते है वह साधु के लिए निशा है।

इसका तात्पर्य है कि धर्म जागरण मे प्राणी मोहवश आलस करते है अर्थात् सोते है, साधु उसमें प्रयत्नशील रहते है-जागते है। अधार्मिक प्रवृत्ति मे प्राणी मोहवश सलग्न रहते है-जागते है, उसमें साधु उदासीन रहते है-सोते है।

२. मुनि वर्धमानजी (विरधोजी) का ग्राम केलवा (मेवाड़) और गोत्र चोरडिया (ओसवाल) था। भैरूदासजी (भैरोजी) के बड़े भाई वीरभाणजी के पौत्र थे। भैरोजी स्वामीजी के पास मे समझे थे और श्रावक शोभजी के चाचा के बेटे भाई थे। ऐसा महात्मा सहसमलजी द्वारा लिखित वशावलि मे लिखा है जो ठीक है। पर वहा वर्धमानजी का स० १८६० मे स्वामी भीखणजी के पास दीक्षित होने का उल्लेख किया है वह सही नही है। वास्तव मे विरधोजी[1] स० १८७० मे आचार्य भारीमालजी द्वारा दीक्षित हुए थे और वे ये ही है।

आचार्यश्री भारीमालजी ने उन्हे स० १८७० मे अर्धरात्रि के समय दीक्षित किया[2] ऐसा उल्लेख ख्यात, शासन-विलास ढा० ३ गा० १९ की वार्तिका मे है—

भारीमालजी स्वामी आसरै आधी रात्रि गया दीक्षा दीधी।

जयाचार्य ने मुनि वर्धमानजी को अपने बाल मित्र के नाम से सबोधित किया है—मुझ बाल मित्र वर्धमान ए···गुण व० ढा० १ गा० ८। इससे लगता है कि वे अविवाहित (नाबालिग) वय मे दीक्षित हुए।

३. मुनिश्री वर्धमानजी बड़े साहसिक, त्यागी, विरागी और तपस्वी थे। उन्होंने चाले पचोले अनेक वार किये तथा आठ व पन्द्रह दिन का तप किया, ऐसा ख्यात मे लिखा है। बड़े थोकड़ो की सूची इस प्रकार है—

$\frac{\text{मासखमण}}{\text{६ वार}}$ $\frac{४३}{१}$ (पानी के आगार से) $\frac{१०४}{१}$ (पानी के आगार से)

$\frac{\text{अढाईमासी}}{१}$ (आछ के आगार से) $\frac{\text{छहमासी}}{१}$ (आछ के आगार से)।

(वर्धमान गु० व० ढा० १ गा० १ से ३)

उक्त मासखमण के सबध मे वर्धमान गुण वर्णन ढा० १ गा० २ मे अनेक

१. वर्धमानजी को भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ८ मे विरधोजी के नाम से सबोधित किया है।

२. अर्द्ध रात्रि मे दीक्षा लेने का कारण उपलब्ध नही है।

वार करने का उल्लेख है—'मासखमण वहु वार ए' तथा अन्य प्रतिलिपि एवं शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १२० मे छह वार करने का उल्लेख है।

'मासखमण छह वार ए' 'वलि षट् मासखमण करात।'

४३ दिन का तप उन्होने आचार्यश्री रायचदजी के सान्निध्य मे स० १८८० के जयपुर चातुर्मास (सभवत. आषाढ़ से) मे किया।[1] ख्यात मे इसका उल्लेख नही है।

१०४ दिन, अढाईमासी और छहमासी तप का शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १२०, १२१ तथा वर्धमान गुण वर्णन ढा० १ गा० २, ३ मे उल्लेख है।[2] ख्यात मे अढाईमासी के स्थान पर दो मासी लिखा है।

१०४ दिन का तप उन्होने मुनिश्री हेमराजजी (३६) के पास स० १८७७ के उदयपुर चातुर्मास मे किया।[3]

स० १८८२ के ज्येष्ठ महीने मे ऋषिराय मोखणदा पधारे वहां उन्होने तीन साधुओं को एक साथ आछ के आगार से छह महीनो तक अशन आदि का परित्याग करवाया उनमे एक वर्धमानजी थे। इनका चातुर्मास केलवा करवाया। दूसरे पीथलजी (५६) व तीसरे हीरजी (७६) थे। जिनका चातुर्मास कांकड़ोली और राजनगर कराया। ऋषिराय ने स्वय उदयपुर चातुर्मास संपन्न कर पहले कांकडोली मे मुनि पीथलजी को और उसी दिन राजनगर मे मुनि हीरजी को १८६ दिन का पारणा कराया। दूसरे दिन केलवा पधार कर वर्धमानजी को १८७

---

१. धर्म उद्योत हुवो घणो रे, उदक तणै आगार।
दिवस तयालीस दीपता रे, किया वर्धमान अणगार ॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० ५)

वृद्धि करी वर्धमान ए, तप दिन तयालीस प्रधान ए।
उन्हालै पाणी रै आगार जाण ए, भजलै तपसी वर्धमान ए ॥
(वर्धमान गु० व० ढा० गा० १)

२. वले मासखमण बहुवार (छहवार) ए, वले तप दिन एक सौ च्यार ए।
उदक आगारे पिछान ए ॥
किया मास अढाई उपरंत ए, वले षटमासी धर खत ए।
आछ आगार वखाण ए ॥
(वर्धमान गु० व० ढा० गा० २, ३)

३. वर्धमान तपसी तप धारो रे, एक सौ चार धोवण आगारो रे।
हुवो धर्म उद्योत अपारो ॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ४८)

दिन का पारणा कराया।[1]

विस्तृत वर्णन मुनि पीथलजी (५६) के प्रकरण मे दे दिया गया है।

४. स० १८७८ के केलवा चातुर्मास मे वे आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा मे थे। उन्होने आचार्य प्रवर की अन्तिम समय में वहुत परिचर्या की।[2]

५. सं० १८८१ मे मुनिश्री जीतमलजी का सिघाडा किया तव ऋषिराय ने उनके साथ मुनि वर्धमानजी, कर्मचदजी (८३) और जीवोजी (८६) को दिया।[3]

उन्होने स० १८८२ का मुनिश्री जीतमलजी के साथ उदयपुर चातुर्मास किया।

(जय सुजश ढा० १० गा० ६,७)

६. मुनिश्री शीतकाल मे रात्रि के समय तथा एक प्रहर दिन चढ़ने तक पछेवड़ी नही रखते।[4]

ग्रीष्मकाल मे उन्होने बहुत वर्षों तक आतापना ली। गोचरी के लिए जाने में सदा तत्पर रहते।[5]

७. स० १८९४ मे उन्होने पंडित-मरण प्राप्त किया।[6] (ख्यात)

---

१. रायचन्द पूज सुहाया रे, तीनू रा परणाम चढ़ाया रे।
तपसी तप करण उमाया॥
ज्येष्ठ कृष्ण पखे मुनिराया रे छमासी तीनू नै पचखाया रे।
पूज उदियापुर चल आया रे॥
केलवे वर्धमान छमासी रे, राजनगर हीर तप वासी रे।
कांकरोली पीथल पद पासी॥
(पीथल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० १० से १२)

२. विरघोजी व्यावच मे वजीर, साता दीधी साम नै जी।
आहार औषध आणै हजूर, फिरै करै काम नै जी॥
(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ८)

३. जीत अनें वर्द्धमानजी रे, कर्मचंद नें इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, याने मेल्या देश मेवाड॥
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० १२)

४. सीयाले सह्यो शीत ठार ए, रात पछेवड़ी परिहार ए।
पोहर दिन चढियै उनमान ए, भजलै तपसी वर्धमान ए॥
(वर्धमान गुण वर्णन ढा० १ गा० ४)

५. ग्रीष्म काले आताप ए, वहु वर्ष लगै चित्त थाप ए।
गोचरी फिरवैं आसान ए, भजलै तपसी वर्धमान ए॥
(वर्ध० गुण वर्णन ढा० १ गा० ५)

६. निशि दीक्षा वर्द्धमान सित्तरे, तप षट मास सुजोगो रे।
उदक आगार एक सौ चिहुं दिन, चौराणुअे परलोगो रे॥
(शासन-विलास ढा० ३ गा० २१)

८. जयाचार्य ने मुनि वर्धमानजी के गुणों की दो ढाले बनाई। वहां तपस्यादिक के साथ अपने बालमित्र होने का भी उल्लेख किया है—

मुझ बाल मित्र वर्द्धमान ए, छेहडे दर्शण रो ध्यान ए।
तपसी गुण नी खान ए, भजलै तपसी वर्द्धमान ए॥

(वर्धमान गुण व० ढा० १ गा० ८)

एक प्राचीन पत्र मे उनके प्रति आत्मीय-भाव प्रकट करते हुए बड़े मार्मिक शब्दों मे लिखा है—

"चूरू मे एता वचन कह्या—हिवै ताहरो दु:ख गयो दीसै हू जीवूं ज्यां लगै तो दु ख हुतो दीसै नही, था सू पाछलो संस्कार दीसै छै, सो दु.ख गयो वांछा छा, सतीदास ज्यू एक तू पिण छै, कनै रह्यां तथा और ठिकाणे रह्यां साहज देण रा भाव छै, हू हाथ सू गोचरी लाय देवू, हिवै सहल राखा नही।"

(प्राचीन पत्र से उद्धृत)

संत गुण माला मे भी उनका स्मरण किया है—

विरधीचंदजी वखाणियै रे, ते तो चोखे पालै सजम भार रे।
विनो करै सुध साधा तणो रे लाल, त्यानै वांदो वारम्वार रे॥

(सत गुणमाला ढा० १ गा० ३४)

जिन मार्ग मे तपसी लघु वर्धमान के, एक सौ च्यार पाणी तणा जी॥
आछ आगारे तप षट मासी प्रधान के, भारीमाल-गुरु भेटियाजी॥

(सत गुण माला ढा० ४ गा० २७)

६८।२।१६ श्री भवानजी

(दीक्षा स० १८७०, १८८३ में गणवाहर)

रामायण-छन्द

माहेश्वरी जाति थी स्थानवासी मुनिजन में दीक्षित।
तेरापंथ सघ मे दीक्षा ली है फिर हो आकर्पित[1]।
तेरह साल रहे संयम में फिर अपनी दुर्वलता से।
साल तयांसी में हो पाये वाहर शासन-वनिका से ॥१॥
पृथक् भूत होने पर भी वे रहे सदा गण के सम्मुख।
देख साधुओं को करते थे वंदन गुण-कीर्त्तन सोत्सुक।
वता गोचरी के घर देते कर-कर भाव भरा अनुरोध।
सुलभवोधि बहु व्यक्ति वनाये दे देकर धार्मिक प्रतिवोध[2] ॥२॥

१. भवानजी जाति से माहेश्वरी थे। वे पहले स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे फिर सं० १८७० मे तेरापंथ मे दीक्षा स्वीकार की।

(ख्यात)

दीक्षा कहां और किसके द्वारा हुई इसका उल्लेख नही मिलता।

२. उन्होंने १३ साल साधुत्व का पालन किया। फिर नियंत्रण मे न रह सकने के कारण सं० १८८३ मे गण से पृथक् हो गए परन्तु शासन के सम्मुख रहे। साधुओं को देखकर वंदना करते, गुणगान करते और उन्हे गोचरी के घर बतलाते। अनेक व्यक्तियों को समझा कर सुलभबोधि बनाया[1]।

(ख्यात)

ऋषिराय ने सं० १८८१ में मुनिश्री भीमजी (६३) का सिंघाड़ा किया तब भवानजी को उनके साथ दिया एवं सं० १८८२ का उनके साथ मांडा में चातुर्मास किया। ऐसा जय सुजश ढा० १० गा० ५ में उल्लेख है।

शासन विलास की दूसरी प्रति मे इनके अलग होने का सवत् १८८६ है पर वह बाद मे लिखी होने से पूर्व लिखित प्रति का सवत् १८८३ यथार्थ लगता है।

---

१. भवान सजम जास रे, भेषधार्‌यां थी आय नै।
टल्यो तयांसीये वास रे, पिण गण सू सन्मुख रह्यो।।
(शासन विलास ढा० ३ सो० २२)

६८।२।२० श्री रूपचन्दजी

(दीक्षा स० १८७१—१८७१ मे गणबाहर)

रामायण-छन्द

शिष्य तिलोकचन्दजी के थे सुन उनकी अन्तिम शिक्षा।
भारीमाल शरण में आकर रूपचन्द ने ली दीक्षा[1]॥
कठिन नियंत्रण में चलना है अपनी इच्छाओं को रोक।
कुछ मासान्तर छोड़ दिया है कर्म योग से शासन-ओक ॥१॥
जाते-जाते कहा उन्होंने गण में संयम-भाव रसाल।
साधु-साध्वियां गुण रत्नों की माला, सद्गुरु भारीमाल ॥
अक्षम मैं संयम पालन में नहीं दूसरा है कारण।
कह करके यों चले गये हैं गुरु चरणों में कर वंदन[2] ॥२॥

१. रूपचन्दजी पहले गण से बहिर्भूत तिलोकचन्दजी (१२) के शिष्य थे। तिलोकचन्दजी ने मरणासन्न समय मे इनसे कहा था—'मेरी मृत्यु के बाद किसी के टोले मे जाने की इच्छा हो तो भारीमालजी के टोले मे जाना पर चन्द्रभाणजी के टोले मे मत जाना।' इससे उन्होने सं० १८७१ मे तेरापंथ मे दीक्षा ली।

२. वे कुछ महीनों तक सघ में रहे। फिर अपनी दुर्वलता के कारण गण से अलग हो गए[1]। जाते समय उन्होने आचार्यश्री भारीमालजी को वदना की और बोले—'मेरे से साधुत्व का पालन नही हो सकता इसलिए मै जा रहा हूं। आप तथा सभी साधु उत्तम पुरुष है।' फिर आचार्य प्रवर के चरणो मे सिर झुकाया और रवाना होकर थली की तरफ चले गए।

(ख्यात)

---

१. तिलोकचंद शिष्य ताहि रे, (रूप) इकोत्तरे दिक्षा ग्रही।
संकड़ाई रे माहि रे, दुक्कर तिण सू नीकल्यो॥
(शासन विलास ढा० ३ दो० २३)

७०।२।२१ श्री रासिंघजी (राहसिंघजी)

(दीक्षा सं० १८७१, गणबाहर)

रामायण-छन्द

थे कुशाल के शिष्य प्रथम फिर लिया चरण भैक्षव-गण में।
अलग हुए फिर ली नव-दीक्षा रायचंद गुरु-शासन में ।।
नहीं निभा सकने से वापस पृथक् हुए गण-आश्रय से।
विचलित साधक हो जाता है निविड़ अशुभ कर्मोदय से[1] ।।१।।

१. रासिंघजी पहले गण से पृथक्भूत कुशालजी (३८) के चेले थे। वहां से आकर सं० १८७१ मे भारीमालजी स्वामी के शासनकाल मे दीक्षित हुए थे फिर अलग होकर गृहस्थ हो गए। फिर दूसरी बार आचार्यश्री रायचन्दजी के युग मे नई दीक्षा ली पर अपनी दुर्वलता मे फिर संघ से पृथक् हो गए[1]।

(ख्यात)

दूसरी बार दीक्षित होने का और गण से पृथक् होने का संवत् नही मिलता।

---

१. छूटक खुशाल सीस रे, राहसिंग चरण ग्रही वली।
ऋषिराय वरतार जगीस रे, चारित्र ले छूटो वली॥
(शासन विलास ढा० ३ सो० २४)

७।१२।२२ मुनिश्री माणकचन्दजी (केलवा)

(सयम पर्याय सं० १८७१-१६०० के आसपास)

गीतक-छन्द

केलवा में वास हींगड गोत्र माणकचन्द का।
साधु-संगति से चखा रस विरति मय मकरन्द का।
इकत्तर की साल संयम का लिया सुखधाम है[1]।
प्रकृति-ऋजु मुनि साधना-रस खींचते हरयाम है[2] ।।१।।

शीत आतप सहा धृति से तपस्या पथ पर बढ़े।
आछा के आगार ऊपर चारमासी तक चढ़े[3]।
प्रमुख श्रद्धा केन्द्र माना एक शासन-इन्दु को।
कर लिया कल्याण अपना तर लिया भव-सिंधु को[4] ।।२।।

१. मुनिश्री माणकचन्दजी केलवा (मेवाड़) के वासी और गोत्र से हीगड (ओसवाल) थे। उन्होने सं० १८७१ मे पूर्ण वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की।

(ख्यात)

ख्यात आदि मे दीक्षा तिथि का उल्लेख नही मिलता पर जयाचार्य द्वारा रचित 'संत गुणमाला' की प्रथम ढाल का रचना समय स० १८७१ फाल्गुन कृष्णा १३ है और उसमे तब तक के विद्यमान साधुओ के नाम है। उनमे माणकचन्दजी का नाम न होने से लगता है कि उनकी दीक्षा फाल्गुन कृष्णा १३ के पश्चात् हुई।

२. मुनिश्री प्रकृति से भद्र थे। (ख्यात) साधना मे रत होकर सकुशल सयम-यात्रा का निर्वहन करने लगे। उन्होने स० १८७५ मे मुनि जोधोजी (४६) के साथ 'कोचला' (झारोल के पास) चातुर्मास किया। दूसरे सत मोजीरामजी (५४) थे, ऐसा उल्लेख शासन विलास ढा० १ गा० ५० की वार्त्तिका (जोधोजी की) मे है। सं० १८८३ के कांकड़ोली चातुर्मास मे मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ थे, इसका उल्लेख पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० मे मिलता है।

प्रकीर्णक पत्र संग्रह प्रकरण ४ पत्र सख्या २७ मे लिखा है कि मुनि अमीचदजी (८०) ने ऋषिराय से कहा—आप राजनगर पधार जाए, वहा मुनि माणकचदजी आदि है। इससे लगता है कि वे उस समय (स० १८९३) अग्रणी थे।

३. मुनिश्री ने शीतकाल मे शीत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली। तपस्या भी बहुत की। ऊपर मे आछ के आधार से चौमासी तप किया।

(ख्यात)

मुनिश्री ने चोमासी तप भारीमालजी स्वामी के शासनकाल मे किया था, ऐसा निम्नोक्त गाथा से ज्ञात होता है—

'माणकचन्दजी भारीमाल सुपसाय कै, चौमासी करी चूप सू जी।
बहु वर्सा लग सजम पाली ताय कै, जन्म सुधार्यो आपरो जी ॥'

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४५)

सुना जाता है कि उक्त चौमासी तप उन्होंने स० १८७७ मे किया। उसी वर्ष मुनि हीरजी (७६) ने मुनि स्वरूपचन्दजी (६२) के पास पुर मे चौमासी तप किया था। दोनो मुनियो का यह तप गण में (भारीमालजी स्वामी के युग मे) सर्व-प्रथम था।

ख्यात तथा शासन विलास मे मुनिश्री का स्वर्गवास लावा में हुआ लिखा है[1] पर वहा स्वर्ग संवत् नही है। सत गुणमाला ढा० ४ मे उल्लिखित स्वर्गस्थ साधुओं के क्रम को देखते हुए स्वर्ग सं० १९०० के आस-पास का लगता है।

---

१. माणक सैहर केलवै वासी, हीगर जाति पिछाणो रे।
चोमासी तप आछ आगारे, लाहवे परभव जाणो रे ॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० २५)

७२।२।२३ मुनिश्री पीथलजी छोटा (केलवा)

(संयम पर्याय सं० १८७१ या ७२, १८७८)

गीतक-छन्द

गोत्र था चंडालिया पुर केलवा में वास था।
विरत होकर साधना-पथ पर किया विन्यास था[1]।
सुविनयी त्यागी विरागी तपस्वी इन्द्रिय-दमी।
मास दो तक ऊर्ध्व तप के चढ़े वन कर विक्रमी[2] ॥१॥

दोहा

दुहिता नवलां ने लिया, चरण आपके वाद।
भारी गुरु के चरण में, पाया परमाह्लाद[3] ॥२॥

रामायण-छन्द

नवापुरा में मुनि गुलाव ने वर्षावास किया सकुशल।
सात साधु उस समय वहां पर जिनमें एक संत पीथल।
एक दिवस उज्जैन शहर में गये गोचरी वे धृतिधीर।
भिक्षा लेकर वापस आते हुआ पंथ में शिथिल शरीर ॥३॥

पहुंचे भूल स्थान पर झोली रखकर वैठे जा एकांत।
ऋषि गुलाव ने पूछा उनसे आज हुए क्यों इतने क्लांत।
बोले पीथल—'सत्त्व देह से निकल गया लगता है आज।
अनशन मुझे कराओ अव ही सुन मेरी अन्तर आवाज' ॥४॥
अभी-अभी तुम चलकर आए जिससे हो पाए हैरान।
करने से विश्राम स्वल्प क्षण मिट जाएगी पंथ थकान।
फिर भी वे अत्याग्रह करते लगा रहे अनशन की रट।
तव तो मुनि गुलाव ने अनशन करवाया पीथल को झट ॥५॥

सूचित किया बाद में अनशन मुनि-जन क्या श्रावक-जन को।
सुनकर सब आश्चर्य-चकित हो धन्य-धन्य कहते उनको।
ऊर्ध्व भाव से एक पक्ष में सफल हो गया सारा काम।
महिमा फैली जिन शासन की स्तुति गाते है लोग तमाम[४] ।।६।।

१. मुनिश्री पीथलजी केलवा (मेवाड) के रहने वाले और गोत्र से चंडालिया (ओसवाल) थे। उन्होंने सं० १८७१ या ७२ में साधुत्व ग्रहण किया।

(ख्यात)

उनका दीक्षा संवत् ख्यात आदि में नहीं है पर मुनिश्री माणकचन्दजी (७१) सं० १८७१ फालगुन वदि १३ के पश्चात् तथा मुनि टीकमजी (७३) सं० १८७२ में दीक्षित होने से लगता है कि उन्होंने उक्त समय की मध्यावधि (सं० १८७१ या ७२) में दीक्षा स्वीकार की।

२. मुनिश्री बडे विनयशील, गुरु-भक्त, गुणग्राही त्यागी, विरागी और तपस्वी थे[1]। उनका साधनाकाल लगभग छह साल का रहा उसमें उन्होंने स्फुटकर तपस्या बहुत की, ऊपर में एक मास तथा दो मास तक का तप किया[2]। इसके अतिरिक्त और भी बड़े थोकडे किये।

उन्होंने मुनिश्री हेमराजजी (३६) के साथ सं० १८७३ का सिरियारी चातुर्मास किया[3]।

सं० १८७४ में मुनिश्री हेमराजजी के साथ गोगुंदा चातुर्मास में उन्होंने ४५ दिन तप किया[4]।

सं० १८७५ में मुनिश्री हेमराजजी के साथ पाली चातुर्मास में उन्होंने ३६ दिन की तपस्या की।[5]

जय सुजश० ढा०६ दो० ३ में भी इसका उल्लेख है।

सं० १८७६ में भी संभवतः वे मुनिश्री हेमराजजी के साथ देवगढ़ चातुर्मास में रहे हों क्योंकि पाली चातुर्मास के बाद आचार्यश्री के दर्शन के लिए मेवाड़ की

---

१. होजी मुनि विनयवंत सतगुरु थी, बोहली प्रीत जो।
त्यागी रे वैरागी तपसी, महागुणी रे लोय॥

(पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० ५)

२. होजी मुनि मासखमण तप कीधो, मन उचरंग जो।
वारु रे वली विविध प्रकारे, तप भलो रे लोय।
होजी मुनि दोय मास वलि कीधा, दिढ परिणाम जो।

(पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० २, ३)

३. 'लघु पीथल छठो विमासो।'

(हेम० नव० ढा० ५ गा० ६)

४. 'लघु पीथल पैंतालीस सुरासो।'

(हेम० नव० ढा० ५ गा० २४)

५. लघु पीथल छत्तीस पिछाणी।

(हेम० नव० ढा० ५ गा० २७)

तरफ जाते समय मुनिश्री हेमराजजी को गाय की चोट लगने से देवगढ मे ६ महीनो तक रुकना पंडा था।

३. उनकी पुत्री साध्वीश्री नवलांजी (६५) ने उनके बाद सं० १८७३, ७४ मे दीक्षा ली थी।

४. मुनिश्री पीथलजी ने स० १८८७ का चातुर्मास मुनि गुलाबजी (५३) के साथ नवापुरा (उज्जैन का उपनगर) मे किया। वहा एक दिन वे शहर मे गोचरी गये। वापस आते समय रास्ते मे एकाएक शरीर इतना शिथिल हो गया कि आगे चलना कठिन-सा हो गया। फिर भी वे हिम्मत कर ज्यो-त्यो मूल स्थान पर पहुचे और झोली को एक तरफ रख कर एकात मे बैठ गये। मुनि गुलाबजी ने उनकी खिन्नता का कारण पूछा तो उन्होने कहा—'आज मेरा शरीर सत्त्व हीन-सा हो गया है, मुझे लगता है कि अब यह टिकने वाला नही है अत. आप मुझे आजीवन अनशन करवा दे। मुनि गुलाबजी बोले—अभी-अभी तुम चल कर आये हो अत. हैरानी आ गई है कुछ विश्राम करने से स्वस्थ हो जाओगे। फिर भी मुनि पीथलजी अपने उक्त कथन की पुष्टि करते हुए अनशन का आग्रह करने लगे। तब मुनि गुलाबजी ने उन्हे अनशन करवा दिया और बाद मे साधु एव श्रावकों को सूचित कर दिया। सभी आश्चर्य-चकित हुए और मुनि पीथलजी के साहस की सराहना करने लगे। वर्धमान भावों से मुनि पीथलजी आगे बढ़ते गये और १५ दिन के सथारे से पडित मरण को प्राप्त हुए। जैन शासन की बहुत महिमा फैली।

उनके अनशन के संबंध मे निम्नोक्त उद्धरण मिलते है—

(१) मुनिश्री कोदरजी (८६) जयाचार्य को मुनि पथिलजी (७२) का हवाला देते हुए अनशन करवाने के लिए निवेदन कर रहे है—

तपसी कहै कर जोड़ नै हो, नगर उजैणी चोमास।
गुलाबजी कियो सात संत सू हो, लघु पीथल त्यांरै पास॥
नवापुरा थी जाय नै हो, गोचरी शहर मे कर पाछा आय।
डील वीखरियो जाण नै हो, पीथल माग्यो सथारो ताय॥
साध श्रावक बैठा घणा हो, पिण किण ही नै न पूछ्यो ताय।
विण पूछ्यां लघु पीथल भणी हो, दीयो सथारो कराय॥
अणसण कराय नै बोलिया हो, साध श्रावक सुणजो वाय।
पीथैजी अणसण कियो हो, सुण नै सहु अचरज थाय॥
पनरै दिन रो पीथल भणी हो, अणसण आयो सार।
जिन मार्ग पिण दीप्यो घणो हो, मालव देश मझार॥

(कोदर गुण वर्णन ढा० ४ गा ३१ से ३४)

(२) पीथल मुनि गुण वर्णन में—

होजी दिन पनरै रो अणसण, आयो तांम जो।
चढ़ते परिणामे मन, आनद घणो रे लोय॥

(पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० ४)।

(३) पंडित मरण ढाल में—

लघु पथिल नगर उजीण में, अणसण पनरै दिन नो पायो रे।
सवत् अठारै अठंतरे, जीत रो डको बजायो रे॥

(सत गुणमाला ढा० २-पडित मरण ढा० १ गा० १७)।

(४) संत गुणमाला में—

जिन मार्ग मे लघु पीथल अणगार कै, तप दोय मास नो दीपतो जी।
पनरा दिन नो सथारो श्रीकार कै, जिन मारग उजवालियो जी॥

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० २८)।

(५) शासन विलास में—

लघु पीथल बे मासी लग तप, जाति चडाल्या धारो रे।
सैंहर उज्जैंण अठंतरे वर्षे, दिवस पनर सथारो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० २६)।

(६) श्रावक महेशदासजी कृत छप्पय—

प्रिथीराज श्री पूज के सिष भला सुवनीत।
तप जप किरिया कष्ट कर गया जमारो जीत।
गया जमारो जीत कर्म कू किण विध चूरे।
नगर उजीणी जाय संथारो कीधो सूरे।
आज्ञा श्री अरिहंत की पाली रूड़ी रीत।
प्रिथीराज श्री पूज के सिष भला सुविनीत॥१८॥

(श्रा० महेशदासजी कृत पूजगुणी)।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर-भारी संत वर्णन ढा० ४ गा० १२८ मे भी इसी तरह विवरण मिलता है।

उपर्युक्त सदर्भो के अनुसार मुनि पीथलजी सं० १८७८ के उज्जैन चातुर्मास मे दिवगत हुए। पर एक प्राचीन पत्र छोगजी के प्रश्नों के समाधान के सबंध मे (ख्यात नम्बर १७८ पुस्तक मे) है उसमे लिखा है—'सं० १८७८ का चातुर्मास साध्वीश्री अजबूजी (३०) का उज्जैन मे था और वे वहां से कपड़ा तथा कागज जांचकर आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शनार्थ राजनगर पहुंची और उन्होने वह

भेंट किया।' इससे यह प्रश्न होता है कि क्या स० १८७८ की साल उज्जैन में मुनिश्री गुलावजी और साध्वीश्री अजबूजी के दो चातुर्मास थे ?

उपर्युक्त—'नवापुरा थी जाय नैं हो, गोचरी शहर मे कर पाछा आय' पद्य से लगता है कि मुनिश्री गुलावजी का चातुर्मास नयापुरा (उज्जैन का उपनगर) मे और साध्वीश्री अजबूजी का उज्जैन शहर मे था। मुनिश्री पीथलजी नवापुरा से शहर मे गोचरी गये और वापस नवापुरा में आकर उन्होने सथारा किया।

भारीमालजी स्वामी ने स० १८७७ वैसाख कृष्णा ६ के दिन केलवा मे मुनि रायचदजी को युवाचार्य पद दिया। उस सदर्भ मे उन्होने एक लेखपत्र तैयार किया। उसमे मुनि गुलावजी (५३) व पीथलजी (५६) के हस्ताक्षर है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि उक्त तिथि के पश्चात् मुनि गुलावजी व पीथलजी आदि ने वहा से विहार किया और स० १८७८ का चातुर्मास नयापुरा (उज्जैन का उपनगर) मे किया तथा वहां पीथलजी ने १५ दिन के अनशन से समाधि मरण प्राप्त किया।

भारीमालजी स्वामी के शासनकाल मे दीक्षित ३८ साधुओ मे से तीन साधु भारीमालजी के समय मे दिवंगत हुए, ऐसा शासन प्रभाकर मे उल्लेख है एव ख्यात आदि सभी ग्रथो से समर्थित है। उनमे एक पीथलजी थे—

१. मुनि जीवणजी (६२) स्वर्ग स० १८६२
२. ,, वखतोजी (५८) स्वर्ग स० १८७४
३. ,, पीथलजी (५६) स्वर्ग स० १८७८ चातुर्मास मे।

स० १८७७ के नाथद्वारा चातुर्मास के पश्चात् आचार्यश्री भारीमालजी माघ महीने मे राजनगर पधारे। वहां अन्यत्र विहारी सभी साधु भारीमालजी स्वामी के दर्शनार्थ पहुचे। उस समय गण मे कुल ३८ साधु थे। वे सव राजनगर मे एकत्रित हो गये। फिर कितने ही साधुओ को वहा से विहार करवा दिया।

राजनगर रहिता थका, होजी अडतीस गणे अणगार।
आया दर्शन करवा श्री पूज रा,करायो किताहीक नैं विहार॥
(भारीमाल चरित्र ढा० ५ गा० ७)

उसके वाद मुनि गुलावजी दिवगत हुए जैसा कि ऊपर कहा गया है, दीपोजी (५२) गण से पृथक् हुए और स० १८७८ माघ वदि ८ को भारीमालजी स्वामो स्वर्ग पधार गये। शेष ३५ साधु रहे, ऐसा भारीमाल चरित्र ढा० १३ गा० ११ मे उल्लेख है।

इन सव आधारो से प्रमाणित होता है कि मुनि गुलावजी का स्वर्गवास सं० १८७८ के चातुर्मास एवं भारीमालजी स्वामी के युग मे हुआ।

ऐसा होने पर ही उक्त पडित-मरण ढाल मे उनका नामोल्लेख है। क्योकि उस ढाल मे भारीमालजी स्वामी के समय तक दिवगत साधुओ के नाम है।

७३।२।२४ मुनिश्री टीकमजी (माधोपुर)

(सयम पर्याय स० १८७२-१९१५)

गीतक-छन्द

शहर माधोपुर निवासी वने टीकम संयमी।
बहत्तर की साल भारीमाल गुरु से विक्रमी[1]।
ललित अक्षर-न्यास अर्जन कला कौशल का किया।
अग्रणी हो धर्म का उपदेश पुर-पुर मे दिया[2] ॥१॥

दोहा

वर्ष तीन चालीस तक, किया साधनाभ्यास।
नाथद्वारा से गये, कर अनशन सुरवास[3] ॥२॥

१. मुनिश्री टीकमजी माधोपुर (ढुढाड) के निवासी थे। उन्होने सं० १८७२ में आचार्यश्री भारीमलजी के हाथ से दीक्षा ली[1]।

(ख्यात)

संत विवरणिका मे उनकी जाति पोरवाल-ओछल्या लिखी है।

२. वे अग्रणी हुए। श्रावकों द्वारा लिखित प्राचीन चातुर्मास तालिका के अनुसार उनका ३ ठाणो से स० १९१२ का चातुर्मास रेलमगरा मे था। मुनिश्री जीवराजजी (८६) द्वारा रचित चातुर्मास-विवरण की ढाल के उल्लेखानुसार उनका ३ ठाणो से स० १९१३ का चातुर्मास कानोड मे था।

३. मुनिश्री का स० १९१५ का चातुर्मास नाथद्वारा मे था। वहां उन्होने अनशनपूर्वक समाधि-मरण प्राप्त किया—

परभव पनरै वर्ष टीकम ऋषि, माधोपुर वसवानो रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० २७)

चदेरा ना लाल रे, टीकम माधोपुर तणा।
सत विहु सुविशाल रे, अणसण श्रीजीदुवार मे।।

(आर्या दर्शन ढा० ८ सो० ३)

इस चातुर्मास मे उनके साथ मुनिश्री लालजी (१२२) थे। उन्होने सावन महीने में सथारा करके पडित-मरण प्राप्त किया।

चरम चोमसो श्रीजीद्वारे, टीकम ऋषि पै जाणो रे।
उगणीसै पनरे सावण मे, परभव कियो पयाणो रे।।

(लाल मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ४)

इन सब उद्धरणो से लगता है कि मुनि टीकमजी मुनि लालजी के बाद चातुर्मास मे स्वर्ग पधारे।

उन्होने स० १८८७ वोरावड़ मे एक साथ १५ दिन चौविहार करने का प्रत्याख्यान किया जिसमे तीन दिन पानी पीने का आगार रखा। तीसरे दिन प्यास लगी, फिर भी पानी नही पीया और उसी दिन ऊर्ध्व भावो के साथ समाधिपूर्वक पडित-मरण प्राप्त कर गए।

---

१. भारीमालजी दीक्षा दीधी, वोहित्तरे उनमानो रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० २७)

७४।२।२५ मुनिश्री रतनजी (लावा)

(सयम पर्याय स० १८७३-१९१७)

छप्पय

भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार।
मनो मनोरथ हो गये जिससे सव साकार।
जिससे सव साकार प्रथम मानव भव पाया।
जैन धर्म मय रत्न दूसरा कर में आया।
चरण रत्न था तीसरा चौथा अनशन सार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार।।१।।

मेदपाट की भूमि पर 'लावा' नामक ग्राम।
गोत्र वंवलिया ज्ञाति का वहु परिजन धन-धाम।
वहु परिजन धन-धाम धर्म में गहरी आस्था।
करके वोध विकास चुना फिर अगला रास्ता।
स्त्री सह दीक्षा के लिए हुए 'रत्न' तैयार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार।।२।।

फतैचंद भ्राताग्रणी थे श्रावक आदर्श।
दीक्षा के उत्सव वड़े मना रहे धर हर्ष।
मना रहे धर हर्ष पत्रिका कुंकुम देकर।
आमंत्रित वहु व्यक्ति किये है उस अवसर पर।
हेम महामुनि आ गये कर अनुनय स्वीकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार।।३।।

मृगसर कृष्णा छठ का दीक्षा दिन निर्णीत।
निकल रही वरनोरियां गाती वहिनें गीत।
गाती वहिने गीत भतीजा रुदन मंचाता।

रत्न-सहोदर युक्ति-पूर्व सुत को समझाता।
शांत हुआ वह चतुर तब सहमत सब परिवार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार ॥४॥

हेम हाथ से स्त्री सहित बने सयमी रत्न।
नाम भाव निक्षेप में परिणत हुआ सयत्न।[१]
परिणत हुआ सयत्न साधना करते अच्छी।
नीति निपुण गुणवान ज्ञान निधि भरते सच्ची।
कर पाये बहु धारणा तपोधन अणगार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले हैं चार ॥५॥

अविचल निष्ठा संघ में गुरु से हार्दिक प्रेम[२]।
रहे श्रमण-पर्याय में बहु वत्सर सक्षेम।
बहु वत्सर सक्षेम किया आखिर संथारा।
अंबापुर में स्वच्छ सुयश का बजा नगारा।
भारी हुई प्रभावना मुख-मुख जय-जयकार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार ॥६॥

पुर-पुर से नर आ रहे बढ़ता त्याग विराग।
एक बंधु ने कर दिया भोजन का भी त्याग।
भोजन का भी त्याग 'फौज' ने मुनि से पूछा।
बोले मुट्ठी भीच मनोबल मेरा ऊंचा।
फला दिवस उनचास से अनशन ऊर्ध्व उदार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार ॥७॥

जय युग में मुनि 'रत्न' ने सफल किया अवतार।
कलियुग में दिखला दिया सतयुग का आकार।
सतयुग का आकार नया इतिहास बनाया।
अनशन क्रम में नाम अमर उनका हो पाया।
बने रहेंगे संघ के 'रत्न' हृदय के हार।
भाग्य योग से 'रत्न' को रत्न मिले है चार ॥८॥

दोहा

सेवा की मुनि चार ने, देकर गहरा ध्यान।
जय ने गाया 'रत्न' का, मुक्त-कठ गुणगान[३] ॥९॥

१. मुनिश्री रतनजी मेवाड में लावा (सरदारगढ़) के वासी और गोत्र से बंवलिया (ओसवाल) थे। उनके घर मे धन व परिवार की संपन्नता थी। उनकी पत्नी का नाम पेमांजी था। यथासमय साधु-साध्वियों के सपर्क से उन दोनों को वैराग्य भावना उत्पन्न हुई और वे दीक्षा के लिए उद्यत हुए। रतनजी के बड़े भाई फतहचंदजी बड़े दृढधर्मी और समझदार श्रावक थे। उन्होने सहर्ष अनुमति देते हुए अपने छोटे भाई का दीक्षोत्सव मनाना प्रारभ किया। उस अवसर पर कुकुम-पत्रिकाए देकर अनेक गांवो के ज्ञातिजनो को आमन्त्रित किया।[1] बड़ी धूमधाम से बहिनें मांगलिक गीत गाती और वरनोरियां निकलने लगी।

उस समय फतहचदजी का पुत्र (रतनजी का भतीजा) मोहवश आंखों से आंसू बहाने लगा। फतहचन्दजी ने उसे उदाहरण द्वारा समझाते हुए कहा—जिस प्रकार एक भाई अग्नि मे जलता है ओर एक भाई उससे निकलता है। संबधी लोग जलने वाले को अपने स्वार्थ के लिए रोते हैं पर जो आग से निकलता है उसको नही रोते, प्रत्युत खुशियां मनाते है। इस प्रकार जन्म-मरण की एक भीषण ज्वाला है, उसमे मैं जल रहा हूं, उसको रोना तो उचित हो सकता है लेकिन तुम्हारा चाचा जो उस ज्वाला से निकल रहा है, उसके लिए तू रुदन क्यों कर रहा है ?[2]

इस प्रकार समझाने से वह शात हो गया और सभी परिवार ने सोल्लास आज्ञा प्रदान कर दी।

फतहचन्दजी द्वारा निवेदन करवाने पर मुनिश्री हेमराजजी सिरियारी से

---

१. रत्न ऋषि रलियामणो रे, लाहवे चरण नो लाह।
जात वावलिया जांणजो रे, अमीचंद सग शिव राह॥
दीर्घ बधव फतैचदजी रे, धर्मी नें धनवत।
उचरग थी अदरावियो रे, चरण सरस मन खत।
कंकोतरिया मेली करी रे, बोलाया बहु जन्न।
(जयाचार्य रचित—रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० १ से ३)

२. अग्नि मे एक बधव बलै रे, एक निकलै छै बार।
जे अग्नि मे बलै तेहनै रे, रोवै ते जग व्यवहार॥
पिण लाय मा सू जे निकलै रे, तिण नै रोवै किण न्याय।
इण दृष्टते जाणजो रे, जन्म मरण री लाय॥
ते लाय माहै तो हूं बलू रें, तसु रोवै ते न्याय।
तुझ काको लाय थी निकलै रे, तेहनै रुदन करै काय॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० ६ से ८)

शीघ्र विहार कर मृगसर वदि ५ को लावा पहुंचे।[1] उन्होने वहां स० १८७३ मृगसर कृष्णा ६ को मुनि रतनजी को उनकी पत्नी पेमाजी (६१) सहित दीक्षित किया। उसके साथ मुनि अमीचन्दजी 'गलूड' (७५) को भी दीक्षा प्रदान की।[2]

(रत्न गु० ढा० १ गा० १ से १० के आधार से)

भैक्षव-शासन मे दम्पति दीक्षा का यह प्रथम अवसर था। आचार्य भिक्षु के समय स० १८५७ मे दीक्षित साध्वीश्री जोताजी (४८) मुनि रत्नजी के भाई की पत्नी थी। साध्वी नंदूजी (६२) उनकी भतीजी (फतहचंदजी की पुत्री) थी। ऐसी लावा के श्रावको की धारणा है।

नदूजी ने इसी वर्ष रतनजी की दीक्षा के कुछ दिन वाद दीक्षा ग्रहण की।

मुनिश्री ने साधनारत होकर ज्ञानाभ्यास किया। आगमो के पठन के साथ तत्त्व-चर्चा की अच्छी धारणा की। तपश्चर्या भी वहुत की। (ख्यात)

उनकी निर्मल नीति एव सघ संघपति के प्रति अंतरंग निष्ठा का जयाचार्य ने स्वरचित गीतिका में इस प्रकार उल्लेख किया है—

नीति निपुण महिमा निलो रे, आण अखंड आराध।
परम प्रीत सतगुरु थकी रे, सखरी रीत समाध।
जबर शासण री आसता रे, सर्व गुणा मे ए सार।
प्राण खडै पिण नवि छंडै रे, गण शिव सुख दातार।

(रत्न गुण वर्णन ढा० गा० १५, १६)

मुनिश्री ने स० १८८३ का मुनिश्री भीमजी (६३) के साथ कांकड़ोली चातुर्मास किया। दूसरे संत मुनि पीथलजी (५६), माणकचन्दजी (७१) और हुक्मचदजी (६३) थे। ऐसा पीथल गुण वर्णन ढा० १ गा० ३० मे उल्लेख है।

---

१. 'लाहवा' थी फतेचदजी सोयो रे, हेम पै विनती मेली जोयो रे।
रत्नजी दिख्या अवलोयो॥
घाटै चढी नै लाहवा मझारो रे, मिगसर विद पचम तिथ सारो रे।
छठ रत्न दिख्या अवधारो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ७, ८)

२. सवत् अठारै तीहोतरे रे, मृगसर विद छठ सार।
रत्न चरण महोच्छव रच्या रे, आणी हरष अपार॥
रत्न सजोडे विध करी रे, आंचलियो अमीचन्द।
त्रिया सुत छाडी तिण समै रे, त्रिहु हेम हाथ चरण सघ॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० ४, १०)

हेम नवरसा ढा० ५ गा० १० एव शासन विलास ढा० ३ गा० २८ मे भी उक्त दीक्षा का वर्णन है।

अन्य चातुर्मास किन-किन के साथ और कहां-कहां किये इसका उल्लेख नही मिलता।

३. मुनिश्री ने चौवालीस साल लगभग साधु-पर्याय का पालन किया। आखिर सं० १६१७ माघ कृष्णा १० को आमेट में शारीरिक शक्ति होते हुए उच्चतम भावो से आजीवन तिविहार अनशन स्वीकार किया। क्रमशः ज्यो-ज्यो दिन निकलते है त्यों-त्यो उनका मनोवल दृढ और भावना उत्तरोत्तर वढती जाती है। सूचना मिलने पर ग्राम ग्राम से अनेक लोग दर्शनार्थ आते और यथाशक्ति नियम ग्रहण करते। पुर निवासी मेघराजजी वोरदिया ने संथारे के समाचार सुनकर तीनों आहारों का प्रत्याख्यान कर दिया। प्रतिदिन भाई-वहनो के आवागमन से आमेट मे एक मेला-सा लग गया। सभी मुनिश्री के अनशन की मुक्त कंठों से यशोगाथा गाने लगे एव मुख-मुख पर जय-जय का घोप गूंजने लगा। उन्ही दिनों नाथद्वारा के प्रमुख श्रावक फौजमलजी तलेसरा ने मुनिश्री के दर्शन किये और पूछा—'आपके भाव कैसे है ?' मुनिश्री ने कहा—'वज्र की दीवार के समान मेरा मन मजवूत है।'[1]

क्रमशः ४६ दिन का अनशन सम्पन्न कर स० १६१७ फाल्गुन शुक्ला १३ को आमेट मे मुनिश्री ने पडित-मरण प्राप्त किया।[2] मेघराजजी वोरदिया के २० दिन का तप हो गया। मुनिश्री के अनशन से जैन शासन की वहुत प्रभावना हुई। कलियुग मे सतयुग की-सी रचना देखकर जनता आश्चर्य-चकित हो गई।

मुनि जीवराजजी (८६) माणकचन्दजी (६६) खूमचन्दजी (१४५) और पोखरजी (१६५) ने मुनिश्री की तन मन से सेवा की और अनशन मे अच्छा सहयोग दिया।

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० १४ तथा १७ से २६ के आधार से)

मुनिश्री ने ४६ दिनों का सथारा कर तेरापंथ धर्म सघ के साधुओ मे नया कीर्त्तिमान स्थापित किया। मुनिश्री से लगभग ५० वर्ष पूर्व साध्वीश्री गुमांनाजी (३३) तामोल वालो को ६० दिन का अनशन आया जो सघ मे सर्वाधिक था।

---

१. श्रीजीदुवारा थी दर्शण किया रे, फोजमल सुप्रसन्न।
रत्न कहै वज्र भीत जेहवो, दृढ़ है म्हारो मन्न॥

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २१)

२. सथारो दिन गुणपचास नो, रत्न भणी सुध रीत।
जय-जय जय-जन उच्चरै रे, गया जमारो जीत॥
उगणीसै सतरे समै, फाल्गुन सुदि तेरस सार।
रत्न ऋषि परभव गयो रे, पाम्या जन चिमत्कार॥

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २२, २३)

मुनिश्री के ११८ वर्ष बाद साध्वीश्री लिछमाजी (७८६) 'सरदारशहर' को स० २०३३ आसोज शुक्ला ६ लाडनू मे १७ दिन सलेखना एवं ४६ दिन का अनशन आया।

मुनिश्री के दिवंगत होने के १७ दिन बाद जयाचार्य ने उनके गुणोत्कीर्त्तन की एक गीतिका बनाई।[1] उसमे उनके यशस्वी जीवन का वास्तविक चित्रण किया है। उनके स्मरण की महत्ता बतलाते हुए लिखा है—

रत्न चिंतामणि सारखो रे, रत्न ऋषि सुखकार।
भजन करो भवियण सदा रे, समरण जय जयकार॥

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २७)

शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १३१ मे ४२ दिन के अनशन का उल्लेख है जो उक्त प्रमाणो से गलत है।

१. उगणीसै सतरे समै रे, चेत अमावस बुध।
रत्न डीडवाणे रट्यो रे, जय जश सपति सुध॥
(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० २८)

७५।२।२६ मुनिश्री अमीचन्दजी (कालूरामजी) गलूंड

(संयम पर्याय सं० १८७३-१८८७)

लय—धर्म पर डट जाना···

रमे तप संयम में, अमीचंद अणगार।
जमे उपशम दम में, अमीचंद साकार ।।ध्रुव०।।

ज्ञाति का ग्राम गलूंड ललाम, गोत्र आंचलिया था अभिराम।
दूसरा कालू था उपनाम, वसे गृह-आश्रम में ।।अमीचंद।।१।।
जला भावों का दीप अमंद, तरुण वय में तरुणी सह नंद।
छोड़ के चरण लिया सानंद, जुड़े पद पचम में ।।२।।

दोहा

साल तिहोत्तर मार्ग का, छठ्ठा दिन श्रीकार।
हुआ हेम के हाथ से, दीक्षा का संस्कार[1] ।।३।।

लय—धर्म पर डट जाना···

भरा आत्मा में अनुभव सार, वढ़ाया विनय-विवेक विचार।
वहाया शांत सुधा हरवार, वढ़े सद्गुण क्रम में ।।४।।
उच्चतम मुनि का श्रद्धाचार, त्याग तप जप में किया निखार।
दमा पंचेन्द्रिय विपय विकार, अग्रणी उद्यम में ।।५।।
साधना में की प्रगति महान्, सहायक गण गणपति को मान।
ज्ञान युत ध्याते निर्मल ध्यान, अधिक रुचि आगम में ।।६।।

दोहा

वस्तु सेलड़ी की सभी, दी मुनि श्री ने छोड़।
पाई रसना पर विजय, तार विरति से जोड़ ।।७।।

लव—धर्म पर डट जाना···

तपोधन ने तप किया सजोर, सहा शीतोष्ण परिषह घोर।
काय-उत्सर्ग अभिग्रह और, रमे रस अनुपम में ॥८॥

दोहा

चौविहार दश दिवस तक, कर पाये क्रमवद्ध।
कर्म निर्जरा के लिए, हो पाये कटिवद्ध[१] ॥९॥

शेष में पाक्षिक तप स्वीकार, दिखाया आत्मिक बल साकार।
तीसरे दिन पा गये उदार, मरण भावोत्तम में ॥१०॥

दोहा

सत्यासी की साल में, बोरावड़ शुभ स्थान।
नाम अमर कर सघ में, बने स्वर्ग-महमान[२] ॥११॥

पचाक्षर मे आपका, आया पहला नाम।
विघ्नहरण की ढाल के, देखो पद्य ललाम[३] ॥१२॥

विविध स्थलों में जीत ने, गाये मुनि गुण गान।
स्थान दिया है हृदय मे, किया बड़ा सम्मान[४] ॥१३॥

स्वप्न और आभास से, ज्ञात हुए कुछ तथ्य।
माने है व्यवहार से, 'जय' ने उनको सत्य[५] ॥१४॥

१. मुनिश्री अमीचदजी मेवाड़ मे गलूंड के वासी थे। उनकी जाति ओसवाल और गोत्र आचलिया था। यथा समय उनकी शादी हुई। पत्नी का नाम पेमांजी था। उनके एक पुत्र भी हुआ।

उनका मुख्य नाम अमीचदजी एवं उपनाम कालूरामजी था जिसका जयाचार्य ने कई जगह प्रयोग किया है।[1]

समयान्तर से साधु-साध्वियों द्वारा उद्‌बोधन पाकर वे दीक्षा लेने के लिए कटिबद्ध हुए।

पत्नी और पुत्र को छोडकर सं० १८७३ मृगसर वदि ६ को लावा (सरदारगढ) मे मुनिश्री हेमराजजी द्वारा सयम ग्रहण किया। उनके साथ मुनि रत्नजी (७४) और साध्वी पेमाजी (६१) की भी दीक्षा हुई।

पढिये निम्नोक्त पद्य—

तिहंतरे गृहवास तज्यो, भव तारक हेम ऋषि ने भज्यो।
छांड त्रिया सुत चरण लियो॥
(अमी० गुण० ढा० ४ गा० २)

रत्न सजोडे विध करी रे, आंचलियो अमीचंद।
त्रिय सुत छांडी त्रिण समै रे, त्रिहुं हेम हाथ चर्ण संघ॥
(रत्न गुण० ढा० १ गा० १०)

अमीचंद गलूंड नो वासी रे, पुत्र कलत्र छोड़ उदासी रे।
ते पिण चारित्र थी आतमवासी॥
त्रिया सहित रत्न दीख्या लीधी रे, अमीचंद आंचलियो प्रसीधी रे।
हेम एक दिवस दिख्या दीधी॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ९, १०)

२. मुनिश्री एक उच्चकोटि के साधक हुए। उन्होने आचार-विचार की कुशलता के साथ विनय, विवेक आदि गुणों मे अधिकाधिक वृद्धि की। उनका त्याग-विराग जन-जन को आकृष्ट करने वाला था। उन्होने उपवास से दस दिन का चौविहार लडीबद्ध तप किया। सेलड़ी की वस्तु (जिस पदार्थ में गुड, शक्कर, चीनी आदि मिले हों) का आजीवन त्याग कर दिया। शीतकाल मे बहुत शीत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली। विविध प्रकार के अभिग्रह, कायोत्सर्ग तथा ध्यान-स्वाध्याय आदि द्वारा अपने संयमी जीवन को तपे हुए सोने की

---

१. अमीचद गुण आगलो रे लाल, कालूराम करूड।
(अमी० गु० ढा० ३ गा० १)

कालूराम कडलो घणो, परम आप सू प्रीत।
(अमी० गु० ढा० ५ गा० ४)

तरह चमकाया। जयाचार्य ने उनको भगवान् महावीर के अंतेवासी एवं महान् तपस्वी संत धन्ना अणगार की उपमा देकर उनकी साधना के संदर्भ मे उल्लेख किया है। पढिये निम्नोक्त पद्य—

वस्तु सेलड़ी नी सहु त्यागी, वहु शीत उष्ण शुभ ध्यानो रे।
चौविहार दश दिन लग कीधा, घोर तपस्वी जानो रे॥
चौविहार पनरै दिन पचख्या, त्रिण उदक आगारो रे।
सत्यासीये तीजै दिन परभव, अमीचद अणगारो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० ३०, ३१)

शीत काल वहु शीत सह्यो, ऋष ऊभा काउसग्ग अभिग्रह रह्यो।
उष्णकाल आतप तपियो॥
दश दिवस ताई चौविहार दीप, जश धारक इंद्रिय विषय जीप।
रस मिष्ट त्याग तप सू रसियो॥

(अमी० गुण० वर्णन ढा० ४ गा० ३, ४)

अमीचद त्रिहु ऋतु मझै रे, जवर कियो तप घोर।
धन्ना ऋषि नी ओपमा रे, तपसी मे शिर मोर।

(रत्न गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

हुवो अमीचद ऋष नीको रे, तपसी तप धारी सुतीखो रे।
मुनि लियो सुजश रो टीको॥
सर्व सेलड़ी वस्तु छडी रे, वड वैरागी कर्म विहडी रे।
ज्यारी पीत मुक्ति सू मडी॥
तप कीधो है विविध प्रकारो रे, दश दिवस ताइ चोविहारो रे।
थयो जिण सासण सिणगारो॥
शीतकाल सी सह्यो अपारो रे, ऊभा काउसग अभिग्रह उदारो रे।
तिण मे पछेवड़ी परिहारो॥
उष्णकाल आतापना लीधी रे, विकट तप खखर देह कीधी रे।
मुनि जग माहि शोभा लीधी॥
चौथे आरे धनो ऋष सुणियो रे, पचम अमीचद सुथुणियो रे।
एक कर्म काटण तत भणियो॥

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ११ से १६)

बड़ा वैरागी, सेलड़ी की वस्तु का जावजीव त्याग, तपस्या पिण कीधी, दस ताई चौविहार किया। शीत परिपह वहुत खम्यो, आतापना पण वहुली लीधी।'

(ख्यात)

उन्होने स० १८८७ वोरावड मे एक साथ १५ दिन चौविहार करने का प्रत्याख्यान किया जिसमे तीन दिन पानी पीने का आगार रखा। तीसरे दिन

प्यास अधिक लगी, फिर भी पानी नही पीया और उसी दिन ऊर्ध्व भावो के साथ समाधिपूर्वक पडित मरण प्राप्त कर गये।

दिन पनरै मुनि पचख दिया, ऋष दिवस तीन जल ना रखिया।
परलोक तीजे दिन पागरियो ॥
तप कर तोडी कर्म रासो, पचम काल प्रकाशो।
अठारै अठ्यासीये काल कियो ॥
(अमी० गु० व० ढा० ४ गा० ६, ७)

अठ्यासीये बोरावड मझै रे, पचख्या पनरै दिन्न।
चौविहार तीजे दिन रे, पडित मरण प्रसन्न ॥
(रत्न० गु० व० ढा० १ गा० १२)

'स० १८८७, १५ दिन चौविहार पचख्या, तीजै दिन चल्या।' (ख्यात)

उपर्युक्त उद्धरणो मे मुनिश्री का स्वर्ग सवत् १८८७ तथा १८८८ लिखा है जो जैन (सावनादि क्रम) एव विक्रम सवत् (चैत्रादिक्रम) की दृष्टि से ही लिखा गया प्रतीत होता है।

शासन प्रभाकर—भारी सत विवरण ढा० ४ गा० १३३ मे लिखा—'सौ दिवस नो कीधो थोकड़ो।' जो लिखने की भूल है।

संत विवरणिका मे मुनिश्री के पिता का नाम रत्नजी एव माता का नाम पेमांजी लिखा है पर वह ठीक नही है। उनकी दीक्षा मुनि रतनजी (७४) तथा साध्वी पेमाजी (९१) के साथ हुई थी अतः इसी भ्रम से लिखा गया मालूम देता है।

४. विघ्न हरण की ढाल के इन पचाक्षर—'अ भी रा शि को' मे मुनिश्री का प्रथम नाम है। वहा उनकी स्मृति मे लिखा है—

सखर सुधारस सारसी, वाणी सरस विशाली हो।
शीतल चद सुहावणो, निमल विमल गुण न्हाली हो, अमीचद अघ टाली हो।
उष्ण शीत वर्षा ऋतु समै, वर करणी विस्तारी हो।
तप जप कर तन तावियो, ध्यान अभिग्रह धारी हो, सुणता इचरज कारी हो।
सन्त धन्नो आगे सुण्यो, ए प्रगट्यो इण आरी हो।
प्रत्यक्ष उद्योत कियो भलो, जाणे जन-जय कारी हो, ज्यारी हूं बलिहारी हो ॥
धोरी जिन शासन धुरा, अहो निशि मे अधिकारी हो।
परम दृष्टि मे परखियो, जवर विचारण थारी हो, मुजश दिशा अनुशारी हो।
प्रगट्यो ऋषि तू भारी हो ॥
(विघ्न हरण ढा० गा० ३ से ६)

५. जयाचार्य के हृदय मे उनका विशेप स्थान था। जिसका अनेक जगह भाव-भरा उल्लेख मिलता है—

पूर्ण थांरी आसता, एक चटक चित्त माय।
कै [जाणै मन मांहरोजी, कै जाणै जिनराय रे॥
त्यागी वैरागी बडोजी, जो अवसर नो जाण।
विनय विवेक विचार मे जी, तपसी महा गुणखाण रे॥

(अमी० गुण वर्णन ढा० २ गा० ५, ६)

ऊडी तुझ आलोचना, वर तुझ वुद्धि विशाल।
पार कहो किम पामियै, म्है परख लियो गुण माल॥

(अमी० गुण वर्णन ढा० ५ गा० ३)

विविध अभिग्रह आदर्या रे, था सू प्रीत अपार हो।
याद आया मन हुलसै, जाण रह्या जगतार हो॥

(अमी० गुण वर्णन ढा० ६ गा० ४)

तप रूप सुधा वृष्टी वरषै रे, घोर तप सुणी कायर धडकै रे।
याद आया हीयो मुझ हरषै रे॥
सुधाचंद समो सुविलासो रे, गुण निप्पन नाम विमासो रे।
कियो पचम आरे उजासो॥
तसु भजन करो नरनारो रे, सर्व दु ख भय भजण हारो रे।
मुनि सुख सम्पति दातारो॥
तिण नै दीधो है सजम भारो रे, भाव लाय थकी काढ्यो बारो रे।
ओ तो हेम तणो उपगारो॥

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० १७ से २०)

अमीचद कालूराम विमास कै, विविध अभिग्रह आदर्योजी।
पचम काल मे कीधो भारी उजास कै, एहनो गुण किम वीसरै जी॥

(सत गुण माला ढा० ४ गा० ३०)

चिंतामणि सुरतरु समो रे लाल, भीम अमी दुख भजन्न।
निश्चल तन मन सू भज्यां रे लाल, सुख पामै सुप्रसन्न॥

(अमी० गुण वर्णन ढा० ३ गा० ६)

जयाचार्य विरचित उनके गुण वर्णन की ६ ढाले 'सत गुण वर्णन' मे है।

६. प्राचीन अनुश्रुति के आधार से कहा जाता है कि मुनिश्री अमीचदजी तीसरे देवलोक मे गए। उनके द्वारा जयाचार्य को कई बार आभास हुए। उनको स्वय जयाचार्य ने अपने हाथ से लिपिबद्ध कर लिया। वे पत्र पुस्तक भडार मे सुरक्षित है।

एक अनुश्रुति यह भी है कि वे गत जन्म मे सरदारसती के पिता थे। सरदारसती को जो महाविदेह क्षेत्र आदि की बाते ज्ञात हुई, वे इनके द्वारा हुई थी।

७६।२—२७ मुनिश्री हीरजी (चंगेरी)

(संयम पर्याय सं० १८७४—१८९३

उय—लो लाखों अभिनन्दन

हीर तपोधन की गुण गरिमा गाऊं मैं दिल खोल।
घोर तपोमय सिन्धु सलिल की दिखलाऊं कल्लोल ॥ध्रुव०॥

मानव जीवन हीरा पाया पाया हीरा नाम।
धर्म अमोलक हीरा संयम हीरा मिला ललाम।
भैक्षव शासन हाथ चढा है वढ़ा अधिकतर मोल ॥ हीर… १॥

मेदपाट की पुण्य धरा था चंगेरी ग्राम।
कोठारी कुल पिता नानजी नाथां मां का नाम।
गृहि जीवन का यौवन वय में देखा पिंजरा पोल[1] ॥२॥

वैराग्यांकुर फूटे टूटे भव वंधन के तार।
जाग उठे प्राक्तन जन्मों के संचित शुभ संस्कार।
भाग्योदय से भारी गुरुवर पाये है अनमोल ॥३॥

साल चहोत्तर अष्टादश रात में छाया नव रंग।
घर परिकर कमला तज दीक्षित 'कमला' ललना संग[2]।
रम सयम में चमक रहे हैं ज्यों रवि मंडल गोल ॥४॥

शिष्य वड़े सुवनीत सुगुरु के शासन मे अनुरक्त।
निर्मल नीति प्रीति सव ही से रखते थे हर वक्त।
उनकी गति-विधि दिन-चर्या में रही साधना वोल ॥५॥

दोहा

वैरागी मुनि थे वड़े, सेवा रसिक विशेष।
उनकी वैयावृत्त से, प्रमुदित हुए गणेश[3] ॥६॥

लय—लो लाखो अभिनन्दन

घोर तपस्वी हुए तपस्या का खोला है द्वार।
सार्थक किया पद्य आगम का 'तप· सूर' अणगार।
चातुर्मासिक तप का विवरण सुन लो श्रुति पट खोल ॥७॥

कितना जलागार से कितना आछ सलिल आगार।
शेष काल के तप का लम्बा चौड़ा है विस्तार।
सबल शक्ति की खड्ग हाथ ले दिये कर्म तरु छोल ॥८॥

शीत काल मे सर्दी सहते उष्ण काल में ताप।
स्वर्ण सुरभि वत् क्षमा भाव का सुदर सहज मिलाप।
सुकृत सुधा का सग्रह करते साम्य तुला में तोल ॥९॥

की काया को खखर खीचा सारभूत नवनीत।
चोथे आरे का दिखलाया दृश्य कल्पनातीत।
कण-कण में भर दिया प्रकृति ने रस साहस का घोल[४] ॥१०॥

अष्टादश शत नवति तीन की भाद्रव पूनम भव्य।
तेले के दिन पहुचे सहसा सुर शय्या में नव्य।
गाये गीत विजय के मगल बजे सुयश के ढोल[५] ॥११॥

आत्मार्थी ऐसे संतो को लाख-लाख शाबाश।
नीव गडी है गहरी गण की शिखा चढी आकाश।
युग-युग तक इतिहास पृष्ठ मे अंकित नाम अडोल ॥१२॥

दोहा

जय ने मुनि श्री के लिए, पद्य लिखे है गूढ़।
गुण सुमनो का चयन कर, सार लिया है ढूढ़[६] ॥१३॥

१. मुनि श्री हीरजी का मेवाड प्रदेश में चगेरी ग्राम था। उनके पिता का नाम नानजी और माता का नाम नाथाजी था। वे जाति से ओसवाल और गोत्र से रणधीरोत कोठारी थे। उनकी पत्नी का नाम कमलूजी था।[1]

२. मुनिश्री हीरजी तथा उनकी पत्नी कमलूजी (६४) ने पुत्र एवं परिवार को छोड़कर पूर्ण वैराग्य से दीक्षा ग्रहण की।

नार सहित व्रत आदर्‌यो हो, छांड पुत्र परिवार।
कमलू कमला सारिखी हो, सील गुणे सिणगार॥

(जयाचार्य रचित—हीर० गुण० ढा० १ गा० २१)

अन्य सभी कृतियो मे उक्त उल्लेख तो मिलता है पर दीक्षा वर्ष तथा किसके द्वारा दीक्षा हुई, इस विपय मे विभिन्न मतव्य हैं।

१. मुनि हीरजी के विषय में—

(क) समत अठारै चिमतरे, भारीमाल अणगार।
सन्मुख चरण समाचर्‌यो, भामण नें भरतार॥

(जीव मुनि रचित—हीर० गु० ढा० १ दो० ६)

(ख) हीरजी त्रिय सहित दीक्षा लीध्री स० १८७३।

(हीरजी की ख्यात)

(ग) प्रिय सग दीक्षा वर्प तिहोत्तरे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० ३२)

(घ) हीरजी त्रिया सहित सजम लियो, अठारै तेहत्तरे वड़ वैराग।

(शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १३५)

२. साध्वीश्री कमलूजी के विपय मे—

(क) कमलूजी हीरजी स्वामी नी अस्त्री ससार लेखे ते सजोड़े दीक्षा लीधी ....भिक्षु नी शिष्यणी वरजूजी त्या कनै कमलूजी दीक्षा लीधी स० १८७४।

(साध्वी कमलूजी की ख्यात)

(ख) चरण हीर त्रिय कमलू चिहंतर।

(शासन विलास ढा० ४ गा० ३०)

---

१. जनक नानजी जश धरु, बाई नाथां रो नद।
जात कोठारी जाणियै, रिणधीरोत अमद।
चंगेरी घर छोडियो, सजोड़े सुधरीत।
कमलू कमला सारखो, नार निभाई प्रीत॥

(जीव मुनि रचित हीर गुण० ढा० १ दो० ४,५)

(ग) भिक्षुनी शिष्यणी वरजूजी ते कनै कमलूजी दिख्या लीधी सं० १८७४ स्त्री भरतार साथे।

(शासन विलास ढा० ४ गा० ३० की वार्त्तिका)

(घ) कमलू हीर पति सह, सवत चोहत्तर दीक्षा लीधी जी।

(शासन प्रभाकर ढा० ५ गा० १२२)

इन सव उद्धरणो मे साध्वीश्री कमलूजी का दीक्षा सवत् १८७४ है और हीरजी के साथ दीक्षित होने का उल्लेख भी स्पष्ट है। इसलिए हीरजी की दीक्षा का वर्ष अलग नही हो सकता।

मुनि जीवराजजी (८६) रचित ढाल के अनुसार दोनो की दीक्षा का सवत् १८७४ है वह यथार्थ लगता है। आगे मुनि हीरजी के चातुर्मास एव तपस्या के वर्ष दिये गए है उनसे भी उनका सं० १८७४ मे दीक्षित होना प्रमाणित होता है। हीरजी का ख्यात, शासन विलास तथा शासन प्रभाकर मे दीक्षा वर्ष १८७३ लिखा है पर अन्य पुष्ट प्रमाणो से स० १८७४ ही सही लगता है।

कमलूजी को साध्वीश्री वरजूजी (३९) ने दीक्षा दी, इसका एक विकल्प यह हो सकता है कि भारीमालजी स्वामी ने दोनो को एक साथ दीक्षा दी और साध्वश्री वरजूजी ने कमलूजी का केश लुंचन किया।

दूसरा विकल्प यह भी हो सकता है कि आचार्यश्री भारीमालजी ने अपने सम्मुख साध्वी वरजूजी को दीक्षा देने की विशेष आज्ञा प्रदान की हो और उन्होने दीक्षा दी हो।

मुनि जीवराजजी रचित ढाल के उक्त दोहे का यही अर्थ है कि दोनो को भारीमाल ने एक साथ दीक्षा दी।

३. मुनिश्री बड़े सुविनयी और सेवाभावी सत थे। उन्होने भारीमालजी स्वामी की अन्तिम समय मे अच्छी सेवा की। जिसकी स्वय आचार्यश्री ने सराहना की—

भारीमाल गुर री भली भात, सेवा कर-कर पूरी मन खात।
स्वामीजी आप श्री मुख सरायो, हीरजी तपसी जस पायो रे॥
केलवै सहर अरु काकडोली, भारीमाल सेवा जस वोली रे॥

(हेमरचित हीर गुण वर्णन ढा० १ गा० ५, ६)

भारीमाल मुख सू कह्यो हो, हीर वडो सुवनीत।
पूज रायचद प्रससियो हो, रह्योज रूडी रीत॥

(जयाचार्य रचित हीर गुण वर्णन ढा० १ गा० १९)

हीरजी करी हरष सहीत, व्यावच विध-विध घणी जी।
रात दिन रह्यो रूडी रीत, भारीमाल कीरत भणीजी॥

(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ९)

मुनिश्री खेतसीजी की भी आखिरी समय मे वडी तन-मन से परिचर्या की।
सतजुगी री सेवा सहर पीपाड, मन वच काया सुद्ध धार रे ॥
(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० ६)

४. मुनिश्री के १८ चातुर्मास एवं चातुर्मासों में की गई वड़ी तपस्या का विवरण इस प्रकार है—

(१) सं० १८७५ कांकडोली मे आचार्यश्री भारीमालजी के साथ १६ दिन का तप किया।
(२) स० १८७६ आमेट मे ५८ दिन का तप किया।
(३) सं० १८७७ श्रीजीद्वारा में आचार्यश्री भारीमालजी के साथ आपाढ महीने सहित ८, ३१ और ८२ दिन का तप किया।
(४) सं० १८७८ केलवा मे आचार्यश्री भारीमालजी के साथ ३१ दिन का तप किया।
(५) सं० १८७९ पाली मे आचार्यश्री ऋपिराय के साथ ६७ दिन का तप किया।
(६) स० १८८० जयपुर मे आचार्यश्री ऋपिराय के साथ २४ दिन का तप किया।
(७) स० १८८१ वीलाडे मे ६१ दिन का तप किया।
(८) सं० १८८२ पादू मे आपाढ़ महीने सहित १३५ दिन का तप किया। इसी वर्ष ज्येष्ठ वदि मे आचार्यश्री ऋपिराय ने तीन साधुओ को एक साथ छहमासी पचखाई थी। उनमे मुनि पीथलजी (५६) वर्धमानजी (६७) तथा एक हीरजी थे। इसका विस्तृत वर्णन मुनि पीथलजी (५६) के प्रकरण मे दे दिया गया है।
(९) सं० १८८३ राजनगर मे छहमासी (१८६ दिन आछ आगार से) की। आचार्यश्री रायचदजी ने उदयपुर चातुर्मास के पश्चात् राजनगर पधार कर उनको पारणा कराया—

छमासी तप राजनगर मे ठायो, रायचंद ब्रह्मचारी पारणो करायो रे।
(हेम रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० २)

(१०) सं० १८८४ कनोड़ मे चोमासी तप किया। सभवत. आपाढ महीने सहित।
(११) सं० १८८५ गोगुदा मे १८६ दिन का तप किया।
(१२) सं० १८८६ उदयपुर मे ११ दिन का तप किया।
(१३) सं० १८८७ कानोड़ में १२६ दिन का तप किया।

(१४) सं० १८८८ बीदासर मे ६२ दिन का तप किया।
(१५) स० १८८९ आमेट मे ५१ दिन का तप किया।
(१६) स० १८९० उदयपुर मे ११ दिन तथा पचोले आदि बहुत तप किया।
(१७) स० १८९१ पुर मे अढाईमासी तथा ५, ८, १२ दिन का तप किया।
(१८) स० १८९२ जयपुर मे १८ दिन तथा पचोले, चोले, तेले आदि बहुत किये।

इनमे कितनी तपस्या आछ के आगार से तथा कितनी पानी के आगार से की गई है। शेषकाल मे भी उन्होने बहुत तपस्या की।

उपर्युक्त तप का विवरण जयाचार्य रचित हीर मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा०१ से १६, शासन विलास ढा० ३ गा० ३२ की वार्तिका तथा ख्यात मे है। ख्यात मे ५ तथा १२ दिन के थोकडे का एव शासन विलास मे पचोले का उल्लेख नही है।

कुल तप के आंकडे इस प्रकार है

उपवास के पचोले तक बहुत बार किए।

८	११	१२	१६	१८	२४	३१	५१	५८	६१	६२	६७	७५	८२
२	२	१	१	१	१	२	१	१	१	१	१	१	१

१२०	१२६	१३५	१८६
१	१	१	२

उपर्युक्त चातुर्मासो के गावो की तालिका मुनिश्री जीवराजजी (८६) रचित हीर मुनि गुण वर्णन ढाल १ मे है।

मुनिश्री हीरजी ने उक्त चातुर्मासो मे कई चातुर्मास मुनिश्री मोजीरामजी (५४) के साथ किये थे

केतला एक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा, त्या पिण बहुत जस लीधा रे।
धणी बायां भाया नै ज्ञान सीखायो, च्यारु तीर्थ मे जस पायो रे।।
(हेम मुनि रचित ढा० १ गा० ७)

मुनिश्री स० १८७६, १८८१ और १८८४ से १८९२ तक किसके साथ रहे, इसका उल्लेख नही मिलता परन्तु उक्त —'केतला एक चउमासा मोजीरामजी कनै कीधा' पद्यानुसार हो सकता है कि वे स० १८८४ से १८९२ तक मुनि मोजीराम जी के साथ रहे हो।

५. स० १८९३ मे मुनिश्री का अन्तिम चातुर्मास ऋषिराय के साथ पाली मे था।

पाली सहर चौमासो कियो पूज साथो, रुडी सेवा करै दिन रातो रे।
सवत् अठारै तराणुओ वरसो, जाजो हीर रो जसो रे।।
(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० १०)

इस वर्ष सभवतः खेरवा मे साधुओ का चातुर्मास था। चातुर्मास मे कारण

वश मुनिश्री हीरजी पाली से खेरवा गये। वहां शारीरिक वेदना होने से उन्होने तेला किया और तेले मे अकस्मात् दिवगत हो गये :

कारण पडिया सैहर खैरवे आया, शरीर कारण जाणी तेलो ठाया रे।
तेला मे तपसी परभव पोहतो, देव हुओ होसी गहगहतो॥
(हेम मुनि रचित गुण वर्णन ढा० १ गा० ११)

उनकी स्वर्ग तिथि भादवा सुदि १५ वार शनिवार है।

सवत् अठारै त्राणुए हो, भाद्रवी पूनम भाल।
पोहतो मुनि परलोक मे हो, हीर ऋपि गुणमाल कै॥
(जयाचार्य विरचित ढा० १ गा० २६)

वर्स तराणुओ नें सवत् अठारो, भाद्रवा सुध पूनम शनेसर वारो रे।
(हेम मुनि रचित ढा० १ गा० १३)

त्रिय संग दिक्षा वर्ष तिहोत्तरे, षट्मासी वे न्हालो रे।
त्राणुअे तेला मे परभव, हीर ऋषी गुणमालो रे॥
(शासन विलाश ढा० ३ गा० ३२)

मुनि जीवराजजी कृत ढा० १ गा० १५ में उनके स्वर्ग एव स्थान के विषय मे लिखा है :

'अग असाता ऊपनी रे, भाद्रवी पूनम भाल।
तेला मे चलता रह्या, खैरवे सैहर सुगाल (सुकाल)॥'

६. जयाचार्य ने मुनिश्री के सवध मे वड़े मार्मिक पद्य लिखे है .

हीर अमोलक षटमासी दोय वार के, भारीमाल प्रसंसियो जी।
च्यार मास वली तप कीधो विचित्र प्रकार के, जाप जपो भवियण सदा जी॥
(संत गुण माला ढा० ४ गा० ३१)

वे वार छःमासी तप करी, इक दोय तीन च्यार मास रे।
सुवनीतां सिर सेहरो, दियो भारीमाल सावास रे॥
वलभ वाणी ताहरी, वारू वचन नां सूर रे।
ऊडी तुज आलोचना, गुण भरियो भरपूर रे॥
मुनि-वछ.ल जन-वाल हो, धर्मोद्यम चित धार रे।
महेन्द्रपति कल्प साधियो[1], मुझ नै महा हितकार रे॥
(जयाचार्य रचित-हीरमुनि गुण वर्णन ढा० २ गा० २ से ४)

मुनि हीरजी को महा तपस्वी मुनि कोदरजी का मित्र कहा है :

वड तपसी कोदर तणो हो, मित्र हीर हद पार।
दोनू ऋष गुण आगला, कहिता न लहै पार॥
(जय रचित-हीर मुनि गुण० ढा० १ गा० २४)

---

१. इस पद्य से लगता है कि मुनिश्री चोथे देवलोक मे उत्पन्न हुए।

उनसे संवन्धित विवरण निम्न स्थलों मे है :

१. जयाचार्य विरचित ढा० २ संत गुण वर्णन में।

२. मुनिश्री हेमराजजी विरचित ढा० १ प्राचीन गीतिका संग्रह में।

३. ,, जीवराजजी ,, ढा० १ ,, ,, ,, ।

४. शासन विलास ढा० ३ गा० ३२, वार्त्तिका।

५. ख्यात।

६. शासन प्रभाकर—भारी सत वर्णन गा० १३५ से १४१।

७७।२।२८ मुनि श्री मोतीजी 'वड़ा' (सींवास)

(सयम पर्याय सं० १८७४-१६२६)

लय—कैसी चंपापुर मांहि लागी रंगरली···

कैसी मोती की जगमगती ज्योति निखरी साकार।
निखरी साकार मूल्य वढ़ा है अपार।कैसी···॥ध्रुव॥
गगन में वादलों का तना नव छत्र।
शरद् ऋतु साथ मिला स्वाति वर नक्षत्र।
गिरी शुक्ति मुख में वूंद मोती वना है उदार॥१॥
शासन है सिन्धु शासनेश - सीप रूप।
शिष्य जल विन्दु योग मिला अनुरूप।
पाया मुक्ता छवि स्वच्छ लाया जागृत संस्कार॥२॥

छप्पय

मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान।
जले अमित उत्साह से मंगल दीप महान्।
मंगल दीप महान् ध्यान तो एक लगाया।
दृढ़ निष्ठा संकल्प लक्ष्य तो एक वनाया।
सिद्ध हुई विद्या सभी मिले वड़े वरदान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥३॥
वासी थे सीवास के मरुधरणी के लाल।
जनक मेघ कुल-गोत्र से सालेचा सुविशाल।
सालेचा सुविशाल मूलतः स्थानकवासी।
नहीं धर्म का वोध पौध तो विल्कुल प्यासी।
थी दक्षिण की तरफ में चाचा की दूकान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान॥४॥

पहुंचा चाचा पास में मोती वय से वाल।
धंधा कुछ कुछ सीखता मस्ती में खुशहाल।
मस्ती में खुशहाल एक दिन बैंगन लाया।
मिला सुशिक्षक एक वोध उसको दे पाया।
बैंगन खाने का किया तब तो प्रत्याख्यान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ।।५।।
काके की तकरार सुन भर साहस सविचार।
सव सब्जी का कर दिया आजीवन परिहार।
आजीवन परिहार सदा सामायिक करता।
कमी काम मे देख द्वेष दिल काका धरता।
वचनो की वोछार से करता है व्यवधान।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ।।६।।
मोती ने चितन किया बाधक ये हरवार।
अच्छा इससे तो मुझे लेना सयम भार।
लेना सयम भार घोषणा कर दी जन मे।
करते लोग मनाह किंतु मोती के मन मे।
रग चढ़ा वैराग्य का स्थिर है ज्यो चट्टान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ।।७।।
मरुधर जन कुछ दे रहे उनको सही सुझाव।
दीक्षा तेरापथ में लो यदि दृढ़तम भाव।
लो यदि दृढ़तम भाव साधु वे शुद्धाचारी।
भवजल तरणी नाव साधना उनकी भारी।
समझाने से विविधतर समझे चतुर सुजान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ।।८।।
जाते जीमनवार में होकर अश्वारूढ।
किसी व्यक्ति ने व्यग मे वचन कहा है गूढ।
वचन कहा है गूढ अरे ! यह दीक्षा लेता।
हय पर हुआ सवार घूमता जैसे नेता।
उतरा नीचे झट तभी छोड़े वाहन यान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ।।९।।
पैरों में जूते इधर रखता यह सुकुमाल।
इधर चरण की बात भी मुख से रहा निकाल।

मुख से रहा निकाल निशा में खाना खाता।
नहीं पाप से भीत गीत संयम के गाता।
सुन दोनों का कर दिया तत्क्षण त्याग महान्।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ॥१०॥
दिन दिन वढ़ती भावना निश्चल एक विचार।
काके ने थककर विदा दी है आखिरकार।
दी है आखिरकार किया मुख पितृ-दिशा में।
चलता नंगे पैर अशन जल नही निशा में।
वय से सौलह साल का पर तन मन वलवान।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ॥११॥
कोश तीन सौ की सफर कर मोती मुविशाल।
पहुंचा पाली शहर मे भेंटे भारीमाल।
भेंटे भारीमाल प्रथम सतों के दर्शन।
चरण मुझे दे नाथ! किया है नम्र निवेदन।
सुनकर कथा विचित्र सव दिया सुगुरु ने ध्यान।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ॥१२॥
एक रात्रि रहकर वहा पहुचा अपने ग्राम।
भेजा गुरु ने हेम को चितन कर अभिराम।
चिंतन कर अभिराम श्रमण चलकर के आये।
मोती के घर एक वेदिका पर ठहराये।
समभावों से हेम ने सहे कटुक वच-वाण।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ॥१३॥
एक महीना तक रहे शांति-मूर्त्ति मुनि हेम।
तत्त्वज्ञान सिखला दिया मोती को सक्षेम।
मोतो को सक्षेम किया मजवूत अधिकतर।
पर सव स्वजन खिलाफ वाप की प्रकृति विपमतर।
दीक्षा स्वीकृति के लिए मचा रहे तूफान।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान ॥१४॥
गांव खिवाड़ा आ गये मुनि श्री दे प्रतिवोध।
मोती आता प्रायशः सेवा में धर मोद।
सेवा मे धर मोद लाभ तो लेता अच्छा।
कव पाऊं चारित्र मित्र जो मेरा सच्चा।

मिला एक सज्जन वहां करता शिक्षा-दान ।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥१५॥

गेय-छन्द

राम स्नेही 'कूपाराम' मोती को कहता निष्काम ।
मुनि बनने को तू तैयार, फिर क्यों सजता है शृंगार ॥१६॥
बढ़िया पगड़ी मस्तक पर, तन पर भूषण पट मनहर ।
पहन मूगियों की माला, लगता वर सम छवि वाला ॥१७॥
कोमल वय यह कुसुमोपम, जैन साधना पथ दुर्गम ।
कैसे दे अनुमति घर के, स्नेह भाव को तजकर के ॥१८॥
करो एक तुम पहले काम, जो पाना है संयम धाम ।
दूर करो पगडी को अब, वस्त्राभरण उतारो सब ॥१९॥
साधु रूप कर खावो मांग, स्वीकृति देगे देख विराग ।
वरना मुश्किल सम्मति दान, ज्ञातिजनों का मोह महान् ॥२०॥
धारा मोती ने मुनि वेष, मांग-मांग खा रहा हमेश ।
किंतु जनक का कठिन स्वभाव, जिससे दिन-दिन अधिक तनाव ॥२१॥
देख मांगते नंदन को, द्वेष हुआ पैत्रिक जन को ।
जकड़ पकड़ लाये घर पर, डाला बेडी में द्रुततर ॥२२॥
एक मास बेड़ी मे बंद, पर मोती के भाव न मद ।
देख रहा वह तो अवसर, कब इससे निकलू बाहर ॥२३॥

रामायण-छन्द

मंडा तमाशा वहा एक दिन घर के गये देखने सब ।
अवसर पाकर मोती ने पत्थर से बेड़ी तोड़ी तब ।
निकला बाहर मांग-मांग कर साधु वेष में खाता है ।
पुनरपि जकड पकड कर लाये पर वह नही अघाता है ॥२४॥
पटक पछाड़ा चबूतरे से पथ में खूब घसीटा है ।
मानों मलयज को सांपो ने कर फूकारे बीटा है ।
मोती ने सोचा तब मन में ऐसे तो न फलेगा आम ।
घर की रोटी खाऊ प्रतिदिन नही करूं कर से कुछ काम ॥२५॥
वही मार्ग अपनाया उसने रोटी खाता है भर पेट ।
नहीं लगाता हाथ काम के बैठा रहता बन ज्यों सेठ ।

भरता नहीं सलिल का लोटा बच्चों का भी तनिक न ध्यान।
नहीं रोकता पशुओं को भी चाहे हो कितना नुकसान ॥२६॥
कहा तात ने कुछ भी कर तू बारह वर्ष न आज्ञा-दान।
खैर! पिताजी मैं पीछे ही कर लूंगा संयम रस पान।
पर न रहूंगा घर में हरगिज मेरा दृढ़तम है संकल्प।
बीता डेढ साल बातों में फिर भी फलित न निकला अल्प ॥२७॥
मोती ने फिर सोचा-अनुमति मां भी दे तो लूं संयम।
वरना इसी तरह ही रहना करना कार्य न अटल नियम।
समयान्तर से आशा टूटी तब कागद आज्ञा का लिख।
दिया बाप ने मोती कर में हर्ष हुआ उसको सात्त्विक ॥२८॥
सोते समय रात्रि में मां ने गुपचुप उसे निकाला है।
प्रातः पत्र न देखा तब तो मुरझित मुक्ता माला है।
नही मांगने पर मां देती तब चिंतन कर हित कारक।
गोगुंदा जाकर की सेवा हेम श्रमण की कुछ दिन तक ॥२९॥

दोहा

वापस घर पर आ गया, रखता भावोत्कर्ष।
रहता पहले की तरह, निकल गया फिर वर्ष ॥३०॥
एक दिवस आक्रोश में, लिखकर आज्ञा पत्र।
दिया तात ने नंद को, मिटा द्वंद्व उभयत्र ॥३१॥

छप्पय

मोती निकला गेह से ऋषि जवान के पास।
भिक्षुनगर जाकर त्वरित ली दीक्षा सोल्लास।
ली दीक्षा सोल्लास चहोत्तर संवत् गाया।
धृति बल से कैलाश शिखर पर वह चढ़ पाया।
वर्ष अढ़ाई से फला भाग्योदय-उद्यान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥३२॥

दोहा

दीक्षा स्वीकृति के लिए, सहे अनेकों कष्ट।
है गण के इतिहास में, उदाहरण उत्कृष्ट ॥३३॥

वज्रोपम सीना किया, वय से चाहे वाल।
सार्थ हुआ पुरुषार्थ सव, मिली विजय-वरमाल[1] ।।३४।।

छप्पय

विनयी सरल स्वभाव से पाप भीरु अणगार।
मुनिचर्या में सजगता रखते थे हरवार।
रखते थे हरवार प्रकृति कुछ सशय वाली।
मिला 'जीत' का योग रोग की टूटी डाली।
सूत्र-रहस्यो का वडा करवाया है ज्ञान[2]।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान।।३५।।
चर्चाएं धारी विविध कर-कर विनय विशेष।
वहुश्रुती मुनि वन गये रख गुरु को अग्रेश।
रख गुरु को अग्रेश विवेकी गुणी वनाये।
मिला 'शांति' सहवास योग्यता तरु लहराये[3]।
जयाचार्य ने अग्रणी पद तो दिया प्रधान।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान।।३६।।
काम वोझ वक्शीश कर दिया उन्हे वहुमान।
'वेटी का सा खर्च है' कहते जय साह्वान[4]।
कहते जय साह्वान स्थान तो दिया हृदय में।
विचरे मुनि वहु वर्प लिया यश जन-समुदय में।
मिल पाये कुछ खोज से चातुर्मासिक स्थान[5]।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान।।३७।।
उपवासादिक तप वहुत ऊपर सैंतालीस।
इन्द्रिय-निग्रह विरति का तिलक लगाया शीश।
तिलक लगाया शीश शीत मे सर्दी सहते।
गर्मी मे सह ताप पाप दल हरते रहते।
लिए आत्म-उत्थान के खोले वहु अभियान[6]।
मोती के पुरुपार्थ से फले सभी अरमान।।३८।।
पावस पचपदरा किया पंच श्रमण सहकार।
शक्ति चरम वय मे घटी जिससे रुका विहार।
जिससे रुका विहार त्रिवेणी मुनि की आई।
कर-कर सेवा भक्ति शान्ति उनको पहुचाई।

अनशन आया अंत में पांच प्रहर अनुमान।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥३९॥
शतोन्नीस उन्नीस की मृगसर शुक्ला दूज।
कार्य सिद्ध करके चले फैली सद्गुण गूज।
फैली सद्गुण गूज हयन पचपन का लम्बा।
संयम जीवनकाल कीर्त्ति का रोपा खंभा।
पंचढ़ालिया देखिए 'जय' विरचित व्याख्यान[१]।
मोती के पुरुषार्थ से फले सभी अरमान ॥४०॥

१. मुनिश्री मोतीजी का निवास स्थान मारवाड प्रदेश मे सीवास (सीहावास) नामक ग्राम में था। उनकी जाति ओसवाल (वडा साजन) गोत्र सालेचा बोहरा एवं पिता का नाम मेघराजजी था। वे स्थानकवासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे।[1]

दक्षिण प्रदेश मे मोतीजी के चाचा की दुकान थी। मोतीजी बाल्यावस्था मे वाणिज्य कार्य सीखने के लिए उनके पास रहने लगे। क्रमशः कुछ समय व्यतीत हुआ। एक दिन मोतीजी बाजार से बैंगन लेकर आ रहे थे। रास्ते मे एक स्थानकवासी श्रावक अपनी दुकान पर बैठा था। उसने मोतीजी को पास में बुलाकर कहा—'हरियाली मे बैंगन बहुत बीज वाले होने के कारण श्रावक के लिए वर्जनीय होते है अतः तुम्हे छोड देना चाहिए।' मोतीजी ने सोच-समझकर आजीवन बैंगन खाने का तथा कुछ अन्य सब्जी का भी परित्याग कर दिया। घर आने पर उनके चाचा को पता चला तो उन्होने मोतीजी को डाट लगाते हुए कहा—'तुमने बैंगन खाने का त्याग क्यो किया, तुम्हारे से यह नियम कैसे निभ सकेगा?' मोतीजी ने सोचा—'जब ये इस प्रकार झगड़ा करते है तो मुझे दृढ़ता का परिचय देना चाहिए।' उन्होने तत्क्षण यावज्जीवन समग्र हरियाली खाने का प्रत्याख्यान कर दिया।[2]

शनैः शनैः मोतीजी के मन मे धर्म भावना जागृत होने लगी। वे उक्त स्थानकवासी श्रावक के पास सामायिक करने लगे। मोतीजी को सामायिक लेने की विधि नही आती थी अत. वह श्रावक ही सामायिक दिलाता था। इस प्रकार प्रतिदिन सामायिक के लिए जाते हुए देखकर चाचा का रोष उमड़ने लगा और एक दिन बोला—'अरे मोती! तू दुकान का काम तो नही करता है और वहां जाकर मुह बांधकर बैठ जाता है।' इस प्रकार चाचा बार-बार रोकथाम करता और मोतीजी के प्रति मन मे द्वेष भावना रखने लगा। तब मोतीजी ने गहराई से चिंतन किया कि जब ये निरंतर धर्म-ध्यान मे बाधक बनते है तो अब मुझे संयम ही ग्रहण कर

---

१. वासी 'सीवा' ग्राम नो, मेघ सुतन सुविधान।
वड़ मोती महिमानिलो, उत्तम जीव सुजान॥
सालेचा बोहरा भली, जाति तास अवधार।
ओसवंश मे अवतर्‌यो, बड़े साजन सुविचार॥
धर्म मांहि समझै नही, संत न सेव्या कोय।
भेषधार्‌यां रा जोग सू, तसु गुरु कीधा सोय॥
(मोतीचंद पचढालियो ढा० १ दो० १ से ३)

२. तब मोती मन माहि विचार्‌यो, झगड़ो कीधो काकै।
जावजीव नीलोती सहु ना, कीधा त्याग झडाकै रे॥
(मोती० पचढ़ालियो ढा० १ गा० ६)

लेना चाहिए।[1] दृढ निर्णय कर मोतीजी ने अपने दीक्षा के विचार लोगो मे प्रकट कर दिये। यह सुनकर अनेक व्यक्ति उन्हें डिगाने का प्रयास करने लगे पर वे किंचित् मात्र भी विचलित नही हुए। वहा कुछ मारवाड़ी तेरापथी भाई भी रहते थे। उन्होने मोतीजी से कहा—'यदि तुम दीक्षा लेना चाहते हो तो तेरापथ मे लो, क्योकि जितना तेरापथी साधु दृढता से आचार-विचार का सम्यक् पालन करते है उतना अन्य सम्प्रदाय के नही करते।' मोतीजी के एक बार तो यह बात नही जची, लेकिन विविध प्रकार से उन्हे समझाया गया तो वे तेरापथ मे ही दीक्षित होने के लिए दृढ सकल्प हो गये। मोतीजी बड़े हलुकर्मी जीव थे जिससे उन्हे आगे से आगे अच्छा सुयोग प्राप्त होने लगा।

एक बार वहा किसी के यहा जीमनवार था। आमत्रित करने पर मोतीजी भी घोडे पर चढकर उसके घर जाने के लिए रवाना हुए। राह मे किसी व्यक्ति ने व्यग कसते हुए कहा—'देखो! यह दीक्षा लेने के लिए तो तैयार हुआ है और घोडे पर चढा हुआ घूमता है।' यह सुनकर मोतीजी को तीर-सा लग गया और तत्काल हय से नीचे उतर कर जीवन पर्यंत किसी भी सवारी पर चढ़ने का त्याग कर दिया।[2] मोतीजी पैदल चलते हुए कुछ आगे बढे तो फिर एक भाई बोला—'यह परदेशी साधुत्व लेने के लिए उत्सुक हुआ है और अभी तक पैरो मे जूते पहनता है।' कानो मे शब्द पडते ही मोतीजी ने जूते खोले और हमेशा के लिए जूते पहनने का परिहार कर दिया।[3] भोज-स्थान पर पहुचते-पहुचते सूर्यास्त हो

---

१ तव मोती चिंतै ए देवै, धर्म तणी अतरायो।
तो हिवै मुझ नै सजम लेणो, नहि रहिणो घर माह्यो रे॥
(मोती० पचढालियो ढा० १ गा० १०)

२ अश्व जाति ऊपर बैसी नै, मोती पिण तिण वारो।
जीमणवार विषै जीमण नै, जावै छै जिहवारो॥
किण ही लोक कह्यु तिण अवसर, ए जावै इहवारी।
दिख्या लेवा त्यार थयो छै, वलि हय नी असवारी॥
ए वचन मोती साभल नै, हय थी तुरत उतरियो।
जावजीव सहु असवारी ना, त्याग किया गुणदरियो।
(मोती० पच० ढा० १ गा० १७ से १९)

३. किणहिक जन वलि इह विध आख्यू, ए चारित्र लियै विदेशी।
पिण पग माहि पांनही पहिरै, ए स्यू चारित्र लेसी रे॥
इम सुण मोती जेह पानही, पग थी तुरत उतारी।
जावजीव पगरखी पैहरण, त्याग किया तिहवारी रे॥
(मोती० पं० ढा० १ गा० २०, २१)

गया और रात पड गई। मोतीजी जन-समूह की पक्ति मे बैठकर भोजन करने लगे। अकस्मात् एक व्यक्ति की दृष्टि उन पर पड़ी और बोला—'मोती! इधर तो तू साधु बनने जा रहा है और इधर निशा मे खाने का भी सकोच नही करता।' मोतीजी ने तपाक से परोसे हुए भोजन को छोडा और आजीवन रात्रि मे चारों प्रकार का आहार करने का प्रत्याख्यान कर दिया।[1]

चाचा ने मोतीजी को विचलित करने के लिए अनेक उपाय किये पर वे सफल नही हुए। आखिर थक कर उन्होने कहा—'तुम अपने देश माता-पिता एव भाई के पास चले जाओ। मै तो तुमसे पूरा परेशान हो गया हू।[2]

मोतीजी ने सानद वहां से विदा ली और आगे की मजिल तय करने लगे। सोलह वर्ष की बालक वय, पैदल नगे पैर चलना, रात्रि मे कुछ खाना-पीना नही, फिर भी उनके दिल मे किसी भी प्रकार की दुर्बलता व खिन्नता नही थी। वे क्रमश· लगभग तीन सौ कोश चलकर पाली पहुचे और वहा विराजित तेरापथ के द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी आदि साधुओ के दर्शन किये। अपना पूर्व वृत्तान्त सुनाते हुए अपनी दीक्षा लेने की प्रबल इच्छा को अभिव्यक्त किया। घटना सुनकर आचार्यप्रवर आदि सभी सतों को आश्चर्य हुआ और उनके साहस की सराहना की। वे वहां एक रात्रि प्रवास कर सुबह रवाना हुए और अपने गाव मे आकर माता-पिता भाई, बुआ आदि पारिवारिक जनो से मिले एव सारी हकीकत कह सुनाई।[3]

---

१. जीमणवार मे निश भोजन करता, कोयक जन भाखैं।
चरण लेण नै त्यार थयो ए, वलि निश भोजन चाखैं॥
ए लोक नो वचन सुणी नैं, मोती तुरत उमगैं।
निश मे च्यारु आहार भोगवण रा, त्याग किया चित चगैं।
(मोती० पच० ढा० १ गा० २२, २३)

२. काको थाको कहै मोती नै, थे निज देशे जावो।
तुज मात पिता बधव रै आगे, पिण मोनै क्यू सतावो रे॥
(मोती० पच० ढा० १ गा० २५)

३. तब मोती दक्षिण थकी चालियो, पग अलवाणैं ताह्यो।
चौविहार वलि रात्रि विषै पिण, मन मे नही तमाह्यो रे॥
(मोती० पचढालियो ढा० १ गा० २६)

आसरैं कोस तीन सौ इह विध, आयो पाली माह्यो।
तिहा भारीमालजी आदि सता रा, दर्शण मोती पायो रे॥
सोलह वर्स आसरैं वय तसु, दिल मे अति वैरागो।
कहै हू दिख्या लेसू स्वामी, घर रहिवा मन भागो रे॥
(मोती पचढालियो ढा० १ गा० २७, २८)

इम कही निशे रही तिहां थी चाल्यो, 'सीहा' ग्रामे आवै।
मात पिता बधव भूआ नैं, समाचार सभलावैं रे॥
(मोती० पचढालियो ढा० १ गा० २९)

भारीमालजी स्वामी ने समुचित अवसर देखकर मुनि हेमराजजी, जीतमलजी आदि साधुओं को मोतीजी को दीक्षित करने के लिए 'सीवास' भेजा। मुनि श्री गुरु-आदेश को शिरोधार्य कर वहां पहुंचे और आज्ञा लेकर मोतीजी के घर पर ही एक चबूतरे पर ठहरे। साधुओं को देखकर मोतीजी की बुआ उत्तेजित होकर अनर्गल वचन बोलने लगी। मुनिश्री ने पूर्ण खामोशी रखी। कुछ दिन वहां ठहर कर मोतीजी को तात्त्विक ज्ञान सिखाया और साधुओं के आचार-विचार की गतिविधि बतलायी। मोतीजी पूर्ण रूप से परिपक्व हो गये। उन्होंने घर वालों से दीक्षा की अनुमति मांगी तब वे बिल्कुल इन्कार हो गये। उस समय जब दीक्षा होने की संभावना नहीं रही तब मुनिश्री वहां से विहार कर एक कोश की दूरी पर खीवाडा ग्राम में आ गये।[1] मोतीजी के दिल मे ऐसा मजीठी रग चढा था कि जो कभी उतरने वाला नही था। वे प्रतिदिन मुनिश्री के दर्शनार्थ खीवाडा जाते और सेवा, व्याख्यान-श्रवण, अध्ययन आदि का लाभ लेते।

खीवाड़ा मे रामसनेही—मतानुयायी कृपारामजी नाम के राजमान्य व्यक्ति रहते थे। उन्होने मोतीजी की दीक्षा विषयक बात को सुनकर एक दिन उनसे कहा—'मोती! इधर तो तू दीक्षा के लिए उद्यत हुआ है और इधर सिर पर बढ़िया पगड़ी, शरीर पर अच्छे कपडे और गले मे मूगियो की माला पहनकर वर-राजा की तरह सजधज कर रहता है। तब घर वाले दीक्षा की स्वीकृति कैसे दे सकते है? यदि तुम्हे दीक्षा ही लेनी है तो कुछ दिन साधु का वेष पहनकर मांग-मांगकर खाओ जिससे वे सुगमतया अनुमति प्रदान कर देंगे।

मोतीजी को उनकी बात जच गयी और उन्होने गहने-कपड़े उतारकर साधु का वेष पहना और माग-मागकर खाने लगे। ऐसा करने पर भी घर वालो ने

---

१. भारीमालजी तिण समय, वारु करी विचार।
दिख्या देवा म्हेलिया, हेम भणी तिणवार।
हेम जीत मुनि आदि दै, आया 'सीवा' ग्राम।
मोती रै घर चोतरो, तिहां उत्तरिया ताम॥
(मोती० पच० ढा० २ दो० १, २)

तब भूआ आवी करी, अगल डगल बहु वाय।
उतावली बोली घणी, पिण हेम तणै न तमाय॥
(मोती० पंच० ढा० २ दो० ३)

मोती नैं सीखावियो, जाणपणो बहु ताय।
पछै 'खीमारै' आविया, हेम महामुनिराय॥
(मोती० पंच० ढा० २ दो० ४)

दीक्षा की आज्ञा नही दी। उनके पिता की प्रकृति अच्छी नही थी और वे समझाने से समझने वाले भी नही थे।

दीक्षा होने के कोई आसार नजर नही आये तब मुनिश्री हेमराजजी खीवाड़ा से विहार कर गये। मोतीजी पीछे से मांग-मागकर खाते रहे तथा अपने दृढ़-संकल्प पर डटकर दीक्षा-स्वीकृति के लिए प्रयत्न करने लगे।

मोतीजी को इस तरह मांगते हुए देखा तो घर वाले कुपित हो गये। एक दिन जवरन पकड़कर मोतीजी को घर ले आये और उनके पैरों मे वेड़ी डाल दी। उनका चलना-फिरना विल्कुल वन्द हो गया। एक महीने तक वे वेड़ी से वंधे रहे पर उनकी भावना ज्यों-की-त्यो वनी रही। वे धैर्यतापूर्वक समय की प्रतीक्षा करने लगे।[1]

एक दिन उस गांव मे वाजीगर आये और नाना प्रकार के खेल दिखाने लगे। अनेक लोग देखने के लिए एकत्रित हो गये। मोतीजी के घर वाले भो वहा पहुंच गये। पीछे से अवसर पाकर मोतीजी ने एक वड़े पत्थर से वेड़ी को तोड़ डाला। शीघ्रातिशीघ्र घर से वाहर निकलकर पहले की तरह साधु-वेष मे माग-मागकर खाने लगे। वापस आने पर घर वालो को पता लगा तो वे पुनः मोतीजी को पकडने की चेष्टा करने लगे। वहुत दिनो के वाद पिता आदि उन्हे फिर पकड़-कर ले आये और विविध प्रकार की यातनाए देने लगे। एक दिन ऊचे चवूतरे से गिराया और जमीन पर घसीटा। फिर भी मोतीजी मेरु की तरह अडोल रहकर हंसते-हसते कष्टों को झेलते रहे। उनके मन मे किसी प्रकार का उच्चा-वच भाव नही आया। फिर उन्होने गहराई से चिंतन किया कि इस प्रकार माग-मागकर खाने से परिवार वाले मुझे आज्ञा दे देंगे इसकी मुझे सभावना नही लगती। अव तो मुझे ऐसा करना चाहिए कि घर की रोटी खाना और घर का काम किंचित् मात्र भी नही करना, जिससे परेशान होकर पिताजी आदि आज्ञा प्रदान कर देंगे।

तत्पश्चात् मोतीजी ने ऐसा ही किया। वें खाना तो घर का खाते और घर का काम विल्कुल नही करते। केवल घर मे यम की तरह जमे हुए वैठे रहते। न पानी का लोटा भरना, न वालको को खिलाना, न घर मे घुसे हुए अन्य पशुओं

---

१. मोती खावै माग नै, तव कोप्या घर का ताहि।
पकडी नै आण्या तदा, घाल्यो वेडी माहि॥
एक मास रै आसरै, रह्योज वेडी वध।
पिण चढता परिणाम अति, मोती तणां सुसंध॥

(मोती० पंच० ढा० ३ दो० १, २)

को बाहर निकालना और न किसी प्रकार का नुकसान हो तो कहना।'

घर वाले सारी स्थिति देखते रहे और मन-ही-मन आक्रोश करते रहे। एक दिन पिता ने मोतीजी से कहा—'मैं तुम्हें बारह वर्ष तक तो आज्ञा दूंगा नही।' मोतीजी बोले—'खैर! तेरहवे वर्ष में ही आप मुझे आज्ञा देंगे तब ही चारित्र स्वीकार करूगा पर घर मे तो हरगिज नही रहूगा।' फिर लगभग ऐसी ही गतिविधि मे डेढ साल और बीत चुका पर मोतीजी के विचार तो लोह-लकीर समान सुदृढ़ रहे।

एक दिन फिर मोतीजी ने सोचा यदि माता भी आज्ञा दे तो मुझे संयम ले लेना है और माता-पिता दोनों ही जीवन-पर्यंत आज्ञा न दें तो मुझे निरन्तर इसी प्रकार रहना (घर की रोटी खाना और काम न करना) है।

फिर कुछ दिन और व्यतीत हो गये। पिता ने जब मोतीजी की वही स्थिति देखी तब उनकी आशा टूट गयी और उन्होंने आज्ञा का कागद लिखकर मोतीजी के हाथ मे दे दिया। मोतीजी प्रसन्न हुए और दूसरे दिन दीक्षा लेने के लिए मुनियो के पास जाने का सोचा। पर 'श्रेयासि बहु विघ्नानि' उक्ति के अनुसार जब वे रात्रि मे शयन कर रहे थे तब उनकी माता ने प्रच्छन्न रूप से उस पत्र को निकाल लिया। सुबह होते ही कागद नही देखा तो मोतीजी चिन्तातुर हुए। उन्होने माता से कागद मागा तो वह देने के लिए इन्कार हो गयी।

मोतीजी ने सोचा—लगता है कि अब तक मेरे चारित्र-मोहनीय कर्म का पूरा क्षयोपशम नही हो पाया है किन्तु मुझे हताश न होकर प्रयत्न करते रहना चाहिए। उन्होने उस समय मुनिश्री हेमराजजी के दर्शन करने का निश्चय किया। उनका उस वर्ष चातुर्मास गोगुदा (मेवाड) था। वे पैदल चलकर वहा पहुचे और मुनिश्री आदि साधुओ के दर्शन कर अत्यधिक हर्ष-विभोर हुए। सारी घटना मुनिश्री के सम्मुख प्रस्तुत की और कुछ दिन सेवा मे रहे।

---

१. घर की रोटी खावू सदा, न करू काम लिगार।
इम जो जनक कायो हुवै, तो आज्ञा देवै सार॥
एहवी करै विचारणा, रोटी घर की खाय।
किंचित काम करै नही, बैठो जम ज्यू ताय॥
लोटी जल की भरै नही, घरकां अर्थे ताम।
वलि बालक राखै नही, इत्यादिक बहु काम॥
घर मे ढ़ाढा आवता, बाहिर काढै नाहि।
उजाड़ देखै घर तणो, ते पिण न कहै ताहि॥
(मोती० पच० ढा० ३ गा० ६ से ९)

मुनिश्री हेमराजजी ने उस चातुर्मास मे एक नियम बनाया कि गृहस्थ के सम्मुख किन्ही साधुओं मे आवेशवश बोलचाल हो जाए तो उन दोनो को एक महीने छहो विगय का वर्जन करना होगा। एक दिन मोतीजी ने दो साधुओ को उत्तेजित होकर बोलते हुए देखकर मुनिश्री हेमराजजी से कहा तो मुनिश्री ने दोनो को एक महीने तक विगय वर्जन का आदेश दिया।

मोतीजी कुछ दिन मुनिश्री की उपासना कर वापस अपने गांव आ गए। पहले की तरह ही रहने लगे। फिर एक वर्ष लगभग और निकल गया। घर वाले सब हैरान हो गए पर मोतीजी अपने निर्णय पर डटे रहे। आखिर एक दिन पिता ने रोष मे आकर आज्ञा का कागद लिखकर मोतीजी को दे दिया[1]।

वे उसे लेकर तुरत रवाना हुए और १२ कोश चलकर कटालिया पहुचे। वहां मुनिश्री जवानजी (५०) के पास स० १८७४ के शेषकाल (सभवत जेठ, आषाढ) मे चारित्र ग्रहण किया। लगभग अढाई वर्ष उन्हे आज्ञा लेने मे लगे पर अत मे उनकी भावना फलवती हो गई[2]। कहा भी है—

'उद्योगिन पुरुषसिहमुपैतिलक्ष्मी·' अर्थात् जो व्यक्ति पुरुषार्थी होता है उसके गले मे स्वयं लक्ष्मी वरमाला पहनाती है।

तेरापथ मे अत्यधिक कष्टो को झेलकर दीक्षित होने वालो मे साध्वी समाज मे तो साध्वीप्रमुखा सरदाराजी और साधुओ मे मुनिश्री मोतीजी का उत्कृष्ट उदाहरण है।

(मोती० पंच० ढा० १ से ४ के गा० १३ तक के आधार से)

२. मुनिश्री मोतीजी बड़े विनयी, पापभीरु, आचार-विचार मे कुशल और

---

१. घर को काम करै नही, पिण आज्ञा दै नाहि।
एक वर्स रै आसरै, इम वलि निकल्यो ताहि॥
एक दिवस मोती रो तात, आयो रीस में अधिक विख्यात।
कहै मोती नै आम, तोनै कागद लिख देउ ताम।
इम रीस वसै अवलोय, आज्ञा रो कागद सोय।
निज जनक लिखी नै दीधो, मोती रो कार्य सीधो॥

(मोती० पच० ढा० ४ गा० ६ से ११)

२. तुरत मोती तिहां थी नीकल्यो, सैहर 'कंटाल्या' माय।
जवान ऋषि ना दर्शण करी, चरण लियो सुखदाय॥
वर्स अढ़ाई रै आसरै, आज्ञा लेतां ताय।
चिमंतरे चारित्र लियो, पायो हरष अथाय॥

(मोती० पच० ढा० ४ गा० १२, १३)

प्रकृति से भद्र थे'।

वे सं० १८७४ से ८२ तक मुनिश्री [illegible] के साथ में रहे। फिर मुनिश्री जीतमलजी के सान्निध्य में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहले उनके मन में शंका बहुत पड़ती थी पर मुनिश्री जीतमलजी ने उनको आगमों का रहस्य बतला-कर ऐसा असंदिग्ध बनाया कि वे दूसरों का संदेह दूर करने में सक्षम हो गए'।

२. मुनि मोतीजी ने मुनि जीतमलजी के पास विनय-भक्ति पूर्वक सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया। क्रमशः वे बहुश्रुती मुनियों की गणना में आने लगे। संघ एवं गणी के प्रति आस्था रखते हुए विविध गुणों का विकास कर सौभाग्य श्रेणी में आ गए। चतुर्विध संघ में उनकी अच्छी ख्याति बढ़ गई'।

---

१. ईर्या भाषा एषणा, पडगी पचमी सुमित।
सावद्य मन वचन काय में, गोपवै तिहुं गुप्ति।
दया सत्य दत्त शील में, निरमल मोती मन।
निर्ममत्व पायो घणो, समण सूत्र सोमत।
वारू विनय गुण आगलो, सौम्य प्रकृति सुखदाय।
पाप तणो भय अति घणो, मोती रै दिल माय॥

(मोती० पंच० ढा० ४ गा० १४, १५, १६)

२. आठ वर्ष रै आसरै, ऋषि जवान री सेव।
मोती ऋषि हद साचवी, अलगो पर अहमेव॥
पछै मोती नैं सूपीयो, जीत भणी ऋषिराय।
समय रहिस बहु सीखवी, विनय करी सीताय॥
पहिला मोती नी प्रकृति, हुती संकोची सोय।
जीत कनै आया पछै, समय रहिस बहु जोय॥
सगर नियठा सजगा, आदि समय ना बोल।
मोती ऋषि बहु धार नै, थयां सुअधिक अडोल॥
मोती शंका पर तणी, काढै विध-विध सीन।
जाणक जन्म दूजो थयो, मोती तणो पुनीत॥
टांकी लागा पत्थर री, प्रतिमा हुवै वदीत।
तिम कठिन वचन बहु सीख दे, प्रकृति सुधारी जीत॥
समभावे मोती सही, कठिण शीख मृदु तेम।
अग्नि करी प्रेर्यो थको, हुवैज कुन्दण हेम॥

(मोती० पच० ढा० ५ दो० १ से ७)

३. सातावारी संत, श्रवण नैं सुखदाई, मधुर वचन मतिवंत अति ही नरमाई।
नरमाई वलि गुणग्राही, क्रोधादिक तास प्रबल नाही।
ओ तो धिन-धिन मोती संत, प्रवर शोभा पाई॥

(मोती० पच० ढा० ५ गा० २)

सं० १८८३ से १६०८ तक उन्होने अधिकांश चातुर्मास मुनिश्री जीतमलजी के साथ किये। वीच के कुछ चातुर्मासो मे मुनि सतीदासजी के साथ थे।

स० १८६६ मे युवाचार्यश्री जीतमलजी का चातुर्मास चूरू था। तव मुनि मोतीजी उनके साथ थे। वहां चातुर्मास के पूर्व मुनि कोदरजी ने अनशन किया था। कोदर मुनि ने अपने अनशन के अतिम दिन सध्या के समय मुनि मोतीजी को पानी पीने के लिए कहा था[1]।

मुनि सतीदासजी के साथ उन्होंने चार चातुर्मास किये।

स० १६०५ पीपाड (वहा उपवास किया)

स० १६०६ पाली (वहां उपवास वहुत किये)

स० १६०७ बालोतरा (वहा ११ दिन का तप किया)।

स० १६०८ पचपदरा (अनुमानत:)।

(शाति विलास ढा० १० गा० ७, ६, १५, १८ के अनुसार)

४. स० १६०८ मे जयाचार्य ने पदासीन होकर मुनि मोतीजी का सिंघाडा वनाया[2]। कामकाज व वोझभार से उन्हे मुक्त किया[3]। इस प्रकार जयाचार्य की उन पर विशेष कृपा थी। सुना जाता है कि जयाचार्य ने मुनि मोतीजी और कर्मचदजी को वाजोट पर बैठने की एव साध्वियो को पढाने की आज्ञा प्रदान की। जव ऐसा प्रसग आता तव मुनि कर्मचदजी (८३) तो अपने आप वाजोट विछाकर बैठ जाते किन्तु मोतीजी स्वामी के लिए दूसरा साधु वाजोट तथा आसन आदि विछाता तव उस पर बैठकर साध्वियो को पढाते व व्याख्यान देते। इस सवध मे जयाचार्य कई वार विनोद भरे शब्दो मे फरमाते—'हमारे कर्मचद का तो वेटे का सा और मोतीजी का वेटी का सा खर्चा है।' जिस प्रकार वेटा तो अपने घर मे सामान्य स्थिति मे रहता है और वेटी कभी-कभी पीहर आती है तव अधिक मान-मनुहार करवाती है और ठाट-वाट से रहती है।

मुनिश्री ने ग्रामानुग्राम विचर कर वहुत अच्छा उपकार किया। श्रावको द्वारा

---

१. इतले दिशा जई आवियो हो, सत मोती सुखकार।
मोतीजी स्वामी उदक चुकायलो हो, तीखे स्वर वोलै अधिक विचार॥

(कोदर मुनि गु० व० ढा० ४ गा० ६७)

२. मोती तो धर प्रेम, सिंघाड़ो सुखकार।
आप्या सत अमोल, सेव मे हुसियारं॥

(मोती० पंच० ढा० ५ गा० ४)

३. ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १४५ मे ऐसा उल्लेख है—
पछै जय गणपति थया सिंघाडो करावियो।
पाती रो काम वोझादिक कर्यो वगशीस॥

लिखित चातुर्मास तालिका के अनुसार ५ साधुओ से स० १९१२ का चातुर्मास वालोतरा एवं मुनिश्री जीवोजी (८६) द्वारा रचित ढाल के अनुसार स० १९१३ का चातुर्मास जसोल किया।

प्राचीन पचपदरा की चातुर्मास तालिका के अनुसार स० १९२७, २८ और २९ के तीन चातुर्मास वृद्धावस्था के कारण पांच-पाच ठाणो से पचपदरा मे किये।

शेप चातुर्मास प्राप्त नही है।

सं० १९१० के नाथद्वारा चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य ने मालव की तरफ विहार किया। रास्ते मे जब कानोड पधार रहे थे तब डवोक ग्राम मे मुनिश्री मोतीजी के साथ के तीन साधु गण से पृथक् हो गए—१. जीवरामजी लघु (११३) २. धनजी (९२) ३. हमीरजी (१४०)। उनमे एक जीवरामजी को राजनगर के श्रावक लिखमीचदजी समझाकर वापस ले आए। उन्होंने स० १९११ का चातुर्मास मोतीजी स्वामी के साथ ही किया। चातुर्मास स्थान प्राप्त नही है।

(जय सुजश ढा० ४० दो० १ से ५ के आधार से)

५. मुनिश्री ने उपवास, वेले आदि विविध तपस्या की। ऊपर मे ४७ दिन का थोकडा किया। शीतकाल मे वहुत शीत सहा और उष्णकाल मे आतापना ली[1]। (ख्यात)

६. सं० १९२९ के पचपदरा चातुर्मास मे मुनि मोतीजी की शारीरिक शक्ति वहुत घट गई। चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री तेजपालजी (१२७) आदि ३ संत वहा पधारे। उन सभी ने मुनि मोतीजी की अच्छी परिचर्या की। क्रमश. मुनिश्री के दुर्वलता वढ़ती गई। आखिर मृगसर सुदि २ को उन्होंने पाच प्रहर के सथारे से समाधि-पूर्वक पंडित मरण प्राप्त किया[2]।

---

१. चोथ छठादिक विचित्र, प्रकारे तप कीधो।
इम सैंताली लग सरस, तप रस पीधो॥
शीतकाल मे शीत, परिसह अति खमतो।
उष्णकाल मे उष्ण, सहै समता रमतो॥
(मोती० पंच० ढा० ५ गा० ११, १२)

२. शक्ति घटी अधिकाय, चरम ही चउमास।
पंच मुनि थी पेख, अधिक धर्म उजासं॥
(मोती० पंच० ढा० ५ गा० १३)
त्रिहुं साधा थी ताम, तेजसी तिह वार।
मृगसर मास मझार, किया दर्शण सार॥
दर्शन सारं कांई धर प्यार, तसु सेव करैं अति हुसीयारं।
तीर्थ चिहुं सुखकार॥
(मोती० पच० ढा० ५ गा० १४)

७. जयाचार्य ने मुनिश्री के संबंध मे—'मोतीचद पंचढालियो' नामक आख्यान बनाया। जिसकी ५ ढाले है। जिनमे २७ दोहे और ८७ गाथाए हैं। रचना संवत् १९३१ आषाढ़ (द्वितीय) कृष्णा १२ शुक्रवार और स्थान बीदासर है। यह जीवन चरित्र मुनिश्री की गौरव गरिमा का महान् प्रतीक है।

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १४२ से ४६ मे मुनिश्री के जीवन का कुछ वर्णन है।

चौमंतरे वर्ष सार, चरण मुनि आदरियो।
उगणीसैं गुणतीस, प्रवर अणसण धरियो।
अणसण धरियोजी गुण नो दरीयो, पचपदरे पंच पैंहर वरियो॥
ओ तो धिन-धिन मोती संत सिद्ध कार्य करियो॥
(मोती० पच० ढा० ५ गा० १५)

चौमतरे दीक्षा सीहावास ना, अति सुविनीत उदारो रे।
उगणीसैं गुणतीसे अणसण, वड़ मोती गुणधारो रे॥
(शासन विलास ढा० ३ गा० ३३)

७८।२।२६ मुनि श्री शिवजी (लावा)

(संयम पर्याय सं० १८७५-१९११)

छप्पय

लोह लेखिनी से लिखूं शिव मुनि का तप घोर।
लम्बे चौड़े आंकड़े जोड़ सुनाऊं और।
जोड़ सुनाऊं और सभी की आंखें खोलूं।
भरू विरति का रंग वीर रस उसमें घोलूं।
खींचू सतयुग चित्र को करके पूरा गौर।
लोह लेखिनी से लिखूं शिव मुनि का तप घोर ॥१॥
वासी लावा ग्राम के गोत्र वाफणा ज्ञेय।
धर्म बोध-दायक मिले मुनि श्रमणी श्रद्धेय।
मुनि श्रमणी श्रद्धेय श्रेय का पथ अपनाया।
भारी गुरु के हाथ सुधा संयम का पाया।
शिव उसमें ही रम गये होकर 'भाव-विभोर'।
लोह लेखिनी से लिखू शिव मुनि का तप घोर ॥२॥
वज्रोपम सीना किया मन दृढ़ मेरु समान।
पाई वश कर इन्द्रियां रसना-विजय महान्।
रसना विजय महान् विरति बल से वर्चस्वी।
शांत प्रकृति सुवनीत साधना में अति तेजस्वी।
लगे चलाने देह पर तप तलवार सजोर।
लोह लेखिनी से लिखूं शिव मुनि का तप घोर ॥३॥
सोलह तक क्रमशः लड़ी मासादिक बहु बार।
करते करते कर गये छहमासी को पार।
छहमासी को पार हार तो पहना भारी।
देख देख कर शीश हिलाते सब नर-नारी।

अथ से इति तक का सुनो वर्णन चतुर चकोर[२]।
लोह लेखिनी से लिखूं शिव मुनि का तप घोर ॥४॥
शीतकाल में संत ने शीत सहा बहु साल।
गर्मी में आतापना ली है लम्बे काल।
ली है लम्बे काल अभिग्रह नाना धरते।
ध्यान व कायोत्सर्ग खडे रजनी में करते।
कर्म काटने के लिए ली सब शक्ति बटोर[३]।
लोह लेखनी से लिखूं शिव मुनि का तप घोर ॥५॥
विचरे होकर अग्रणी गुरु-आज्ञा से आप।
पुर-पुर मे अच्छी जमी त्याग तपोमय छाप[४]।
त्याग तपोमय छाप शेष में दर्शन देकर।
'सिरेपाव' बख्शीश किया जय ने करुणा कर।
अकस्मात् मुनि अंग में व्यापी व्याधि कठोर।
लोह लेखिनी से लिखू शिव मुनि का तप घोर ॥६॥

दोहा

कृत कर्मों के कर्ज की, होगी जव भुगतान।
छुटकारा संभव तभी, है प्रभु का फरमान ॥७॥
गर्भाशय नरकादि में, सहे भयकर कष्ट।
होते है समभाव से, सभी उपद्रव नष्ट ॥८॥
चितन कर मुनिवर्य ने, सही वेदना घोर।
दो मुनि सेवा में प्रथम, दो आये फिर और ॥९॥
सेवा सवने ही सजी, दिया बड़ा सहयोग।
लाये कंधों पर उठा, रखा वहुत उपयोग ॥१०॥

छप्पय

पंचोला अतिम किया धर साहस अनपार।
दिवस पारणे के लिया शिव ने अल्पाहार।
शिव ने अल्पाहार निशा में स्वर्ग सिधाये।
रच जय ने संगीत गीत मुनि-गुण के गाये।
विघ्नहरण की ढाल पढ़ स्मरण करो उठ भोर[१]।
लोह लेखिनी से लिखू शिव मुनि का तप घोर ॥११॥

१. मुनिश्री शिवजी मेवाड प्रदेश मे लावा (सरदारगढ़) के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से वाफणा थे। उन्होंने सं० १८७५ में आचार्यश्री भारीमाल-जी के हाथ से चारित्र ग्रहण किया।[1]

ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १४७ मे दीक्षा वर्ष १८७५ और आर्यादर्शन ढा० ३ सोरठा ४ मे १८७६ है।

'शिव लाहवा नो सार रे, विविध तपे तन तावियो।
पट्मासी वे वार रे, छिहतरे व्रत आदर्या।।'

ख्यात मे शिवजी के वाद की दीक्षा का भी संवत् १८७५ है अत. उनका दीक्षा संवत् १८७५ (जैन सावनादि क्रम से) ही यथार्थ लगता है। आर्या-दर्शन मे सवत् १८७६ है वह विक्रम संवत् (चैत्रादि क्रम से) प्रतीत होता है।

२. मुनिश्री शिवजी वड़े, विरागी, प्रकृति से कोमल, विनयी उच्च साधक एवं उग्र तपस्वी हुए। उन्होने सयम की आराधना के साथ साधना का अनूठा अभियान चालू किया। उनकी तपस्या के लम्वे आकडे आश्चर्य-जनक, जन-जन को विस्मित करने वाले और भगवान् महावीर के युग की याद दिलाने वाले है। पढिये निम्नोक्त तालिका.

उपवास	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	३०
४१४	२२	३४	८	११	७	३	६	३	३	३	३	२	३	३	२	१२

३२	३६	४०	४५	५०	५५	६०	७५	९०	(पानी के आगार से) १८६
१	२	१	९	२	१	५	२	१	१

(आछ के आगार से)।

उन्होने उपर्युक्त अधिकांश तपस्या पानी के आगार से की।

उनके तप का विवरण जयाचार्य विरचित 'शिव मुनि गुण वर्णन' ढा० १ गा० १ से २३, शासन-विलास ढा० ३ गा० ३४ की वार्तिका तथा शासन-प्रभाकर 'भारी सत वर्णन' ढा० ४ गा० १४८ से १५४ के आधार से दिया गया है। ख्यात मे कुछ भिन्नता है वहां १० व १५ के थोकड़े नही है एवं ९ के १० वार व ३२ के दो वार है।

सुना जाता है कि उक्त १८६ दिन का तप उन्होंने सं० १८८६ मे किया था।

---

१. सवत अठारै पचतरे, सजम लीधो सार।
वासी लावा सैहर नो, जाति वाफणा जाण।
भारीमाल स्व हाथे दियो, वारू चरण विनाण।।
(शिव गुण वर्णन ढा० १ दो० ३, ४)

जाति वाफणा सैहर लाहवा ना, चरण पचंतरे धामी रे।
(शासन विलास ढा० ३ गा० ३४)

आर्या दर्शन ढा० ३ सो० ४ मे दो वार छहमासी करने का उल्लेख है—'षट्मासी वे वार रे।'

पर सभी कृतियो मे एक का ही उल्लेख होने से एक छहमासी ही मान्य की गई है।

३. मुनिश्री ने बहुत वर्षो तक शीतकाल मे शीत सहन किया। रात्रि मे केवल एक चोलपट्ट के अतिरिक्त कुछ भी ओढने, पहनने के काम मे नही लिया। पश्चिम रात्रि मे खड़े-खडे कायोत्सर्ग व ध्यान करते। उष्णकाल मे तप्त शिला तथा रेत पर लेटकर आतापना लेते। विविध अभिग्रह व विगयादिक का वर्जन करते इस प्रकार वैराग्य रस मे ओत:प्रोत हो गये।

(शिव मुनि गु० व० ढा० १ गा० २४ से ३० के आधार से)

४. मुनिश्री ने अग्रणी होकर मारवाड, मेवाड, ढूढाड, हाडोती, मालव तथा हरियाणा के क्षेत्रो मे विहरण किया।

(शिव० मु० गु० व० ढा० १ गा० ४६ से ४७ के आधार से)

५. मुनिश्री शिवजी का स० १९११ का अन्तिम चातुर्मास पेटलावद मे था। चातुर्मास के पश्चात् वे विहार कर झखणावद पधारे। वहा मुनिश्री अनोपचदजी (११४) ने छहमासी तप किया। मुनिश्री शिवजी ने भी ८ दिन की तपस्या की। पारणा साथ मे ही हुआ। जयाचार्य ने पधारकर मुनिश्री अनोपचदजी को पारणा कराया। अनेक साधु-साध्वी सम्मिलित हुए। आस-पास तथा मेवाड़ के बहुत भाई-वहन दर्शनार्थ आये। चार तीर्थ का मेला सा लग गया।

जयाचार्य ने 'सिरेपाव' की वखशीश कर मुनि शिवजी का सम्मान बढ़ाया अर्थात् उन्हे कार्य विभाग से मुक्त किया। मुनिश्री वहा से विहार कर राजगढ़ (मालवा) पधारे। वहा वे अत्यधिक अस्वस्थ हो गये। उनकी सेवा मे मुनि जयचदजी (१३२) और लालजी (१२२) थे। उनकी बीमारी के समाचार सुनकर जयाचार्य ने इदौर से मुनिश्री हिन्दूजी (९१) तथा वीरचदजी (१५८) को उनकी सेवा मे भेजा। मुनिश्री जयचन्दलालजी उनको वहा से उठाकर वखतगढ़ लाये। उन्होने उस घोर वेदना को समभावो से सहन किया। वहा उन्होने ५ दिन की तपस्या की। पारणो मे थोडा आहार लिया। उसी दिन स० १९११ चैत्र सुदि ७ को रात्रि के समय अचानक दिवगत हो गये। दूसरे दिन लोगो ने वड़ी उमग से उनका चरमोत्सव मनाया। जय जयकार की ध्वनियों से यशोगान गाया।

(शिव० मु० गु० व० ढा० १ गा० ४८ से ८० के आधार से)

जयाचार्य ने विघ्नहरण की ढाल मे मुनि शिवजी का स्मरण किया है 'अ-भी-रा-शि-को' इन सकेतात्मक पच अक्षरो मे शि—'शिव' उनका नाम है। उनके विषय मे पद्य इस प्रकार है—

शिव वासी लावा तणो, तप गुण राशि उदारी हो।
आस्वासी निज आतमा, षटमासी लग धारी हो।
शीत काल मझारी हो सह्यो शीत अपारी हो।
उष्ण शिला तथा रेत नी, आतापन अधिकारी हो।
तप वरणन चोमासा तणो, सुणतां इचरजकारी हो।
गुण निष्पन्न नाम भारी हो।

(विघ्नहरण की ढा० गा० ११, १२)

मुनिश्री की गुण वर्णनात्मक ढाल ६२ गाथाओं की है। जिसकी जयाचार्य ने सं० १९११ वैशाख वदि ७ सोमवार को वखतगढ मे रचना की।

जयाचार्य ने मुनिश्री के विशिष्ट गुणो की मुक्तकठ से सराहना की है, उसके कुछ अश निम्नोक्त पद्यो मे है।

मुनि थे तो सरल भद्र सुखदायो जग जश छायो रा।
मुनि थांरे सासण आसता तीखी, नीत सुनीकी रा।
मुनि थे तो सग अवनीतां रो छडी, कुमति विहडी रा।
मुनि एतो अणसण कर तन खडै, पिण गण नवि छडै रा।
मुनि एतो सद्गुरु आण लहलीनां, तन मन भीना रा।
मुनि थांरी सुमत गुप्त अघ-हरणी, कहा कहु करणी रा।
मुनि थेतो अविनय आग उल्हावी, सम चित भावी रा।
मुनि थेतो सुवनीता सिर सेहरा, सतजुग जेहरा रा।
मुनि थांरी तप मुद्रा हद, प्यारी हू वलिहारी रा।

(शिव मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३१ से ३९)

७६।२।३० मुनि श्री भैरजी (देवगढ़)

(सयम पर्याय १८७५-१९२५)

लय—जिण घर जाजे हे नींदडली···

चुन-चुन गाऊ हो गाऊं, मुनि भैरव के गुण गाऊं।
चुन-चुन गाऊ हो गाऊ, मंगल जल कलश भराऊं।चुन···।।ध्रुव०।।

मगरों की धरती मन हरती, ग्राम देवगढ गाया।
पा प्रतिबोध मोद से भैरव, सयम पथ पर आया[1] ।।चुन०।।१।।

समिति गुप्ति में रत हो रखते, ध्यान बड़ा ईर्या में।
जागरुक प्रहरीवत् रहते, क्षण-क्षण मुनिचर्या में।।२।।

सरल प्रकृति विनयी सुविवेकी, सेवा में अगवानी।
गति अति सुदर मधुरी वाणी, आकृति हृदय लुभानी।।३।।

सौम्य-मूर्त्ति के दर्शन करके, स्व-पर-मती हरषाते।
सीमंधर स्वामी की उपमा, देकर स्तवना गाते[2] ।।४।।

चोथ भक्त आदि से लेकर, लड़ी बीस तक ऊची।
मासखमण बहु उभय-अढाई-तीन-मास की सूची।।५।।

तीन वीस पावस में प्रायः, एकांतर कर पाये।
विगयादिक का वर्जन करके, विरति बडी ही लाये।।६।।

शीतकाल में शीत सहन कर, समता शिखर चढाते।
उष्णकाल में ताप सहन कर, धृति बल खूब वढ़ाते[3] ।।७।।

हेम महामुनि पास खास दो, चतुर्मास कर फूले।
वीस और इक्कीस दिवस के, तप झूले में झूले[4] ।।८।।

प्रवल पराक्रम से तोड़ा है, भव वंधन का खंभा।
सकुशल साल पचास संयमी, जीवन जीया लम्वा ॥६॥

शतोन्नीस पच्चीस हयन शुभ, मृगसर में सुरवासी।
चार दिनों के तप में फहरा, विजयी ध्वज आकाशी ॥१०॥

सुखद सहायक संवल दायक, संत स्वरूप मिले हैं।
आराधक पद पाया ऋपि ने, वांछित सकल फले हैं ॥११॥

१. मुनि भैरजी देवगढ (मेवाड) के वासी थे। उन्होने स० १८७५ मे सयम ग्रहण किया।

(ख्यात)

उनकी जाति अप्राप्त है। दीक्षा कहा और किसके द्वारा हुई इसका उल्लेख भी नही मिलता।

वे भैरजी नाम से ही अधिक प्रसिद्ध थे। स० १८७७ वैसाख कृष्णा ६ के दिन लिखे गए युवाचार्य नियुक्ति के लेखपत्र मे उनके 'भैरुदान' नाम से हस्ताक्षर है।

२. मुनिश्री आचार-क्रिया मे कुशल, प्रकृति से सरल, विनयी, विवेकी और वडे सेवाभावी हुए। उनकी आकृति मे सौदर्य और वाणी मे मिठास था। किसी को अप्रिय वचन नही कहते। अन्य मतावलम्वी भी उनके दर्शन कर वडे प्रभावित होते। टालोकरो (गण से वहिर्भूत साधु) के श्रावक भी उन्हे सीमधर स्वामी की उपमा देकर मुक्त स्वर स्तवना गाते[1]। (ख्यात)

३. मुनिश्री वडे त्यागी एव तपस्वी हुए। उन्होने उपवास से लेकर वाईस तक लड़ीवद्ध तप किया। अनेक वार मासखमण तथा उदक व आछ के आगार से दो मासी, अढाई मासी और तीन मासी तप किया। तेईस चातुर्मासो मे एकान्तर किये। शीतकाल मे शीत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली।[2]

विगयादिक के त्याग भी वार-वार करते रहते। (ख्यात)

४. उन्होने मुनिश्री हेमराजजी के साथ स० १८९९ का गोगुदा तथा १९००

---

१. सरल भद्रीक सुहामणो, समण भैरजी सार।
वोली मीठी ते भणी, मीठो नाम उदार॥
धन-धन मुनि भैरजी॥
(भैरजी मुनि गु० व० ढा० १ गा० १)

ईर्या पूजण परठणो, रूडी जयणा रीत।
अन्य मति स्व मति देख नै, पामै अधिकी प्रीत॥
(भैरजी मुनि गु० व० ढा० १ गा० २)

२. सीयाले वहु सी खम्यो, उन्हाले आताप।
तेवीस चोमासा आसरै, एकतर चित थाप।
मासखमण तप वहु किया, दोय अढी तीन मास।
उदंक आछ आगार सू, इम तोडी अघ-रास।
चौथभक्त सु आदि दे, वावीस दिन लग तास।
ए तप लड तीखी करी, अति चढते परिणाम।
(भैरजी मुनि गुण वर्णन ढा० १ गा० ३ से ५)

का श्रीजीद्वारा चातुर्मास किया। वहा क्रमशः २१ और २० दिन का तप किया।[1]

५. मुनिश्री १९२५ मृगसर महीने मे चार दिनों की तपस्या मे दिवगत हुए। उस समय वे लाडनूं मे मुनिश्री स्वरूपचदजी स्वामी के साथ थे। मुनिश्री स्वरूपचदजी ने समाधिमरण में उनको अच्छा सहयोग दिया।[2]

उन्होने पचास साल लगभग सयम की सानद आराधना की।

जयाचार्य ने एक गीतिका द्वारा उनका गुणानुवाद किया। ख्यात तथा शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० १५६ से १६१ मे भी उक्त वर्णन है।

---

१. वर्ष निनाणुवे गोगुदे मे, भैरजी इकवीस धारी।
श्रीजीद्वारे उगणीसे चौमासो, भैरजी वीस विचारी॥

(हेम नवरसो ढा० ६ गा० १७, १८)

२. चोला मे चलता रह्या, उगणीसै पणवीस।
मृगसर मासे महामुनि,सफल करी जगीस॥

(भैरजी० ढा० १ गा० ६)

सुरगढ ना ऋषि भैर चरण तसु, जयणा अधिक जगीसो रे।
अढी मास तप परभव पौहता, उगणीसै पणवीसो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० ३५)

स्वरूपचदजी स्वामजी, सखरो दीधो स्हाज।

(भैरजी० गु० व० ढा० १ गा० ७)

८०।२।३१ मुनि श्री अमीचंदजी 'छोटा' (कोचला)

(सयम पर्याय १८७५-१८९४)

गीतक-छन्द

कोचला मेवाड़ भू पर जन्म भूमि सुहावनी।
अमीचंद सुनाम आत्मिक भावना उन्नत बनी।
पचहत्तर की साल में चारित्र भावों से लिया[1]।
अग्रणी हो वर्ष कितने धरा पर विहरण किया[2] ॥१॥
दिखावा था अधिक दिल तो कुटिलता प्रतिपन्न है।
किंतु सेवा से हुए ऋषिराय के आसन्न है।[3]
प्रभावित मधुरोक्ति से अति कर लिया गण पाल को।
पर न सरलाशयी समझे सुगुरु इनकी चाल को ॥२॥
दूसरों की नही वढती देखते दुर्भाव से।
हो गये प्रतिकूल ईर्ष्या धर श्रमण गुलाब से[4]।
देख इनकी वृत्ति जय ने किया अनुनय स्पष्टतर।
वढ़ाना इनको प्रभो! है बीज बोना विषमतर[5] ॥३॥

दोहा

दीन वचन छल युत कहे, आकर जय के पास।
मीठा सा उत्तर दिया, पर न किया विश्वास[6] ॥४॥

गीतक-छन्द

की वड़ी आशातना ऋषिराय की अविवेक से।
आ गया परिणाम सम्मुख शीघ्र दिन कुछ एक से।
किया गोगुदा शहर में विकट वर्षाकाल है।
शीत उधड़ा तब विराधक हो मरे बेहाल है[7] ॥५॥

१. अमीचदजी मेवाड मे कोचला के वासी थे। उन्होने सं० १८७५ मे दीक्षा ली। स्थान प्राप्त नही है। प्रकीर्णक प्रकरण ४ पत्र सख्या २७ मे लिखा है कि उनको गुलावजी (५३) ने दीक्षा दी। ख्यात, शासन-विलास आदि मे इसका उल्लेख नही है। अमीचदजी का वर्ण गौर था अतः वे 'गोरा अमीचदजी' से पुकारे जाते थे।

२. वे अग्रगामी होकर कुछ वर्षो तक विचरे। स० १८९१ मे उन्होने मुनिश्री नेमजी (११२) को दीक्षा दी ऐसा ख्यात मे उल्लेख है।

३. अमीचदजी ऊपर से मधुर और अदर से कटु थे। उन्होने विशेष रूप से सेवा-भक्ति कर आचार्यश्री रायचदजी को प्रसन्न कर लिया। सरलाशयी आचार्यश्री उनकी कूटनीति को समझ न पाये और उन पर अधिक अनुग्रह रखने लगे।

वे बाहर से हाव-भाव द्वारा सघ एव सघपति के प्रति आत्मीयता व गहरी निष्ठा अभिव्यक्त करते पर भीतर ही भीतर साधुओ को फटाकर अपनी पक्ष मे करते—

'पछै व्यावचिया वाज्या ऋषिराय कनै साधां नै आप रै वश कीया।'

(प्रकीर्णक पत्र प्रकरण ४ पत्र संख्या २७)

४. स० १८९२ मे उन्होने ७ साधुओ से नाथद्वारा चातुर्मास किया। वहा उनके साथ मुनिश्री गुलावजी (५३) थे। उनके ४१ बोलों की शका पडी। उन्होने उन सब बोलो को एक पन्ने मे लिख लिया। चातुर्मास के पश्चात् खेरवा मे ऋषिराय के दर्शन कर वह पत्र निवेदित कर दिया। मुनिश्री जीतमलजी उस समय ऋषिराय के दर्शनार्थ आए हुए थे। उन्होंने उन सब बोलों का समाधान कर गुलावजी को संदेह मुक्त कर दिया[1]।

यह सुनकर अमीचदजी बहुत नाराज हो गए थे। वे गुलावजी को गण से

---

१. त्यां अमीचन्दजी तिह समै, सात सत सू जोय।
नाथद्वारे चोमास करी, जिहां आया अवलोय॥
इकतालीस बोला तणी, गुलावजी रे मन माहि।
सक पडी ते बोल सहु, लिख्या पत्र मे ताहि॥
तास जाव जय दै करी, सक मेटी तिह ठाम।
प्रायछित दै तेहनू, लिखत करायो ताम॥

(जय सुजश ढा० २२ दो० १ से ३)

प्रकीर्णक पत्र सग्रह 'प्रकरण ४ पत्र सख्या २७ मे लिखा है कि मुनिश्री गुलावजी के शका पडी तब मुनिश्री जीतमलजी ने २७ बोलो का जवाब दिया जिससे उनकी सब शकाए मिट गई।

पृथक् करवाने के लिए प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार अपने को दीक्षा प्रदान करने वालो के साथ में भी द्वेष भावना रखने लगे।

(प्रकीर्णक प्र० ४ पत्र स० २७)

५. एक बार भगवती सूत्र के लिए अमीचदजी ने बहुत विग्रह किया। तब ऋषिराय ने भगवती सूत्र की प्रति मुनिश्री जीतमलजी को प्रदान कर दी।

इस प्रकार उनकी दूषित वृत्तियों को देखकर मुनिश्री जीतमलजी ने ऋषिराय से विनति की—'गुरुदेव! आप जो इन्हे इतना बढावा देते है वह जहरीले बीज-वपन के समान है।'

पर सरल स्वभावी ऋषिराय ने इस पर विशेष गौर नही किया।

(प्रकीर्णक प्र० पत्र स० २७)

६. आचार्यश्री रायचदजी ने मुनिश्री जीतमलजी का स० १८९३ का चातुर्मास बीकानेर फरमाया। विहार के समय अमीचदजी ने मुनिश्री जीतमलजी को अत्यन्त नम्र शब्दो मे कहा—"मै आपका चाकर हू, दास हू। आप मुझे ऐसा वचन दीजिए कि किसी समय ऋषिराय के साथ मेरा मन-मुटाव हो जाए तो आप बीच मे नही पडेगे।"

मुनिश्री जीतमलजी ने कहा—'यह कैसे हो सकता है? आचार्यश्री जो कार्य मुझे सौपते है वह तो करना ही पड़ता है। ऐसा कभी नही हो सकता कि मै उनके निर्देश का पालन न करू।' 'फिर बहुत नम्रता की तब मुनिश्री ने इतना कहा—"तुमको गण से अलग करे ऐसी कोशिश तो नही करेंगे।"

इस प्रकार अमीचदजी ने कपट पूर्वक वार्त्तालाप किया।

(प्रकीर्णक प्र० ४ पत्र स० २७)

७. स० १८९३ के शेषकाल मे ऋषिराय नाथद्वारा मे विराजते थे। उस समय अमीचदजी ने आचार्यश्री को कह कर वहा से सभी साधुओ का विहार करवा दिया। केवल उनका सिंघाडा ही वहां रहा। कुछ दिनो बाद उन्होने अपने साथ वाले सतो को भी विहार करवा दिया। आचार्यश्री और वे दो ही रहे। वे बोले—'मैं गोगुदा चातुर्मास करूगा। आप राजनगर मे माणकचदजी (७१) सत है उनके पास चले जाए।' इस तरह कहकर वे आचार्यश्री के साथ बनास नदी तक आए और बोले—'मेरे नदी का पानी क्यो लगाए, मै वापस जाता हू, आप अकेले पधार जाए।'

यह सुनकर ऋषिराय उनकी दूषित भावना को समझ गए और वापस नाथद्वारा पधार गए। श्रावको द्वारा सूचना मिलने से मुनिश्री स्वरूपचदजी शीघ्र विहार कर नाथद्वारा से एक मजिल दूर रहे तब अमीचंदजी अकेले आचार्यश्री को वहा छोडकर गोगुदा चातुर्मास के लिए चले गए।

उस समय ऋषिराय ने उनसे कहा—'तुमने ऐसी आशातना की है कि

संभवतः छह महीनों मे ही अशुभ कर्म उदय मे आ जाएं। इस वार जीतमल के आने से तुम्हारा सघ से सबंध विच्छेद करवा दूंगा।'

मुनिश्री स्वरूपचदजी के आने पर ऋषिराय ने मुनिश्री जीतमलजी को युवाचार्य पद दे दिया। इसका विस्तृत वर्णन मुनिश्री स्वरूपचंदजी के प्रकरण में दे दिया गया है।

अमीचदजी को कार्त्तिक महीने में शीत[1] उघड़ा। जिससे बुरी तरह विराधक होकर आयुष्य पूर्ण किया।

(प्रकीर्णक प्र० ४ पत्र सं० २७)

---

१. सन्निपात—चित्त-विभ्रमता होने से पागल की तरह सुधबुध रहित होना।

८१।२।३२ मुनि श्री रत्नजी (देवगढ़)

(सयम पर्याय १८७६-१६००)

गीतक-छन्द

थे निवासी देवगढ़ के 'रत्नजी' खीवेसरा।
सुकृत-तरु लहरा गया है धर्म-कुल पाया खरा।
मिला है संयोग सुंदर हेम मुनिवर का स्वतः।
लगा है उपदेश स्थायी विरति पाई मूलतः ॥१॥

दोहा

दीक्षा लेने के लिए, हुए रत्न तैयार।
आज्ञा मांगी तब सभी, अभिभावक इन्कार ॥२॥
पिता व भाई आदि ने, डाला बहुत दबाव।
पत्नी का व्यामोह तो, सीमातीत खराव ॥३॥

रामायण-छन्द

मंत्र विज्ञ से मिल औरत ने कहा बनाओ तुम ताबीज।
जिससे पति वश में हो पाये जाए भौतिकता से भीज।
लालच उसको दिया किया कथनानुसार उसने सब कुछ।
कुछ दिन से ताबीज बन गया कर प्रयोग देखा सचमुच ॥४॥

दोहा

पर न रत्न पर तो हुआ, उसका तनिक प्रभाव।
भाग्यवान नर को नहीं, छूते विघ्न-विलाव ॥५॥
उन्हे रोकने के लिए, जो जो किये उपाय।
विफल हुए सब तब झुका, स्वतः स्वजन-समुदाय ॥६॥

अनुमति देकर के किये, दीक्षोत्सव भरपूर।
जनक-भ्रात स्त्री मोह से, रत्न हुए है दूर ।।७।।
हेम चरण में रत्न ने, पाया संयम सार।
उस ही दिन शिव कर्म भी, बने सही अणगार ।।८।।
एकम कृष्णा मार्ग की, साल छिहत्तर भव्य।
जन्म-भूमि में रत्न की, लगी चरण-छवि नव्य[1] ।।९।।

गीतक-छन्द

सजग संयम में बड़े ही भीरुता वहु पाप से।
पढ़े आगम ज्ञान गहरा किया सुगुरु प्रताप से।
गणित लेखों में निपुण गुण-सुमन भरते ही गये।
चढ़े ऊंचे मास तक तप विविध करते ही गये[2] ।।१०।।

दोहा

शतोन्नीस की साल थी, 'गुरला' नामक ग्राम।
अनशन करके रत्न ने, पाया सुरपुर धाम[3] ।।११।।

सं० १८७५ मे मुनिश्री हेमराजजी (३६) आदि नौ सत देवगढ पधारे। वहां मुनिश्री हेमराजजी के पैर मे गाय के चोट लगा देने से उनको देवगढ मे लगभग ६ महीने ठहरना पडा। स० १८७६ का चातुर्मास भी वहा हुआ। चातुर्मास मे बहुत उपकार हुआ। अनेक लोग दृढ श्रद्धालु बने। पाच व्यक्तियो ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार किया एव एक वर्ष के बाद व्यापार तथा घर की रोटी खाने का परित्याग कर दिया। इस बात की गांव के लोगो मे मुख-मुख चर्चा प्रारभ हो गई। द्वेषी लोगो ने रावजी गोकुलदासजी के सम्मुख शिकायत भी की। रावजी ने कहा—मैं किसी को बिना गुनाह के मना नही कर सकता। साधुओ से भी रावजी ने कहला दिया कि आप सानद यहा पर विराजे, किसी प्रकार का विचार न करे। मेरी तरफ से भगवान् के नाम की दो माला का जाप और अधिक करे। विरोधी व्यक्तियो ने मुनिश्री को भी अनेक कटुक वचन कहे, परन्तु उन्होने समभाव से इस परिषह को सहन किया

पारिवारिक जनो के अधिक दबाव देने पर दो व्यक्ति तो प्रण से विचलित हो गये, तीन व्यक्ति दृढ रहे। उनमे एक रतनजी दूसरे शिवजी (८२) और तीसरे कर्मचन्दजी (८३) थे।[1]

---

१. तिहा थयो उपगार सवायो रे, विविध उपदेश दे मुनि रायो रे।
पाचा रा परिणाम चढायो॥
जावजीव शील अदरायो रे, वर्स उपरत त्याग करायो रे।
घर की रोटी व्यापार छोडायो॥
द्वेषी करवा लागा हाहाकारो रे, रावजी कनै कीधी पुकारो रे।
त्यां कह्यो हू तो न वरजू लिगारो॥
साधां नै रावजी कहिवायो रे, खुशी थका रहजो सैहर माह्यो रे।
पिण आप मन मे म आणजो कायो॥
रह्या तीन जणा दृढ सारो रे, न्यातीला हुवा काया जिवारो रे।
जब आग्या दीधी श्रीकारो॥
(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ३५ से ३९)

वर्ष छिहतरे हेमनो रे, नव श्रमण सग चौमास।
जय आदि त्रिहू बंधव तदा रे, करे तप ग्यान प्रकाश॥
सुण वैराग्य पाया घणा रे, एक साथे सुविचार।
त्याग किया घर मे रहिवा तणा रे, पच जणा धर प्यार॥
ए बात शहर मे विस्तरी रे, तब लागू हुआ बहु लोग।
कटुक वचन ना मुनि तदा रे, परिसह सह्या शुभ योग॥

रत्नजी गोत्र से खीवसरा (ओसवाल) थे।

(ख्यात)

वे दीक्षा के लिए तैयार हुए तव उनके पिता, भाई आदि ने मोहवश उन्हे रोकने का वहुत प्रयत्न किया। किन्तु उनकी स्त्री का व्यामोह तो सीमा के अतिरिक्त था। उसने प्रच्छन्न रूप से एक मंत्रवादी से मिलकर कहा—'तुम एक ऐसा तावीज वनाओ कि जिससे मेरे पति साधु न वनें और गृहवास मे रच-पच जायें। इसके लिए मैं तुम्हे पाच पच्चीस रुपये दूगी।' मत्रविद् लालच वश उक्त कार्य के लिए वचनवद्ध हो गया। उसने आवश्यक सामग्री मगवाकर औरत से कहा—'तुम्हारा पति जिस मुनि से प्रभावित है, उसके शिर के कुछ वाल यदि तुम ले आओ तो तावीज वनाने मे वडी सुविधा होगी और सारा मनोवांछित कार्य हो जायेगा।'

वह स्त्री पहले साधुओ के स्थान पर कभी नही जाती थी परन्तु अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उसने निरन्तर मुनि दर्शन, सामायिक, व्याख्यान-श्रवण आदि चालू कर दिये। कई श्रावको ने सोचा कि अव इसकी भावना वदल चुकी है और यह रत्नजी की दीक्षा मे सहयोगिनी वन जायेगी। लेकिन वह तो अपनी निश्चित योजनानुसार चल रही थी। एक दिन अवसर पाकर ध्यान मे वैठे हुए मुनिश्री हेमराजजी के केश काटकर ले गई। मत्रवादी ने तुरंत तावीज वनाया और औरत ने उसका प्रयोग किया, लेकिन रत्नजी पर उसका कुछ भी प्रभाव नही पड़ा।

(अनुश्रुति के आधार से)

रत्नजी के घर वालों के सभी उपाय विफल हो गये तव थक कर उन्होंने दीक्षा की आज्ञा प्रदान की और दीक्षोत्सव मनाना प्रारभ किया। शिवजी और कर्मचद-जी भी उनके साथ दीक्षा लेने वाले थे। रावजी गोकुलदासजी भी लवाजमा आदि भेजकर उस महोत्सव मे सहयोगी वने। उन्होने तीनो दीक्षार्थियो को 'रावला' मे वुलाया और मांगलिक रूप मे दो-दो रुपये उनके हाथ मे देते हुए कहा—'मेरी तरफ से इनके वताशे वाटना और दीक्षा लेकर संयम की अच्छी तरह साधना करना।'

द्वेषी लोका रावजी कनै रे. कीधी विविध प्रकार।
पिण रावजी कह्यो लोकां भणी रे, हुंतो नही वरजूं लिगार॥
वलि साधा भणी कहिवावियो रे, आप खुशी रहिजो मन मांहि।
दोय माला अधिकी फेरज्यो रे, म्हारी तरफ सू ताहि॥
न्यातीला ना परिसह थकी रे, तीन सेठा रह्या ताम।
शिवजी रत्न कर्मचन्द ना रे, रह्या अति दृढ परिणाम॥

(जय सुजश ढा० ६ गा० ८, १० से १४)

सं० १८७६ मृगसर वदि १ को रत्नजी एवं शिवजी (८२) ने पत्नी को छोड़कर मुनिश्री हेमराजजी के हाथ से दीक्षा ग्रहण की। मुनि कर्मचदजी (८३) ने अविवाहित वय मे मुनिश्री से उसी दिन दीक्षा ली। पढिये निम्नोक्त संदर्भ—

सवत अठार छिहंतरे, सुरगढ सैहर मझार।
हेम जीत नव सत सू, चउमासो सुखकार।
जाति 'खीवसरा' रत्नचद, माद्रेचा 'शिव' नाम।
जाति 'पोखरणा' कर्मचद, ए तीनू अभिराम।
तात भ्रात त्रिय रत्न तजि, शिवजी त्यागी नार।
बहु हठ करि लेइ आगन्या, हेम हस्त व्रत धार।
अति महोत्सव आडबरे, उभय तुरग असवार।
आगल गज वाजित्र ना, वाज रह्या झिणकार।
गोकलदासजी रावजी, रत्नचद शिव हाथ।
दोय दोय रूपइया दिया, मगल अर्थ सुजात॥
रूपा नाणा री बोवणी, म्हांरी तरफ सू ताय।
प्रवर पतासी वाटजो, वर महोच्छव अधिकाय॥
जोग चोखे चित्त पालजो, इह विध शिक्षा दीध।
मृगसिर मे सजम लियो, जग माहै जश लीध॥
तिण हीज दिन दिक्षा ग्रही, कर्मचद सुखकार।
मात तात भगिनी तजी, दादो काको धार॥

(कर्मचद गुण वर्णन ढा० १ दो० १ से ८)

रावजी दिख्या महोच्छव करायो रे, दो-दो रुपया दिया कर माह्यो रे।
म्हांरी तरफ सू पतासा वटायो॥
चोखो पालजो जोग श्रीकारो रे, गोकलदासजी रा वैण धारो रे।
हेम दीधो है सजम भारो॥
कर्मचंद छाड्या मा तातो रे, वाल पणै वैरागी विख्यातो रे।
त्रिया छाडी रत्न शिव साथो॥
एक दिन लियो सजम भारो रे, ज्यांरा मेट्या है दुख अपारो रे।
ओ तो हेम तणो उपगारो॥

(हेम नवरसो ढा० ५ गा० ४० से ४३)

मृगसर मे दिक्षा त्रिहुं रे, शिवजी रत्न विहु साथ।
मोहछव कराया रावजी रे, वे-वे रुपया दिया हाथ॥
कह्यू रूपा नाणा री बोहिणी रे, मंगलीक छै ताय।
म्हारी तरफ सू वांटज्यो थे, पतासी मोहछव माय॥

तात भ्रात त्रिया तजी रे, खीवेसरो रत्नचद।
माद्रेचा शिव व्रत ग्रह्यू रे, तजि त्रिया नो फंद ॥
पछै तिणहिज दिन सजम लियो रे कर्मचन्द सूकुमार।
जननी तात भगनी तजी रे, काको दादो परिवार॥

(जय सुजश ढा० ६ गा० १५ से १८)

हेम हजारी हियै विमल, सवत अठारै तास।
छिहतरे चित चूप सू, सुरगढ कियो चौमास॥
जवर वैराग हुयो जदी, तीन वैरागी तत।
सत हुवा गुण सागरू, मिलिया हेम महत॥
रत्न खिवैसरो जात वर, मादरेचो शिव माण।
कर्मचंद कीधी जवर, पोखरणे पहिछाण।
त्रिय तजी ने रत्न शिव, कर्मचद सुकुमार।
इक दिन चरण समापियो, हेम हरष हुसियार।

(शिव चोढालिया ढा० १ दो० २ से ५)

उक्त तीनो दीक्षाए एक दिन हुई इसका सर्वत्र उल्लेख है पर उपर्युक्त जय सुजश ढा० ६ गा० १८ मे लिखा है कि कर्मचदजी ने उसी दिन कुछ समय पश्चात् संयम ग्रहण किया।[1]

२. मुनिश्री रत्नजी बड़े वैरागी, पापभीरु, पढ़े लिखे और गणित के अच्छे जानकार हुए। साधु-क्रिया मे विशेप सावधानी रखते थे। उन्होने उपवास, वेले तेले तथा वहुत थोकड़े किये। ऊपर मे एक महीने तक का तप किया। (ख्यात)

३. उन्होने स० १६०० मे 'गुरला' (पुर के पास) ग्राम मे अनशन पूर्वक 'पडित मरण प्राप्त किया।[2]

---

१. 'पछै तिण हिज दिन सजम लियो रे, कर्मचद सुकुमार।'

२. मासखमण प्रमुख तप कीधो, रत्न ऋपि गुणधारो रे।
परभव उगणीसे मुनि पहुतो, गुरला मे सथारो रे।

(शासन-विलास ढा० ३ गा० ३८)

अणसण रत्न सुआदर्यो, उगणीसै इधकार।
निपुण वैरागी निरमलो, परम स्वाम सू प्यार॥

(शिव चोढ़ालियो ढा० १ दो० ६)

जयाचार्य ने उनकी स्मृति मे लिखा है—
रत्न सरीखो रत्न ऋपि गुण सार कै, हेम ऋषि संजम दियो जी।
छाड त्रिया धन छीहतरे चरण धार कै, ऋपिराय तणै वारे चल्याजी।

(सत गुणमाला ढा० ४ गा० ४६)

८२।२।३३ मुनिश्री शिवजी (देवगढ़)

(सयम पर्याय स० १८७६-१९१३)

लय—म्हांरै रे हाथ में नवकरवाली···

शिवजी स्वामी शिव सुखकामी, नामी सद्‌गुण धामी।
रमे भिक्षु गण गुलशन में वन संयम के अनुगामी।
ध्याऊं पल-पल शिव शिवकारी ।।ध्रुव० ।।१।।
सिद्ध शिला सर्वार्थ-सिद्धि से, बारह योजन ऊंची।
तदुपरि योजन-अग्रभाग मे, है सिद्धों की सूची[1] ।।ध्याऊ···२।।
अजर अमर अक्षय अविकारी, शाश्वत सुखी निरोगी।
अमित ज्ञान-दर्शन-उपयोगी, अविचल अतनु अयोगी ।।३।।
दु:ख नहीं दारिद्र्य नही है, नहीं शोक की छाया।
भूख प्यास क्या सर्दी गर्मी, नही मोह मद माया ।।४।।
सत्य शिव सुन्दरं का ही, है साम्राज्य निराला।
आत्म-स्वरूप अनूप सुशोभित, आठ गुणों की माला ।।५।।
शिव ने शिवपुर मे जाने की, की पूरी तैयारी।
चरण-रत्न मुनि हेम हाथ से, लिया विरतियुत भारी ।।६।।

गीतक-छन्द

देवगढ़ मेवाड़ भू पर पूर्वजों का वास था।
संग से श्री हेम मुनि के मिला बोध-प्रकाश था।
साल अष्टादश शतक पर छिहतर की आ गई।
छोड़ स्त्री को बने साधक जिदगी पाई नई ।।७।।

लय—म्हांरै रे हाथ मे नवकरवाली···

सरल भद्र विनयी सुविवेकी, शुद्धाचार विचारी।
समिति गुप्ति मे प्रगति निरतर, करते आत्मोद्धारी ।।८।।

क्षमाशील थे शील गुणों की, नीति-रीति अनुयायी।
कर उपशांत कषाय बने है, शान्त सुधा-रस पायी ॥९॥

रामायण-छन्द

ज्ञानी ध्यानी स्वाध्यायी थे श्लोक हजारों सीख लिये।
वाचन कर सूत्रादिक का बहु प्रमुख प्रमुख स्थल याद किये।
निज पर मत की झीणी-झीणी चर्चाएं की हृदयगंम।
देते थे व्याख्यान मधुरतम लगता था सबको प्रियतम[३] ॥१०॥

लय—म्हांरै रे हाथ में नवकरवाली···

त्याग विराग भावना बढ़ती, तप की शिखा चढ़ाई।
शीत ताप बहु सहा निरन्तर, वीर वृत्ति अपनाई[४] ॥११॥
पुर-पुर में विहरण कर मुनिवर, शिक्षामृत बरसाते।
बड़े प्रभावित होकर उनके, स्व-पर-मती गुण गाते[५] ॥१२॥
गुरु आज्ञा पर ध्यान अधिकतर, शासन प्रेम सुरंगा।
च्यार तीर्थ में सुयश सलिल की, बही समुज्ज्वल गंगा ॥१३॥
मर्यादाएं और हाजरी, सुनने में रस लेते।
सविधि पालते और पलाते, छूट न किसको देते ॥१४॥
श्री मज्जयाचार्य की उन पर, कृपा दृष्टि थी अच्छी।
समय समय पर वत्सलता की, छवि दिखलाते सच्ची ॥१५॥

दोहा

नव दिन सेवा सुगुरु की, करके किया विहार।
राजनगर में 'जीव' सह, पावस आखिर कार[६] ॥१६॥
एक मास का तप वहां, कर पाये मुनि स्वस्थ।
धीरे धीरे आ गये, अनशन के निकटस्थ ॥१७॥

रामायण-छन्द

भाद्रव विद बारस को प्रातः गये पंचमी पुर बाहर।
वापस आते समय खिन्न तनु होने से मुनि चिंतन कर।
कहा जीव मुनि को साहस युत मुझे कराओ अब अनशन।
अंतिम घड़ियां निकट आ रही है उर्ध्वगत मेरा मन ॥१८॥

कहा जीव ऋषि ने मुनि शिव से रखें धैर्य धर अति उल्लास।
दूगा मै सहयोग आपको करिये पहले तप अभ्यास।
क्रमशः तेला किया उसी दिन चतुर्दशी की पश्चिम रात।
साग्रह अनशन लगे मांगने करते वीर वृत्ति से बात ॥१९॥
कहा किसी ने करे पारणा तेले का तो ऋषिवर ! आज।
होगा परभव में संभवतः निकली ओजभरी आवाज।
देख भावना चेतन मुनि ने अनशन करवाया तत्काल।
समाचार सुन जन वदन हित आते गाते सुयश रसाल ॥२०॥

दोहा

तीन पाव जल से अधिक, पीने का परित्याग।
दिन भर में मुनि ने किया, बढ़ता परम विराग ॥२१॥
पढ़ते पत्र प्रयत्न से, देते बहु उपदेश।
वस्त्र सिलाई मांगते, प्रतिलेखन सुविशेष ॥२२॥
पंच दिवस कुछ जल लिया, फिर उसका परित्याग।
धन्य धन्य सब कह रहे, गाते गुण धर राग ॥२३॥
मेरे गुण क्यों गा रहे, गाओ गण-गणि-गान।
गीत स्वय के प्रिय नही, पर-गुण-श्रुति में ध्यान ॥२४॥
ऊऋण साधुओं हो रहे, तुम तो वन सहकार।
जाता मै परलोक में, ले उपकृति का भार ॥२५॥
कर दश विध आलोचना, क्षमायाचना सग।
होकर लीन समाधि में, भरते समता रंग ॥२६॥
कहा किसी ने मागने, पर-जल का आगार।
मै मांगूगा किसलिए, वोलो वचन विचार ॥२७॥

लय—म्हांरै रे हाथ में नवकरवाली···

पच दिवस अनशन तिविहारी, सात दिवस बिन पानी।
बारह दिन से सिद्ध हुआ है, छोड़ चले सहनाणी ॥२८॥
शतोन्नीस तेरह भाद्रव सित, बारस निशा सुहाई।
राजनगर की पुण्य धरा पर, चरमोत्सव छवि छाई ॥२९॥
कीर्त्ति कहूं मै क्या शब्दो में देता भाव-बधाई।
जय ने चार गीतिकाएं रच, मुक्त स्वर स्तुति गाई ॥३०॥

१. ऊर्ध्वलोक मे सौधर्म आदि १२ स्वर्गलोक, ९ नव ग्रैवेयक और उसके ऊपर पाच अनुत्तर विमान है। उनमे मध्यस्थित सर्वार्थ सिद्ध विमान से १२ योजन ऊपर सिद्ध शिला है। सिद्ध शिला से लोकान्त तक एक योजन (४ कोश) प्रमाण क्षेत्र है। उसके २४ वें भाग में सिद्ध है।

२. मुनिश्री शिवजी देवगढ (मेवाड़) के वासी और गोत्र से मादरेचा (ओसवाल) थे। उन्होंने स्त्री को छोडकर स० १८७६ मृगसर कृष्णा १ के दिन मुनिश्री हेमराजजी द्वारा देवगढ मे दीक्षा स्वीकार की। उनके साथ मुनि रत्नजी (८१) ने स्त्री को छोडकर दीक्षा ली तथा उसी दिन मुनि कर्मचन्दजी (८२) ने अविवाहित वय मे सयम ग्रहण किया। इन तीनो दीक्षाओ का विवरण मुनि रत्नजी के प्रकरण मे विस्तार पूर्वक दे दिया गया है।

३. मुनि शिवजी आचार-विचार मे कुशल, नीतिमान्, विनयी और हृदय से बड़े सरल थे। उन्होने हजारों श्लोक कठस्थ किये। सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओ की गहरी धारणा की। लेखन (प्रतिलिपि) भी बहुत किया। व्याख्यान भी रसीला देते थे।

(शिव मुनि गुण० व० ढा० १ गा० ३१ से ३३ तथा ख्यात)

४. मुनिश्री ने उपवास वेले आदि वहुत तपस्या की। ऊपर मे मासखमण, ३५ तथा ५१ दिन का तप किया। शीतकाल मे शीत वहुत सहन किया और उष्णकाल मे आतापना ली[1]।

५. मुनिश्री अग्रणी नही थे। अन्य सिंघाड वंध साधुओ के साथ उन्होने अनेक देशो मे विहरण किया[2]।

उनके चातुर्मासों की तालिका मुनि जीवोजी (८२) रचित गीतिका गाथा २५ से २८ मे है। लेकिन वहा जिन मुनियो के साथ मुनिश्री ने चातुर्मास किये उनके नाम नही है। यहां उन वर्षों मे जिन-जिन मुनियो के चातुर्मास जिन-जिन ग्रामो मे थे उनके नाम उन मुनियों के आख्यानादिक के आधार से दिये गए है। पढिये तालिका—

---

१. वर्ष घणा इम विचारजो रे, सखर कियो तप सार रे।
मासखमण पैंतीस वली रे, वलि एकावन अधिकार रे।।
शीतकाल वहु सी सह्यो रे, उष्णकाल आताप रे।
थिर चित्त शिव ऋप थाप नै रे, जप्या जिनेसर जाप रे।।

(शिव चोढालियो ढा० १ गा० २९, ३०)

२. मरुधर देश मेवाड मे रे, थली देश सुखकारो रे।
मालव, कच्छ, गुजरात मे रे, वली हाडोती ढूढाडो रे।।

(शि० चो० ढा० १ गा० ३४)

सं० १८७७ उदयपुर मुनिश्री हेमराजजी के साथ।
स० १८७८ आमेट " " "
स० १८७९ पीपाड़ " " "
स० १८८० पाली " " "
स० १८८१ जयपुर " " "
स० १८८२ गोगुदा " " "
सं० १८८३ आमेट " " "
स० १८८४ पुर " " "
सं० १८८५ पाली " " "
स० १८८६ वालोतरा
स० १८८७ माधोपुर
सं० १८८८ भगवतगढ
स० १८८९ जयपुर
स० १८९० बालोतरा जयाचार्य के साथ (मुनि अवस्था मे)
स० १८९१ गगापुर मुनिश्री स्वरूपचन्दजी के साथ।
सं० १८९२ गगापुर " " "।
स० १८९३ कांकडोली
सं० १८९४ जोजावर
स० १८९५ कटालिया
स० १८९६ पाली आचार्यश्री रायचन्दजी के साथ।
सं० १८९७ देवगढ
स० १८९९ आमेट
स० १९०० गगापुर
स० १९०१ देवगढ
स० १९०२ मोखणदा
स० १९०३ आमेट
स० १९०४ सिरियारी
स० १९०५ रायपुर
स० १९०६ देवगढ
स० १९०७ सीसोदा
स० १९०८ दुधोड
स० १९०९ देवगढ
स० १९१० आमेट
स० १९११ मोखणदा

स० १९१२ आमेट। मुनिश्री सतोजी (५९) के साथ।
स० १९१३ राजनगर। मु० जीवोजी (८६) के साथ। तीसरे मु० खूबजी (१४५) थे।

स० १८९९ जेठ वदि १३ को मुनिश्री भगजी (४९) के भीलवाड़ा मे स्वर्ग-गमन के समय मुनि शिवजी उनके साथ थे, ऐसा मुनि जीवोजी (८६) कृत भगजी मुनि की गुण वर्णन ढाल गा० ८ मे उल्लेख है।

६. मुनिश्री शिवजी का शासन के प्रति हार्दिक अनुराग था। आचार्यो के प्रति वे पूर्ण रूपेण समर्पित थे। सुविनीतो के साथ तालमेल रखते व अविनीतों से सदा दूर रहते थे। सघीय भावना उनके हृदय मे कूट-कूट कर भरी हुई थी। आचार्यो की आज्ञा और गण की मर्यादा का वडी सावधानी से पालन करते और अन्य मुनियों से करवाते।

(शिव मु० गु० व० ढा० १ गा० ११ से १४ के आधार से)

जयाचार्य का उन पर अच्छा अनुग्रह था। समय-समय वात्सल्य भरी दृष्टि से उनके हृदय को आल्हादित कर देते थे।

स० १९१२ (सावनादि क्रम से) के ज्येष्ठ महीने मे जयाचार्य देवगढ पधारे[1]।

उस समय मुनि शिवजी और माणकचन्दजी (९९) ने गुरुदेव के दर्शन किये[2]। मुनि शिवजी सघीय मर्यादा एव हाजरी सुनने की विशेप अभिरुचि रखते थे। एक दिन वे 'हाजरी'[3] नही सुन सके। इस प्रसग पर उनका जयाचार्य के साथ मधुर वार्त्तालाप हुआ वह निम्नोक्त पद्यो मे इस प्रकार है—

एक दिन न सुणी हाजरी, जय गणीवर पूछत।
वारु मर्यादा नी वारता, क्यू न सुणी शिव सत॥

---

१. उगणीसै तेरे समै, ज्येष्ठ मास सुखकार।
जयगणि सुरगढ आविया, वहु सत परिवार॥
(शिव० चो० ढा० २ दो० १)

इस गाथा मे स० १९१३ लिखा है वह विक्रम सवत् (चैत्रादि क्रम से) समझना चाहिए।

२. माणक शिव आदि मुनि, दर्शण करिवा देख।
आया अति आनद सू, वारु हरष विसेख॥
(शि० चो० ढा० २ दो० ३)

३. सघीय मर्यादाओ का चतुर्विध सघ मे वाचन।

कहै शिव रुखवाली करण, राख्यो माणक ताय।
मुज मन अति सुणवा तणो, नटू केम मुनिराय॥
जय कहै अवर मुनि भणी, रुखवाली राखत।
मुज भणी क्यू न जताबियो, अब मत कर मन चिंत॥
पश्चात्ताप करतो घणो, न सुणी आज मर्याद।
वचन मांहे अति हरष रस, वदै चित अहलाद॥
दिवस दूसरे हाजरी, जय वाचता जाण।
शिव भणी याद कियो सही, लीधो निकट वेसाण॥
शिव चित्त अति प्रसन्न थयो, याद कियो महाराज।
अधिक कृपा मुझ ऊपरे, जाण्यो धिन-धिन आज॥
गुणग्राही एहवो गुणी, स्वामधर्मी सुवनीत।
वैरागी मुनि वालहो, निपुण न्याय वर नीत॥

(शि० चो० ढा० २ दो० ६ से १२)

मुनि शिवजी ने जयाचार्य की ९ दिन सेवा की। फिर आचार्यश्री की आज्ञा से विहार कर स० १९१३ का अन्तिम चातुर्मास मुनि जीवोजी (८६) के साथ राजनगर किया। तीसरे सत मुनि खूवजी (१४५) थे[1]।

७. मुनि शिवजी ने चातुर्मास के प्रारभ मे मासखमण किया[2]। कुछ दिन बाद भादवा वदि १२ को उपवास, १३ को वेला और चतुर्दशी को तेला किया। उसी दिन रात्रि के पश्चिम प्रहर मे वे अनशन मागने लगे। उस समय किसी ने कहा—'आज आप तेले का पारणा करें।' मुनिश्री बोले—'पारणा सभवत. परलोक मे होगा[3]।'

इस तरह उनकी वढती हुई भावना देखकर मुनि जीवोजी ने उन्हे आजीवन

---

१. सुरगढ नव दिन आसरै, शिव ऋण सखर सुजाण।
सेव करी सतगुर तणी, अधिक उलट चित्त आण॥
जय गंणपत नी आण ले, विहार कियो तिणवार।
विचरत-विचरत आविया, नृपपुर सैहर मझार॥
जीवराज शिव खूवजी, सत तीन चौमास।
वर उपगार वधावियो, शिव दिल अधिक हुलास॥

(शि० चो० ढा० २ गा० १३ से १५)

२. मासखमण लग कियो मुनिश्वर, चर्म चोमासा माह्यो।

(शि० चो० ढा० ४ गा० ४)

३. किणही कह्यो तिण अवसरै, कीजै पारणो तेला नो रे।
परभव हुतो दीसै पारणो, वचन सुमत रेला नो रे॥

(जीव मु० कृत ढा० १ गा० ९)

तिविहार संथारा करा किया[१]।

अनशन की सूचना मिलने पर अनेक गावो के लोग दर्शनार्थ आए। यथाशक्य नियम ग्रहण किये। त्याग वैराग्य की विशेष वृद्धि हुई।

मुनि श्री ने वर्द्धमान भावो से अनशन मे पानी पीने का भी परित्याग कर दिया। वे उस समय मे भी अध्यात्म पद्यों का वाचन करते, आगुतक भाई वहनो को धर्मोपदेश देते तथा साधुओ से प्रतिलेखन व सिलाई आदि मांगते[२]। इस प्रकार धर्म-जागरण करते हुए पाच दिनो के वाद चौविहार अनशन ग्रहण कर लिया। सभी प्राणियो के साथ क्षमायाचना और आत्मालोचन किया। दर्शनार्थी लोगो के आवागमन का ताता सा जुड गया[३]। कोई उनके गुणगान करता तो वे तुरत उसे टोकते हुए कहते—'आप मेरे गुणानुवाद न करे, इन साधुओं के गुण गाए। ये मुनि तो मुझे सहयोग देकर मेरे से ऋण-मुक्त हो गए है पर मैं तो इनके ऋण-भार से मुक्त नही हुआ, अब मैं इन सवसे विछुड़ने वाला हू किन्तु इनके उपकार को कभी नही भूल सकता[४]।'

किसी ने कहा—'मुनिश्री के मागने पर जल पीने का आगार है।' यह

---

१. चवदश पाछली निस पिछाण, अणसण मांगै वारुवार।
वहु हठ कीधा चेतन संत, सखरो पचखायो सथार।
जावजीव नो अधिक उदार, तीनू आहार तणो परिहार॥
(शि० चो० ढा० २ गा० ५)

२. सीवणो माग्यो सता कन्है, वलि पडिलेहण मागता रे।
उपदेश देता भव जीव नै, वारु पाना वाचंता रे॥
(जी० मु० कृत ढा० १ गा० १३)

३. चोरासी जीवा जोन खमावै रे, आलोवण कर नै शुद्ध थावै रे।
वर सवेग रस वरसावै रे॥
पच दिवस अल्प जल लीधो रे, पछै चोविहार अनशन कीधो रे।
अति उचरंग प्रकट प्रसिधो॥
गाम-गांम ना लोक आवता रे, गुण शिव ऋप ना गावता रे।
परम आणद हरप पावता॥
(शि० चो० ढा० ३ गा० ४ से ६)

४. गुण मत गावो कोई माहरा, गुण यां सतां रा गावो रे।
म करो कच्ची वात मो कनै, चोखी वातां सुणावो रे॥
ए मांसू उरण होय गया, हूं तो उरण न हूवो रे।
ए उपगार किम वीसरु, हिव तो जातो दीसू जूओ रे॥
(जीव मु० ढा० १ गा० ११, १२)

सुनकर शीघ्र बैठे होकर तपाक से बोले—'तुम ऐसी बेकार बात क्यों कर रहे हो, मैंने तो स्वेच्छा से चौविहार अनशन किया है अतः पानी कैसे मांगूंगा ? मुनिश्री की दृढ़ता व जागरूकता से सभी गद्गद् हो गए[1]।

मुनिश्री ने समता-भाव में रमण करते हुए सात दिनों के चौविहार अनशन से सं० १९१३ भाद्रव शुक्ला १२ को रात्रि के समय राजनगर मे पडित मरण प्राप्त किया। उन्हे तीन दिन की सलेखना, पाच दिन का तिविहार और सात दिन का चौविहार अनशन आया[1]।

आर्या दर्शन ढा० ५ सो० ३ मे भी मुनिश्री के स्वर्गवास होने का उल्लेख है—

दोय पहुंता परलोग रे, चरण अठारै छिहतरे।
चौविहार शुभ जोग रे, सुरगढ वासी शिव ऋषि॥

'दोय पहुता परलोग रे' का तात्पर्य है कि इस वर्ष मुनि शिवजी और मुनि पुजोजी (८८) दिवगत हुए।

८. जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणोत्कीर्त्तन का चोढालिया वनाया। उसकी तीन ढालों का रचनाकाल स० १९१३ चैत्र शुक्ला १० और चौथी ढाल का स० १९१४ द्वि० जेठ सुदी ४ है।

ढाल १ मुनिश्री जीवोजी (८६) कृत प्राचीन गीतिका सग्रह मे है।

जयाचार्य द्वारा उनकी विशेषताओं के सदर्भ मे रचे हुए कुछ पद्य—

शिवजी-शिवजी होय रह्यो रे, शिवजी सखर सयाण रे।
शिव गुण सागरु, अधिक जोजागरु॥
प्रकृति सभावे पातली रे, मंद चोकडी माण रे।
त्रिय सग विप जाणी तज्यो रे, कांई परम धर्म पहिछाण रे॥
सत सजम तप सूरमो रे, दान ब्रह्म दैदीप रे।
उत्तम ऋष गुण आदर्‌या रे, कांइ जत सत इद्रया जीप रे॥
सता में शोभा घणी रे, समणी ने सुखदाय रे।
श्रावक ने वहु श्रावका रे, शिव सगला ने सुहाय रे॥

---

१. भाद्रवा सुदि वारस भली रे, निस सीझ्यो सयारो विशाली रे।
मुनि आतम ने उजवाली॥
सवत् उगणीसै तेरे उदारी रे, भाद्रवा सुदि वारस भारी रे।
मुनि पोहता परलोक मझारी॥
(शि० चो० ढा० ३ गा० ११, १२)

२. प्रथम तीन दिन अठम भक्त नां, पच दिवस तिविहारं।
चौविहार दिन सात पनरै दिन मे, मुनि पोहता पारं॥
(शि० चो० ढा० ४ गा० ६)

स्वमति मे प्रसंसा घणी रे, कांई देश प्रदेश दीपाय रे।
अन्यमति पिण आय नैं रे, कांई शिवजी ना गुण गाय रे।।
अखड आचार्य आगन्या रे, काई आराधी उचरंग रे।
थिरचित शासण थापवा रे, रूप दिन-दिन चढ़ते रंग रे।।
सार सिद्धत वहु वाचिया रे, वर मुख पाठ विनांण रे।
ग्रंथ हजारां महामुणी रे, शिवजी सखर सुजांण रे।।
दीयैं मुनि हद देशनां रे, वारु सखर वखाण रे।
स्वमति ने अन्यमति तणी रे, झीणी चरचा नो जांण रे।।

(शि० चो० ढा० १ गा० २, ३, ९ से १२, ३२, ३३)

सरल भद्र गुण अधिक सोभता, मृदु मार्दव मन जीतं।
एक दृष्टि वर आणा ऊपर, परम सद्गुर सूं प्रीतं।।
शासण भार धुरा धोरी जिम, अखड आण पद मडैं।
पिडत मरण आगमैं मुनिवर, पिण ते गण नवि छंडैं।।

(शि० चो० ढा० ४ गा० २, ३)

८३।२।३४ मुनि श्री कर्मचंदजी (देवगढ़)

(संयम पर्याय सं० १८७६-१९२६)

लय—मुनि घर आये आये···।

कर्मचन्दजी स्वामी रे, कर्मों की व्याधि मिटाने,
वैद्य घर आये आये, वैद्य घर आये।।ध्रुव०।।
रोगों से होता तन शक्ति-विहीन ज्यो,
कर्मो से आच्छादित आत्मा दीन त्यो।
हो आधीन इतर के रे, भटकाती पाती वहुतर,
दुःख दुविधाए आये।।१।।
आत्मा चेतन कर्म अचेतनभूत है,
तेल तिलोपम दोनों एकीभूत है।
कर्मो की सब माया रे,
छाया धुधियाली उनकी घोर घन छाये।।२।।
सौ रोगों की एक दवा ज्यो आबहवा,
सब दोषों की त्याग-तपोमय एक दवा।
सुगुरु चिकित्सक कर से रे,
ले ली आस्था से मुनि ने, पथ्य रख पाये।।३।।
मेदपाट में पुर सुरगढ़ अभिराम है,
पोकरणा कुल-गोत्र स्वजन जन-धाम है।
'कर्म' जन्म शुभ पाये रे,
लाये संस्कार उच्चतम, भाग्य लहराये।।४।।
हेम व्रती की हृदय-स्पर्शिनी सुन वाणी,
हुई विरति जो प्रगति पंथ की सहनाणी।
दीक्षा स्वीकृति मांगी रे,
सुनकर अभिभावक जन ने, उन्हे धमकाये।।५।।

दोहा

फिर भी अपनी वात पर, सुत दृढ़ ज्यों चट्टान।
पिता पितामह मोह वश, मचा रहे तूफान ॥६॥

लय—सुपने की...

दादा आकर वोलता जी, हेम महामुनि पास।
'भंवर'[1] को दो मत दीक्षा जी
आंखें गीली हो रही जी, दिल तो अधिक उदास।
भंवर को दो मत दीक्षा जी
दो मत दीक्षा भंवर को जी, आप करो कुछ गौर ॥७॥

हाथ जोड़ अनुनय करूंजी महर रखो मां वाप !
इकलौता यह लाडला जी रे, जिससे वहु अनुताप ॥८॥

वूढ़ा सत्तर सालका जी, निकट-निकट अवसान।
दो पछेवड़ी कफन का जी, मै तो हूं महमान ॥६॥
माला जपते आपकी जी, वीते वारह वर्ष।
मानों मेरी प्रार्थना जी, मेटो सव संघर्ष ॥१०॥
हसित वदन मुनि हेम ने जी, वाक्य कहा वलवान।
आम्र-पाक की अवधि में जी, भजन फला लो मान।
भंवर को दो अव आज्ञा जी।
दो अव आज्ञा भंवर को जी, लो मजवूती धार।भं०॥११॥
सोचो समझो मर्म को जी, छोड़ो रुदन-विलाप।
पुत्र-दान का सूत्र में जी, गाया लाभ अमाप ॥१२॥
रोटी पानी वस्त्र का जी, स्थान और संतान।
अधिक-अधिकतम दान है जी, गाते श्री भगवान ॥१३॥
अवसर तरने का वड़ा जी, हरने का अध-भार।
धर्म-संघ वा धर्म से जी, जुड़ते अंतर पार ॥१४॥
हो हताश दादा उठा जी, चला गेह की ओर।
पथ में रोता जा रहा जी, निविड़ स्नेह का दौर ॥१५॥

---

१. पौत्र।

क्या तू मुझको रो रहा जी, क्या मै तुमको, कर्म ?
राग सुनाता इस तरह जी, घर आया हो गर्म ॥१६॥

दोहा

जनक हेम के चरण में, चल आया तत्काल।
वज्राहत सा हो व्यथित, वोला वचन निढाल ॥१७॥
जादू क्या इस पर किया, (क्या) पडी आपकी छाह।
भुरकी डाली क्या कहो, जिससे यह गुमराह ॥१८॥
समझाया मुनिवर्य ने, किन्तु न छूटा राग।
उथल-पुथल दिल में मची, स्वस्थ न रहा दिमाग ॥१९॥
की पुकार तव 'राव' से, है एकाकी नद।
अत: लगाए गौर कर, दीक्षा पर प्रतिबंध ॥२०॥

लय—खमा ३ रे…

वोलो ३ रे कर्मचंद वोलो, सव भाव हृदय के खोलो जी ओ।
घोलो ३ रे वचन रस घोलो, तुम न्याय तराजू तोलो जी ओ ॥ध्रुव०॥
रावला में 'राव' कर्मचन्द को बुला के, खुद पूछ रहे मधुभाषी जीओ।
नाम उठता है ऐसे कहते घर वाले,
क्यो बनता फिर सन्यासी जीओ ॥२१॥
नाम उठता है जब नाम शेष होता, चल सका नाम किस किस का जीओ।
जीवित समय में भी है नाम सब स्वार्थ का,
आस्वाद यथा किसमिस का जीओ ॥२२॥
होता मै तो लीन दिल से प्रभु के भजन मे, धर सत्त्व सतीवत् भारी जीओ।
करके मनाह आप वनते क्यों दोषी,
कुछ सोचें पुर-अधिकारी ! जीओ ॥२३॥
वोले तब राव तुमको देखने के खातिर, हमने तो यहां वुलाया जीओ।
काम न हमारे कोई दूसरा है भाई !
जा अभी जहा से आया जीओ ॥२४॥

रामायण-छन्द

बुला पुरुष आज्ञाकारी को दिया रावजी ने आदेश।
कर्मचन्द के स्वजन जनों को पहुचावो मेरा सदेश।

ज्ञान हुआ इसको इसकी तो गर्दन पर बैठे भगवान।
जिससे लेता योग भक्ति से भावित हो यह बाल महान ॥२५॥

गंगाजी जाने की करता मै तो खुद ही तैयारी।
रोकूगा न कभी मै इसको दोप रुकावट मे भारी।
पुत्र आपका है यह इस पर निर्णय करिए सोच विचार।
घर में रखो रहे तो चाहे सम्मति दो इच्छा-अनुसार ॥२६॥

दोहा

पर किंचित् करना नही, ऋपियों पर तकरार।
विन आज्ञा देंगे नही, वे तो संयम-भार ॥२७॥

इस प्रकार कहला दिया, ज्ञातिजनों को साफ।
कर्मचन्द को दी विदा, किया उचित इन्साफ ॥२८॥

रामायण-छंद

कहलाये फिर साधु जनों को भावभरे अपने उद्गार।
रहना यहां खुशी से मुनियों ! मन मे लाना नही विचार।
जप-माला भगवान नाम की जपते जितनी आप हमेश।
उससे ज्यादा दो माला फिर जपना सुन मम विनति विशेप ॥२९॥

दोहा

घर में रखने के लिए, नाना किये उपाय।
देख अडिगता 'कर्म' की, झुका स्वजन समुदाय ॥३०॥

अनुमति दी है चरण की, हेम शरण ली पीन।
चरणोत्सव की शहर में, रचना लगी नवीन ॥३१॥

रामायण-छन्द

भेजा पुरपति ने लवाजमा दीक्षोत्सव के समय उदार।
वर वनोरिया लगी निकलने छाई पुर में नई वहार।
दिये 'राव' ने वैरागी को दो रुपये सह शिक्षा खास।
वांटो मधुर वताशे इनके करना अच्छा योगाभ्यास ॥३२॥

लय—मूल

अष्टादश शत साल छिहंतर आ गया,
मृगशिर विद एकम दिन मगल छा गया।
दीक्षित कर मुनि श्री ने रे, रत्न व शिव-
कर्मचन्द के, रों रों विकसाये[१] ॥३३॥

गंगापुर में भेटे भारीमाल है, तीन शैक्ष मुनि भेंट किये सुविशाल है।
हो प्रसन्न गुरुवर ने रे, शिक्षार्जन करने वापस, उन्हें संभलाये ॥३४॥
चातुर्मास चार हेम के पास में, दो पावस ऋषिराय पूज्य पद-न्यास में।
फिरतो जय सेवा में रे, वर्षों तक विनय भक्ति से, शिक्षा फल खाये ॥३५॥

दोहा

चार किये ऋषि शान्ति सह, पावन चातुर्मास।
दिन प्रतिदिन करते गये, विद्या-विनय-विकास[२] ॥३६॥

लय—मूल

वालकवय में कुशाग्रीय कुशलाग्रणी धैर्य कला चातुर्य गुणाश्रित दृढ़प्रणी।
पढ़कर सभी जिनागम रे, समझे है कठिन स्थलों को, नही उकताये ॥३७॥
सूत्रों के वाचन की शैली स्पष्ट थी,
मुक्वातलिवत् हस्ताक्षर लिपि इष्ट थी।
ज्ञान ध्यान मे रमते रे, करते स्वाध्याय उद्यमी-श्रमण कहलाये[३] ॥३८॥

दोहा

जयाचार्य ने एकदा, दी शिक्षा भर सार।
ग्रहण आपने की मुदा, जैसे मुक्ता-हार[४] ॥३९॥

लय—मूल

विज्ञ विवेकी शांत दांत संवेग से, कभी वाहर आते क्रोधावेग से।
पाप भीरुता रखते रे, चखते रस स्वाद-
विजय का, विरति वल लाये ॥४०॥
शासन में अनुरक्त भक्त आचार्य के,
विशेषज्ञ गण-नीति रीति विधि कार्य के।
सुविनीतों की संगति रे, करते रख गति मति वैसी, सदा सहलाये[५] ॥४१॥

शत उन्नीस आठ में जय ने अग्रणी,
किया आपको जान योग्यता के धनी।
विचरे बहु प्रांतों में रे, भरसक कर यत्न अनेकों, व्यक्ति समझाये ॥४२॥

दोहा

चातुर्मासिक तालिका, मुनि श्री की साकार।
मिलती है कुछ वर्ष की, अन्वेषण-अनुसार[६] ॥४३॥

रामायण-छन्द

जोबनेर के रहने वाले वहुत बरड़ियों के परिवार।
उद्‌बोधन देकर समझाये की चर्चाएं भी वहुवार।
निकला क्षेत्र बने संस्कारी क्रमशः लाते गये निखार।
जयपुर में रह रहे आजकल पाते हैं प्रतिदिन विस्तार[७] ॥४४॥

सोरठा

ध्यान बनाया एक, रस आध्यात्मिक भर दिया।
पढ़ने से सविवेक, होती है एकाग्रता[८] ॥४५॥

दोहा

अच्छी शक्ति कवित्व की, रचना करते छेक।
'जयत्थुई' ढाले विविध, मिलती है कुछ एक[९] ॥४६॥

रामायण-छन्द

रहा जीत का अधिक अनुग्रह फरमाते वे हो प्रमुदित।
कर्मचन्द मोती मुनि दोनों शिष्य हमारे विनयान्वित।
बेटे का है खर्च एक का और एक का बेटी का।
पुरस्कार देना पड़ता है उनको हार्दिक-पेटी का[१०] ॥४७॥

लय—मूल

तप उपवासादिक अधिकाधिक मास है,
शीतकाल में शीत सहासोल्लास है।
दृष्टि निर्जरा वाली रे, रख करके मार्ग
प्रगति के, विविध अपनाये[११] ॥४८॥

शक्ति घटी जब वीदासर में खास है,
किया जीत सह अन्तिम वर्षावास है।
फिर जय गणपति आये रे, देकर के पोष सुधामय-वचन फरमाये ॥४९॥

आत्मालोचन सरल भाव से कर लिया,
क्षमायाचना कर मैत्री रस भर लिया।
चढ़े समाधि सौध में रे, उज्जवल भावो के सुदर, फूल बरसायें ॥५०॥

योग मिला श्री जय का कैसा भाग्य से,
मनः कामना सफल हुई सौभाग्य से।
सद्गुरु के चरणों में रे, आराधक होकर सकुशल, स्वर्ग पहुचाये ॥५१॥

साल सुखद छब्वीस ज्येष्ठ विद सप्तमी,
भार उतारा पार धन्य मुनि विक्रमी।
मुख-मुख महिमा फैली रे, जन-जन ने
मिलमिल मंगल, यशोगीत गाये[१२] ॥५२॥

गीतक-छन्द

साधुओं को बुलाकर के कहा जय ने उस समय।
अटल रहना भिक्षु गण में प्राण प्रण से हो अभय।
निभाना संयम सुखद कर अन्त मे पडित मरण।
कर्म चन्द्रोपम चढ़ाना कलश ले मगल शरण ॥५३॥

दोहा

जय ने अपनी कलम से लिखा कर्म-आख्यान।
पढो सुनो गावो गुणी, मुनि श्री के गुणगान[१३] ॥५४॥

१. मुनिश्री कर्मचन्दजी देवगढ (मेवाड) के वासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से पोखरणा थे। स० १८७६ का मुनिश्री हेमराजजी (३६) ने ६ ठाणो से देवगढ मे चातुर्मास किया। उस प्रवासकाल मे मुनिश्री के उद्‌बोधक उपदेश से बालक कर्मचन्दजी के मन मे वैराग्य भावना उत्पन्न हुई। उन्होने अपने विचार अभिभावको के पास रखे तब परिवार वाले दीक्षा की स्वीकृति के लिए इन्कार हो गये और उन्हे नाना प्रकार के कष्ट देने लगे। परन्तु कर्मचन्दजी अपने लक्ष्य से किंचिद् मात्र विचलित नही हुए।[1]

कर्मचन्दजी के दादा मोहवश विलापात करते हुए हेमराजजी स्वामी के पास गये और बोले—'मुनिश्री ! मै सत्तर साल का हो गया हू, अब अधिक दिन जीने वाला नही हू, केवल कफनरूप दो पछेवड़ी (चद्दर) का मेहमान रहा हू, इसलिए आपसे निवेदन है कि आप मेरे पौत्र कर्मचन्द को दीक्षा न दे। आपके नाम का भजन करते हुए मुझे बारह वर्ष हो गये है अतः मेरी इस विनती को स्वीकार करे।'[2]

---

१. घर का आज्ञा दे नाही रे, बहु उपसर्ग दीधा त्याही रे।
कर्मचद न मानै कांई रे॥
(कर्मचद० ढा० १ गा० ४)

२. दादो हेम समीपे आवै रे, मोहवसे घणो विललावै रे।
ओ तो मन मांहि दुख अति पावै रे।
थयो सित्तर वर्ष नो जाणी रे, दोय पछेवड़ी नो पहिछाणी रे।
पाहुणो छू वदै इम वाणी रे।
म्हारा पोता नै दिख्या म देवो रे,म्हारी अर्ज हीया मे वेवो रे।
म्हारा कर्मा नै मति लेवो रे।
थारो भजन करता नै उदारो रे, मोनै वर्ष हुवा छै बारो रे।
मांहरी वीनतड़ी अवधारो रे।
(कर्म० ढा० १ गा० ५ से ८)

उक्त गाथा का तात्पर्य—

मुनिश्री हेमराजजी ने स० १८६४ का चातुर्मास देवगढ़ मे किया था (हेम नवरसो ढा० ४ गा० १२)। उस चातुर्मास मे सम्भवतः मुनि कर्मचन्दजी के दादा समझकर तेरापथी बने या उनकी विशेष रूप से धार्मिक रुचि हुई। फिर मुनिश्री का १२ वर्षो के पश्चात् स० १८७६ का चातुर्मास वहा हुआ। इससे लगता है कि कर्मचन्दजी के दादा ने इसी दृष्टि से कहा होगा कि मुझे आपके नाम की माला जपते बारह वर्ष हो गये।

मुनिश्री ने मुस्कराते हुए कहा—'जिस प्रकार आम का वृक्ष बारह वर्षो से फलता है ठीक उसी तरह आपका भजन फल गया है। आपका पौत्र दीक्षा के लिए तैयार हुआ है इसे आप सहर्ष अनुमति प्रदान करे।'[1]

यह सुनते ही दादा हताश होकर उठा और बाजार के रास्ते मे 'हा! कर्मचन्द! हा! कर्मचन्द! क्या मै तुम्हे रो रहा हू या तुम मुझे रो रहे हो' इस प्रकार रुदन करता हुआ अपने घर पहुचा। थोड़ी देर बाद ही कर्मचन्दजी का पिता मुनिश्री के निकट आया और बोला—'हेमा बाबा! आप मेरे पुत्र को दीक्षित न करे। इससे मुझे वज्राघात की तरह दुख हो रहा है।' मुनिश्री ने उनको शान्ति से समझाया पर उन पर कोई असर नही हुआ। वह वापस लौट गया।

फिर परिवार वालो ने रावजी से पुकार करते हुए कहा—'हमारे एक ही बेटा है, इसके साधु बनने से हमारा नाम उठ जायेगा और वश परम्परा खत्म हो जायेगी अत: आप इसे समझाने का प्रयास करे।'

रावजी गोकुलदासजी ने कर्मचन्दजी को बुलाकर उक्त बात कही तो वे बोले—'मनुष्य जब परलोक मे जाता है तब उसका नाम शेष हो जाता है। आप ही बतलाइये कि अब तक इस धरती पर किस-किस का नाम चल सका है। जीवित व्यक्ति को भी जब तक स्वार्थपूर्ति होती है तब तक लोग याद करते है, अन्यथा सगे-सम्बन्धियो को भी ठुकरा देते है। मै अपनी इच्छा से भगवान् की भक्ति के लिए साधुत्व स्वीकार करता हू, इसमे यदि बाधा देगे तो आप भी दोषी बनेगे।'

कर्मचन्दजी के यौक्तिक जवाब को सुनकर रावजी बोले—'हमने तो तुम्हे देखने के लिए बुलवाया था, दूसरा कोई काम नही है।' उन्होंने तत्काल आरक्षक पुरुष को बुलाकर कहा—'इनके घर वाले व्यक्ति जो बाहर खडे है उन्हे कह दो कि इसकी गर्दन पर तो भगवान् विराजमान हो गये है अत यह आत्मप्रेरित होकर योग साधना के लिए उद्यत हो रहा है। मै जब स्वय गगाजी जाने की तैयारी कर रहा हू तब इसे मना करके दोष का भागी कैसे बन सकता हू? इस सदर्भ मे तो तुम लोग ही चिन्तन करो। यह तुम्हारी सन्तान है अत. जैसा उचित समझो वैसा करो। लेकिन साधुओ के प्रति किंचिद् मात्र भी तकरार मत करना क्योकि वे तुम्हारी आज्ञा के बिना इसे साधु नही बनायेगे।' रावजी ने इस प्रकार ज्ञातिजनों को कहलाकर कर्मचन्दजी को विदा किया।

रावसाहब ने मुनि वृद को कहलवाया—'आप यहा सानद रहे, किसी प्रकार

---

१. जब हेम कहै इम वायो रे, थारो भजन फल्यो सुखदायो रे।
बारै वर्ष आबो फलै ताह्यो रे॥
(कर्म० ढा० १ गा० ६)

का विचार न करे। हमेशा जितनी माला का जाप करते हैं उसके अतिरिक्त मेरी ओर से दो माला का जाप और अधिक करें।"[1]

इस प्रकार रावजी ने समझदारी से काम किया जिससे पुर जन मे उनकी अच्छी प्रतिष्ठा हुई।

अभिभावक जनो ने कर्मचन्दजी को घर मे रखने के लिए नाना प्रकार के उपाय किये पर उनकी दृढता देखकर आखिर उन्हे दीक्षा की स्वीकृति देनी पड़ी।[2] कर्मचन्दजी के साथ रत्नजी और शिवजी दो दीक्षार्थी भाई और थे। उन सबका राजकीय लवाजमा के साथ धूमधाम से दीक्षा महोत्सव किया गया। रावजी गोकुलदासजी ने वैरागी भाइयो को बुलाकर मागलिक रूप मे दो-दो रुपये देते हुए कहा—'इनके वताशे वाटना और साधु-क्रिया का सम्यक् पालन करना।'

तत्पश्चात् स० १८७६ मृगसर वदि १ को देवगढ़ मे मुनिश्री हेमराजजी ने मुनि रत्नजी(८१) शिवजी(८२) और कर्मचदजी को दीक्षा दी। मुनिश्री कर्मचदजी ने अविवाहित वय मे माता, पिता, दादा, चाचा तथा वहन को छोड़कर सयम ग्रहण किया। मुनिश्री रत्नजी तथा शिवजी की दीक्षा उसी दिन पहले और मुनिश्री कर्मचदजी की उसी दिन वाद मे दीक्षा हुई।[3]

उक्त तीनो दीक्षाओं का विस्तृत वर्णन मुनिश्री रत्नजी (८१) के प्रकरण मे कर दिया गया है।

---

१. साधा नै रावजी कहिवायो रे, आप सुखी थका रहिज्यो ताह्यो रे।
पिण मन मे म आणजो कांयो रे।
सदा माला फेरो सुखदायो रे, तिणहिज रीत चित्त चाह्यो रे।
माला फेरजो हरप सवायो रे।
अधिकी दोय माला सुरीतो रे, रावजी री तरफ री वदीतो रे।
आप फेरजो धर अति प्रीतो रे।
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० २७ से २९)

२. कर्मचद भणी घर माह्यो रे, राखण न्यातीला किया उपायो रे।
ओ तो अडिग रह्यो अधिकायो रे।
राखण समर्थ नही घर माह्यो रे, जव न्यातीला आज्ञा दीधी ताह्यो रे।
हेम हाथ चरण सुखदायो रे।
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३०, ३१)

३. तिणहिज दिन दीक्षा ग्रही, कर्मचन्द सुखकार।
मात तात भगिनी तजी, दादो काको धार।
वहु हठ कर ले आगन्या, लीधो सजम भार।
(कर्म० गु० ढा० १ दो० ८, ९)

२. मुनिश्री हेमराजजी १२ ठाणों से देवगढ से विहार कर गंगापुर पधारे। वहा भारीमालजी स्वामी के दर्शन कर तीनो नवदीक्षित मुनियों को गुरु-चरणों मे समर्पित किया। आचार्यश्री मुनिश्री द्वारा किये गये उपकार से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने शिक्षार्जन के लिए तीनों मुनियो को वापस मुनिश्री को सौप दिया।[1]

मुनि कर्मचन्दजी ने हेमराजजी के साथ चार चातुर्मास किये—स० १८७७ मे उदयपुर, स० १८७८ मे आमेट, सं० १८७९ मे पीपाड़ और स० १८८० मे पाली। फिर आचार्यश्री रायचदजी की सेवा मे दो चातुर्मास किये—स० १८८१ का पीपाड और १८८२ का पाली।[2]

ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० १२ मे उल्लेख है कि ऋषिराय ने स० १८८१ पोष शुक्ला ३ को मुनिश्री जीतमलजी को अग्रणी बनाया तब मुनि कर्मचदजी, वर्धमानजी, जीवराजजी को उनके साथ दिया।[3] इससे यह प्रश्न होता है कि जब मुनि कर्मचन्दजी मुनि जीतमलजी के साथ थे तब आचार्यश्री रायचन्दजी के साथ स० १८८२ का चातुर्मास कैसे किया ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि मुनिश्री जीतमलजी उक्त तीनो मुनियो के साथ जिस समय मेवाड़ पधारे उस समय मुनिश्री स्वरूपचदजी (६२) भी सं० १८८१ का उज्जैन (मालवा) चातुर्मास कर एव तीन मुनियो—पुजोजी (८८), हिन्दूजी (९१) धनजी (९२) को दीक्षित कर ८ ठाणो से नाथद्वारा (मेवाड़) पधारे। वहां दोनो बन्धुओ का मिलन हुआ। फिर मुनिश्री स्वरूपचदजी और

---

१. तीनू ने दीक्षा देई विशालो रे, हेम आया गगापुर चालो रे।
तिहा भेट्या पूज भारीमालो रे॥
भारीमाल तीनू नै तिवारो रे, सूप्या हेम भणी सुविचारो रे।
हेम परम विनीत उदारो रे॥
(कर्मचन्द गु० व० ढा० १ गा० ३२, ३३)
दीख्या दे पूज्य पासे लायो रे, भारीमाल हर्ष बहु पायो रे।
जाण्यो हेम उपकार सवायो॥
(हेम० ढा० ५ गा० ४४)

२. हेम पास चौमासा च्यारो रे, पचमो छठो अवधारो रे।
ऋषिराय समीपे सारो रे॥
(कर्मचद गुण व० ढा० १ गा० ३५)

३. "जीत अने वर्धमानजी रे, कर्मचद ने इकतार।
जीवराज साधु गुणी रे, यां नै मेल्या देश मेवाड़॥"
(ऋषिराय सुजश ढा० ८ गा० १२)

जीतमलजी ने १२ ठाणों से कटालिया (मारवाड़) मे ऋषिराय के दर्शन किये।
(स्वरूप नव० ढा० ६ गा० १३ से १५ के आधार से)

वहा ऋषिराय ने मुनिश्री जीतमलजी का चातुर्मास उदयपुर फरमाया। उनके साथ मुनि हिन्दूजी (६१) को दे दिया और मुनि कर्मचदजी को अपने साथ रख लिया।[1]

मुनि कर्मचन्दजी ने स० १८८३ से स० १९०४ तक के प्राय. चातुर्मास मुनिश्री जीतमलजी के साथ किये।[2]

बीच-बीच मे कई चातुर्मास अलग किये। जिनका उल्लेख इस प्रकार मिलता है।

स० १८८८ मे ऋषिराय ने मुनिश्री जीतमलजी के साथ कच्छ, गुजरात की यात्रा की तब मुनि कर्मचदजी साथ थे। आचार्यश्री ने स० १८८९ का उनका तीन साधुओं से चातुर्मास 'बेला' करवाया।[3]

स० १८९३ के बीकानेर चातुर्मास मे वे मुनिश्री जीतमलजी के साथ थे। वहां उन्होने कार्तिक वदी ३ के दिन भगवती सूत्र की प्रतिलिपि की थी।

स० १८९६ के शेषकाल मे युवाचार्यश्री जीतमलजी ने अपने पास से मुनि कर्मचन्दजी और रामजी (१०८) को आमेट चातुर्मास के लिए भेजा।[4] मुनिश्री कर्मचन्दजी ने स० १८९७ का चातुर्मास आमेट किया। तीसरे सत मुनि जवानजी थे।

सरदार सती ने दीक्षा लेने के लिए उदयपुर जाते समय आमेट मे मुनि जवानजी (५०) तथा मुनि कर्मचन्दजी के दर्शन किये थे, ऐसा सरदार सुजश मे

---

१. चिहु ठाणै ऋषि जीत नो, करायो उदयपुर चौमास।
सग वर्धमान (६७) तपसी भलो, वृद्ध जीव (८६) हिन्दु (६१) गुण रास।
(जय सुजय ढा० १० गा० ६)

२. पछै जीत पास सुविचारो रे, घणा चोमासा किया उदारो रे।
तिण रै जीत सू पीत अपारो रे।
(कर्मचद गु० व० ढा० १ गा० ३६)

३. जद कर्मचद नें सत मोती (७७), वलि कृष्णचदजी (१०४) ने तदा।
ए तीनू ने चौमास बेले, ठहराय नै गणपति मुदा।।
(जय सुजश ढा० १९ गा० १२)

४. ऋषि कर्मचंद राम नै कांई, आवावती चौमास।
भोलाय मुनि चिहुं सग ले आया, चदेरे सुविमास।।
(जय सुजश ढा० २६ गा० १३)

उल्लेख है।[1]

स० १९०३ मे युवाचार्यश्री जीतमलजी ने मुनिश्री हेमराजजी के साथ नाथद्वारा मे चातुर्मास किया तब मुनि कर्मचन्दजी भी साथ थे। वहां उन्होने पानी के आगार से ३१ दिन का तप किया।[2]

स० १९०५ से १९०८ तक उन्होने मुनिश्री सतीदासजी (८३) के साथ निम्नोक्त क्षेत्रो में चातुर्मास किये—

सं० १९०५ पीपाड़।	वहा १६ दिन का तप किया।
स० १९०६ पाली।	वहा एक तेला किया।
स० १९०७ बालोतरा।	वहा एक पचोला किया।
स० १९०८ पचपदरा (अनुमानत)।	

(शाति-विलास ढा० १० के आधार से)

३. मुनिश्री कर्मचन्दजी बाल्यावस्था मे दीक्षित हुए। वे बडे विनयी और श्रमशील थे। उनकी बुद्धि और ग्रहण-शक्ति भी प्रबल थी। उन्होने मुनिश्री हेमराजजी, मुनिश्री जीतमलजी और सतीदासजी के सान्निध्य मे जैनागमो का गहन ज्ञान किया। अनेक बार बत्तीस सूत्रों का वाचन किया। सिद्धान्तो के कठिन स्थलों की जयाचार्य से अच्छी धारणा की। उनकी वाचन-शैली, व्याख्यान-कला और लिपि बहुत सुन्दर थी।[3]

४. स० १९२२ का पाली चातुर्मास कर रामपुरा पधारे तब जयाचार्य ने उनके लिए एक शिक्षात्मक सोरठा रचकर फरमाया—

वारु समय विनोद, कीधो चित्त अति हितकरी।
मन मे परम प्रमोद, सखरो राखे कर्मसी।

(जय सुजश ढा० ५० सो० २)

---

१. 'जवान ऋषि कर्मचद ना हो, दर्शन आमेट सुहेज।'

(सरदार सुजश ढा० ८ गा० २९)

२. 'कर्मचन्द इकतीस पाणी रा, कीधा है हर्ष अपारी।'

(हेम नवरसा ढा० ६ गा० २४)

३. कर्मचद बालक बुधवतो रे, ओ तो भणियो सूत्र सिद्धतो रे।
वारु वाचणी अक्षर सुततो रे॥
बहु वार वाच्या सुजगीसो रे, वर प्रवचन सूत्र बत्तीसो रे।
स्वाध्याय करत निशि दीसो रे॥
थल कठिन सिद्धांत ना भारी रे, जय गणपति पासे उदारी रे।
थल प्रगट जाण्या सुधारी रे॥

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३४, ३७, ४३)

५. मुनिश्री की साधना बड़ी पवित्र थी। वे प्रायः स्वाध्याय-ध्यान मे तल्लीन रहते थे। उनकी प्रत्येक क्रिया मे विवेक, धैर्यता, पापभीरुता और वैराग्य वृत्ति झलकती थी।[1]

मुनिश्री की शासन एव शासनपति के प्रति अखंड श्रद्धा व हार्दिक अनुरक्ति थी। वे अविनीतों की सगति तथा पारस्परिक दलबंदी से सदैव दूर रहते थे।[2]

६. स० १९०८ माघ शुक्ला १५ को पदासीन होने के पश्चात् जयाचार्य ने मुनि कर्मचन्दजी को अग्रणी बनाया। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में विचरकर अच्छा धर्म प्रचार किया।[3]

उनके चातुर्मासों की प्राप्त सूची इस प्रकार है—सं० १९११ उज्जैन।[4]

यह चातुर्मास उन्होने उज्जैन के उपनगर—नयापुरा मे किया था। वहा वे नयापुरा की ही गोचरी करते पर दूसरे उपनगर—उरदीपुरा की गोचरी नहीं करते जिससे चातुर्मास के पश्चात् उरदीपुरा में वे एक महीने तक रहे।

(परम्परा के बोल सख्या १५)

---

१. नित्य सझाय निर्मल ध्यानो रे, वारु सवेग रस गलतानो रे।
पाप नो भय तसु असमानो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४२)

दशवैकालिक तथा उत्तराध्ययन सूत्र का सैकड़ों बार स्वाध्याय(पुनरावर्तन) किया।

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४० की वार्त्तिका)

२. शासण आसता निर्मल नीतो रे, आचार्य सू अधिक प्रीतो रे।
हुओ देश विदेश वदीतो रे॥
अवनीता री सगत टालै रे, जिलो भुयग सरीसो भालै रे।
मुनि जिन मार्ग उजवालै रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४४, ४६)

३. सवत् उगणीसै आठे वासो रे, कर्मचद तणो सुविमासो रे।
जय कियो सिंघाड़ो सुजासो रे॥
मरुधर देश मालव ने मेवाडो रे,थली हरियाणो कच्छ ढूढाडो रे।
विचर्या गुजरात मझारो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३८, ४७)

४. परसिध नगर उजिण नीको, सत कियो चौमास।
उगणीसै एकादश वरसे, कीधी जोड हुलास॥
(मु० कर्मचद रचित जयाचार्य गु० व० ढा० १ गा० १३
'प्राचीन गीतिका सग्रह में')

सं० १९१२ जयपुर[1] ठाणा ४ (चातुर्मास तालिका)।

सं० १९१३ कुवाथल ठाणा ३

मुनि जीवोजी कृत स० १९१३ के चातुर्मासो की ढाल गा० ९ मे उल्लेख है कि मुनि कर्मचन्दजी ने कुंवाथल चातुर्मास किया और वहा परिषद् मे सम्पूर्ण भगवती सूत्र का वाचन किया[2]।

स० १९१६ जयपुर[3]।

स० १९०८, १९०९, १९१४, १९१५ और १९१७ से १९२५ तक के चातुर्मास प्राप्त नही है। स० १९२६ मे उनका चातुर्मास जयाचार्य के साथ था[4]।

७. जोवनेर निवासी बरड़िया परिवार के लोग पहले पायचन्द सूरि गच्छ के अनुयायी थे। उन्होने मुनिश्री कर्मचन्दजी के साथ चार निक्षेपो मे विशेषतः स्थापना निक्षेप पर खूब चर्चा की। उनकी काफी शकाओ का मुनिश्री ने निराकरण किया। फिर वे लोग भाद्रव महीने मे जयपुर गए। वहा भी काफी वार्त्तालाप हुआ लेकिन उन्होने तेरापथ की श्रद्धा स्वीकार नही की। चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री पुन. जोबनेर पधारे और वहां पांच रात्रि प्रवास किया। उस समय भी विविध प्रश्नोत्तर चले। सारी बाते समझने के पश्चात् जोबनेर के प्रायः सभी परिवार वालो ने गुरुधारणा स्वीकार कर ली। उन व्यक्तियो मे मुख्य—१. शिवलालजी २. हरलालजी ३. महाचदजी, ४. मगलचदजी ५. हरचदजी ६. रामलालजी ७. चदालालजी ८. सुलतानमलजी ९. विशालचदजी आदि थे। उनके पुत्र पौत्रादिक इस समय जयपुर नगर मे निवास करते है।

(जोबनेर निवासी श्रावको के कथनानुसार)

उक्त घटना स० १९०४ के आसपास की हो सकती है। स० १९०४ में युवाचार्यश्री जीतमलजी ने जयपुर चातुर्मास किया। उस समय मुनि कर्मचन्दजी

---

१. हांजी काइ सवत् उगणीसै दुवादस वरस चौमास जो।
जयपुर मे गुण गाया पूज प्रसाद थी रे लो।
(मु० कर्मचन्द रचित जयाचार्य गु० ढा० २ गा० ७ 'प्राचीन-गीतिका संग्रह' मे)

२. 'कर्मचंद कुवाथल मे, ज्ञान गुण राचियो।
पचमो अग अखड, परषद् माही वाचियो॥'

३. सवत् उगणीसै ने वर्ष सोले, जयपुर सैहर सवाई।
कर्मचन्द आसोज मे रे, मुनि वारु उजल कीर्त्ति गाई॥
(कर्म० रचित जयाचार्य गु० ढा० ५ गा० ७ 'प्राचीन-गीतिका सग्रह मे')

४. छेहड़ै शक्ति घट्या गुणरासो रे, सैहर बीदासर सुखे वासो रे।
जय गणपति पास चउमासो रे॥
(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४८)

उनके साथ थे। संभवतः युवाचार्यश्री ने उनको जोबनेर भेजा हो और उन्होंने जोबनेर निवासी बरडिया परिवार को प्रतिबोध दिया हो।

८. जयाचार्य ने अध्यात्म-भावना से ओतप्रोत होकर दो ध्यान बनाए, एक छोटा और दूसरा बड़ा।

मुनिश्री कर्मचन्दजी ने 'बड़ा ध्यान' के आधार से संक्षिप्त रूप में एक ध्यान तैयार किया जो 'कर्मचंदजी स्वामी का ध्यान' नाम से प्रसिद्ध है।

९. मुनिश्री अच्छे कवि थे। उन्होंने जयाचार्य की स्तुति रूप में 'जयत्थुई' नामक लघु कृति प्राकृत भाषा में बनाई। जिसकी १६ गाथाएं अर्थ सहित हैं। इसके अतिरिक्त मुनिश्री सेतसीजी के गुणों की ढाल १, मुनिश्री हेमराजजी के गुणों की ढाल ३ तथा जयाचार्य के गुण वर्णन की ५ ढालें बनाई जो 'प्राचीन गीतिका संग्रह' में है। वे उपमा अलंकार एवं भाव-भाषा की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक हैं। उनके कुछ पद्य निम्नोक्त हैं—

(क) जयाचार्य के शासन की जयपुर नगर से तुलना—

सामण जय नगरी तणो रे, गिरम्या कोट रह्यो सोभ।
च्यार तीरथ वसै रैयत ज्यों रे, कदेयन पांमैं खोभ।
सासण पुर सोभ रह्यो। जिहां पूज जीत महाराज,
शासन जश छाय रह्यो ॥१॥
च्यार बुध निरमल भली रे, च्यार पोल उदार।
ग्यांनादिक मारग चिहू रे, सोभत चोपड़ बाजार ॥२॥
गुण सहस्र बहु भवन सू रे, व्याप रही समरिद्ध।
साधु बड व्यहारिया रे, लहै सकल कारज नी सिद्ध ॥३॥
दान सीयल तप भावना रे, चिहु दिश च्यार उद्यान।
आनंद जल सीच्या थका रे, अति रितु सुख नो निधान ॥४॥
उपशम वर परसाद में रे, नीत सिंघासण सोय।
पूज नरपत जिम शोभता रे, आग्या छत्र सिर होय॥
स्वमत परमत जस थुणै रे, चामर दोय बे पास।
संजम राजलिखमी तणो रे, करता अखी प्रकाश ॥
वैराग सभा मंडप विषै रे, समण संघ उमराव।
पूज निजामक जाणज्यो रे, सासण तारणी नाव ॥
धरा विभूषण शोभतो रे, जयपुर जगमग होत।
पूज तणा प्रताप थी रे, जिण धर्म कीध उद्योत ॥
उगणीसै ने दुवादसे रे, काती पूनम जोय।
जिण सासण जयवंत नो रे, नगर उपम जस होय ॥

(जयचार्य गु० व० ढा० ४ गा० १ से ९—'प्राचीन गीतिका संग्रह' में)

(ख) जयाचार्य को 'युगप्रधान' विशेषण से अलकृत—

हाजी माहरै पूज परम गुरु सोभै सासण मांह जो।
जीतमल रिषराज थे सूरज सारखा रे लो॥
हाजी काई समण सघ नी गुण भक्ति ना जाण जो।
गुरु तारे गुण वृध करै करि पारखा रे लो॥
हाजी काई स्वमत-परमत ज्ञाता गण आधार जो।
जुग परधान पद दीपै महिमा भाण ज्यू रे लो॥

कर्म० गु० व० ढा० १ गा० १, ३
'प्राचीन गीतिका सग्रह मे)

१०. मुनि कर्मचन्दजी को तथा मुनिश्री मोतीजी वड़ा (७७) को जयाचार्य ने वाजोट पर वैठने की तथा साध्वियो को पढाने की विशेष आज्ञा प्रदान की। मुनि कर्मचन्दजी अपने हाथ से वाजोट बिछाकर वैठ जाते थे पर मुनिश्री मोतीजी के लिए दूसरे वाजोट व आसन आदि विछाते तव उस पर वैठकर साध्वियों को पढाते और व्याख्यान देते। इस सवध मे जयाचार्य विनोद भरे शब्दों मे फरमाते—'हमारे कर्मचन्दजी का तो वेटे का और मोतीजी का वेटी का खर्च है। जिस प्रकार बेटा तो अपने घर मे सामान्य स्थिति मे रहता है और वेटी कभी-कभी पीहर आती है तव अधिक मान मनुहार करवाती है और ठाटवाट से रहती है।'

(श्रुतिगत)

११. मुनिश्री ने उपवास, वेला, तेला, चोला, पचोला, आदि की तपस्या अनेक बार की। ऊपर मे एक महीने तक का तप किया।

वे बहुत वर्षो तक शीतकाल मे एक पछेवडी ओढ़ते एव शीत परिषह को सहन करते।

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ३९ से
४१ के आधार से)

१२. शारीरिक शक्ति क्षीण होने से मुनिश्री ने अपना अतिम चातुर्मास जयाचार्य की सेवा में बीदासर किया। चातुर्मास के पश्चात् जयाचार्य विहार कर गए परन्तु मुनिश्री अस्वस्थ होने से वही ठहरे। जयाचार्य वापस बीदासर पधारे तव मुनिश्री ने आचार्यश्री के सम्मुख आत्मालोचन करते हुए सभी के साथ सरल भाव से क्षमायाचना की। जयाचार्य ने विविध प्रकार के अध्यात्म पद्य एव महा-पुरुषो के गरिमामय उदाहरणो द्वारा उनकी भावना को ऊर्ध्वगामिनी वनाया। मुनिश्री वड़े भाग्यशाली थे जिससे उन्हे आखिरी समय मे गुरु का सुखद सान्निध्य प्राप्त हुआ।

वे अत्यंत समाधिपूर्वक स० १९२६ ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को बीदासर मे

स्वर्ग प्रस्थान कर गए[1]। जिस वर्धमान भावना से संयम स्वीकार किया था उसी भावना से पालन कर आराधक पद को प्राप्त हो गए।

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ४८ से ५४ तक)

जयाचार्य ने मुनि कर्मचन्दजी की स्मृति करते हुए साधु-साध्वियों को उनकी तरह संयम में स्थिर और गण में अडिग रहकर आत्म-कल्याण करने की प्रेरणा दी। वे प्रेरणाप्रद पद्य निम्नोक्त हैं—

ऋप कर्मचद थयो रूडो रे, सखरो गण माहि सनूरो रे।
पायो पंडित मरण पंडूरो रे॥
छेहडे पद आराधक पावै रे, संजम भार ते पार पोंहचावै रे।
तसु तुल्य कहो कुण आवै रे॥
संत सतिया ए सीख सुणीजै रे, गण में थिर पद रोपीजै रे।
त्यांरा वंछत कार्य सीझै रे॥
हू तो सीख देवूं वारंवारो रे, कीजो कर्मचन्द जिम सारो रे।
गण पंडित मरण उदारो रे॥

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ५५ से ५८)

१३. जयाचार्य ने मुनिश्री के संबध मे 'कर्मचन्द गुण वर्णन' नामक छोटा आख्यान बनाया। जिसकी एक ढाल है, उसमे ६ दोहे और ५६ गाथाए है। ढाल का रचनाकाल सं० १९२९ माघ शुक्ला सप्तमी और स्थान बीदासर है।

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ५९)

ख्यात तथा शासन प्रभाकर और भारी संत वर्णन ढा० ४ गा० १८९ से १८६ मे मुनिश्री से सबधित उपर्युक्त कुछ वर्णन है।

---

१. सवत उगणीसै छावीसे ताह्यो रे, जेठ कृष्णा सातम सुखदायो रे।
मुनि पोहतो परभव मांह्यो रे॥

(कर्म० गु० व० ढा० १ गा० ५३)

वार अनेक वतीसी वाची, मासखमण तप सारो रे।
उगणीसै छावीसे परभव, कर्मचद अणगारो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४०)

८४।२।३५ मुनिश्री सतीदासजी 'शान्ति' (गोगुंदा)

(संयम पर्याय स० १८७७-१९०९)

लय—मुश्किल जैन मुनि···

देखो तेरापंथ संघ का अभिनव गौरवमय इतिहास।
गौरवमय इतिहास पाओ अनुपम शाति विलास।
अनुपम शांति विलास सुनलो रुचिकर 'शाति विलास' ।।ध्रुव०।।

गोत्र बोहरा जनक बाघजी, गोगुदा में वास।
नवलां जननी तीन बंधु में, सतीदास सुत खास ।।देखो···१।।

कोमल शान्त प्रकृति दिल उज्ज्वल, मुख में भरा मिठास।
संस्कारांकुर लगे पनपने, बढ़ता पुण्य प्रकाश ।।२।।

दोहा

भाग्यवान् संतान से, सुख संपद् विस्तार।
ग्रहमणि को पाकर हुआ, प्रमुदित सब परिवार ।।३।।

सतीदास का कर दिया, शिशु वय में संबंध।
था उनके प्रति स्वजन का, अधिक स्नेह अनुबध ।।४।।

भिक्षु आदि मुनि साध्वियां, आते वहां विशेष।
जिससे धार्मिक भावना, बढ़ती रही हमेश ।।५।।

श्रमणोपासक-श्राविका, तत्त्वविज्ञ सुविनीत।
करते मुनि-सम्पर्क कर, तप जप आदि पुनीत ।।६।।

समझा परिजन शांति का, पाया धर्म निरोग।
मणि कांचनवत् मिल गया, मुनि श्रमणी का योग ।।७।।

साल तिहोत्तर मे वहां, आये भारीमाल।
चहल पहल भारी लगी, घर घर मंगलमाल ।।८।।

रामायण-छन्द

वालक वय उस समय शांति की पर स्थिर योग व वुद्धि विवेक।
हलुकर्मी प्रियधर्मी थे अति खुश होते मुनिजन को देख।
पीथल मुनि के पास सीखकर कर पाये कुछ तात्त्विक बोध।
आध्यात्मिक रस सींच सींचकर करते विकसित जीवन पौध ॥९॥
हेम जीत आदिक मुनियों का गोगुंदा में वर्षावास।
साल चहोत्तर में हो पाया शांति सीखते जय के पास।
वोल थोकड़े विविध याद कर ली चर्चाएं वहुधा धार।
पू-धो-चि-गु पूर्वक पढ़ते है करते परमोद्यम हरवार ॥१०॥

लय—मुश्किल जैन मुनि···

हुई भावना बड़ी वलवती, चढ़े विरति कैलाश।
आयु वर्ष वारह की केवल, वढ़ता हृदयोल्लास ॥११॥

दोहा

गुप्त रूप से जीत ने, करवाये वहु त्याग।
शीलादिक की साधना, करते धर अनुराग ॥१२॥
सेवा-रत होकर सतत, सुनते वे व्याख्यान।
सामायिक सह प्रतिक्रमण, करते धर कर ध्यान ॥१३॥
चाह प्रवल चारित्र की, पर लज्जावश मौन।
अनुमति तो मागे विना, दे अभिभावक कौन ॥१४॥

सोरठा

विदा हुए मुनि हेम, चतुर्मास के वाद में।
सतीदास सक्षेम, व्रत श्रावक के पालते ॥१५॥

लय—मुश्किल जैन मुनि···

पहुंचे है परलोक, पिता पचहत्तर साल में।
भरते नव आलोक, शाति रमण कर शाति में ॥१६॥
साल छिहंतर उष्णकाल मे, हेम जीत सह वास।
पुनरपि वहा प्रेरणा देने, आये धर कर आश ॥१७॥

हेम जीत ने कहा शान्ति से, देख श्रेष्ठ अवकाश।
प्रकट करो दोनों नियमो को, भर साहस सायास ॥१८॥

रात्रि समय व्याख्यान वीच मे, उठ बोले मुनि पास।
है कुशोल-वाणिज्य-प्रतिज्ञा, जब तक तन में श्वास ॥१९॥

ऊचे स्वर से कहकर बैठे, करते समताभ्यास।
किया हेम ने जोर तोर से, चालू शील समास ॥२०॥

सुनकर वोले वचन ज्ञातिजन, होकर बड़े उदास।
निद्रा-घूर्णित झिझक उठा यह, क्या इसका विश्वास ॥२१॥

कुछ दिन बाद एक नर आया, लगी राज्य चपरास।
वोला हुक्म रावजी का है, न करें यहां निवास ॥२२॥

पश्चिम रजनी में मुनिश्री को, बोले श्रावक खास।
नहीं रहेगे हम भी पुर में, गुरु अनुपद पद-न्यास ॥२३॥

राज्य कार्यकर्त्ताओं को जव, हुआ उक्त आभास।
बोले आकर करे यहा पर, सतो ! सुख से वास ॥२४॥

दोहा

एक मास मुनिवर रहे, फिर रावलिया स्पर्श।
शहर उदयपुर में किया, चतुर्मास उस वर्ष ॥२५॥

शान्ति साधनालीन हो, करते धर्म-ध्यान।
सहते है समभाव से, आते जो व्यवधान ॥२६॥

रामायण-छन्द

त्याग बिना ही कहा शान्ति ने है सचित्त पानी का त्याग।
माता प्रासुक जल न पिलाती गाती जाती अपनी राग।
भोजन किया हुआ था पहले जिससे अधिक सताती प्यास।
सवा प्रहर तक घोर वेदना सही शाति ने पर न उदास ॥२७॥

उदक अचित्त पिलाया मां ने आखिर सुत की देख व्यथा।
लोगों ने सुन कहा शान्ति की धृति क्षमता की अजव कथा।
वचन मात्र मे इतनी दृढ़ता तो क्या कहना नियमों का।
सुन जन मुख से हर्षित तन मन हुआ हेम जय मुनियों का ॥२८॥

एक दिवस जननी बोली है कर शादी करना स्वीकार।
वरना मरुं कूप में गिर कर चलने लगी उधर अविचार।
इस प्रकार भय दिखलाने से मान लिया सुत ने विन चाह।
मिलजुल ज्ञातिजनों ने उनका झटपट स्थापित किया विवाह।।२६।।

लय—संतां रा खुला है बारणा···

शादी की हुई तैयारियां, मिला है बहु परिवार।
शादी की हुई तैयारिया, खिला है रंग अपार।।ध्रुव०।।

सगे संबधी वहु आये ग्राम ग्राम से,
उत्सुक हो भाई बहन बेटियां आराम से।
पाहुणो का होता सत्कार।।शादी···३०।।

बाजों की जोरदार उठती धुंकारें,
गाती है गीत वहिनें मंगलमय प्यारे।
लगी है नई बहार।।३१।।

भरी है चावल मूग गेहूं से कोठियां,
शक्कर घी आदिक की चढ़ी है चोटिया।
लाये है नाना बेपवार।।३२।।

मेवा मिष्टान मुखवासादि लाये,
मनमाने नेकचार सबही मनाये।
पाये है हर्ष अपार।।३३।।

सोने के गहने व कपड़े भी भारी,
करली एकत्र शीघ्र सामग्री सारी।
नौली में भरे कलदार।।३४।।

चलती आडम्बरों की जैसी परम्परा,
करते है लोग नहीं चितन की उर्वरा।
सादगी में कितना है सार।।३५।।

विना मन हुआ देखो भौतिक रंग राग है,
सतोदास दिल मे तो सच्चा वैराग है।
होता अव स्वप्न साकार।।३६।।

दोहा

एक 'बनोला' तो लिया, भोजन किया गरीष्ठ।
ली सामायिक शाम को, संयम-भाव वरीष्ठ ॥३७॥
श्रावक बाते कर रहे, देख वरोत्सव रंग।
नरकादिक की यातना, करने से व्रत भग ॥३८॥
सुनकर दिल में शांति के, कंपन हुआ अथाह।
नियम निभाना अटलतम, नही छोड़ना राह ॥३९॥

रामायण-छन्द

दिवस दूसरे तीन घरों का आमंत्रण आया सादर।
कहा शान्ति ने शिर में पीड़ा अत: न जा सकता पर घर।
साफ घोषणा कर दी फिर तो शादी करने का न विचार।
मै पक्का निर्णय कर पाया लेना मुझको सयम भार ॥४०॥

लय—म्हारी रस सेलड़ियां···

लेते रे लेते, दीक्षा लेते है शान्ति उमग से।
देते रे देते, शिक्षा देते है जीत प्रसंग से ॥ध्रुव०॥
आये तदा हेम जय चलके, मिला सबल सहयोग।
पाग-वध के त्याग दिलाकर, मेट दिया सब रोग रे।लेते···॥४१॥
हेम जीत ने एक मास तक, रहकर किया विहार।
निकट बड़ी रावलियां आकर, ठहरे है अणगार रे ॥४२॥
पीछे से तज पाग सुरंगी, चले सदन से शान्ति।
जा बाजार बीच मेड़ी में, बैठे तजकर भ्रान्ति रे ॥४३॥
सामायिक स्थिर चित्त वृत्ति से, करते सह स्वाध्याय।
यत्न कर रहे चरण रत्न हित, सोच रहे सदुपाय रे ॥४४॥
उनका श्वसुर वहां पर आया, बोले तव कुछ भ्रात।
श्री जंवूवत् शान्ति करेगा, जग में नूतन बात रे ॥४५॥
किया मिथुन का त्याग प्रथम ही, जिसका यह अनुमान।
कर विवाह वनिता को तजकर, होगा साधु महान रे ॥४६॥
श्वसुर कह रहा—कहे शान्ति जो मुख से वचन अमोघ।
घर में मै आजन्म रहूंगा, कभी न लूंगा योग रे ॥४७॥

तो मेरी पुत्री परणाऊं, नहीं अन्यथा ध्यान।
विना किये स्वीकार करूं मैं, कैसे कन्यादान रे ॥४८॥
पंच गांव के प्रमुख कार्य वश, आये चल वाजार।
शीघ्र शान्ति मेड़ी से उतरे, वोले वचन विचार रे ॥४९॥
अनुमति मुझे दिलाए पंचो ! लूंगा संयम-धाम।
चढ़े ऊर्ध्व झट कहकर ऐसे, चित्रित पंच तमाम रे ॥५०॥
सतीदासजी का वहनोई, श्रावक धर्म-दलाल।
पंचो में परमेश्वरवत् था, चतुराग्रणी विशाल रे ॥५१॥
पंचो को सहचर ले आया, सपदि 'वाघ' के गेह।
सतीदास को वुला लिया फिर, पूछ रहे घर स्नेह रे ॥५२॥
मृदु स्वभाव होने से पहले, मौन रहे कुछ देर।
फिर तो बोले हृदय खोलकर, खडे रोपकर पैर रे ॥५३॥
भाव साधु व्रत लेने के है, शादी का न विचार।
सुन भगिनी-पति ने समझाया, परिजन को धृति धार रे ॥५४॥
आखिर मां बांधव ने लिखकर, दी आज्ञा निरपाय।
कठिन कलेजा किया अंत में, चला न इतर उपाय रे ॥५५॥
झुके सभी उनकी दृढ़ता से, रुका विवाहाभास।
घर वालों का काता-पीना, सारा हुआ कपास रे ॥५६॥
हुआ विवाहोत्सव दीक्षोत्सव में परिणत तत्काल।
मन चाहा सव हुआ शांति का, छाई मंगल माल रे ॥५७॥
दीक्षा स्वीकृति में लगे, लगभग वत्सर तीन।
पर आखिर में खिल गया, अजव गजव का सीन ॥५८॥
समाचार सुन विनतियुत, आये मुनि श्री हेम।
सोत्सव संयम ले रहे, सतीदास सक्षेम ॥५९॥

लय—मंदिर में कांई···

संयम की पाये संपदा वड़ी, फूले तन मन मे सतीदास। संयम···
झूले शम रस में सोल्लास। सयम···ध्रुव०॥
वैरागी वनड़ा वन पाया, छाया रंग अनन्य।
आकर्षण जन जन में भारी, धन्य विरति-मूर्धन्य। संयम···॥६०॥
हेम श्रमण ने दिया शांति को, संयम रूप पराग।
मजुल आम्र वृक्ष के नीचे, शुक्ल पंचमी माघ ॥६१॥

छोड़ सगाई परिणीता को, लेते वहु व्रत-राह।
मंडा विवाह वनोले खाये, संत वने ये वाह॥६२॥
हुआ वडा उद्योत धर्म का, पाये अचरज लोग।
चौथे आरे का पञ्चम में, सम्मुख देख प्रयोग॥६३॥
विदा हुए मुनि हेम वहां से, ले नव-दीक्षित संग।
भारी गुरु के दर्शन करके, भेंट किया सोमंग॥६४॥
दीक्षा बड़ी पूज्य ने दी है, सात दिनों के वाद।
वापस शाति हेम को सौपा, शिक्षा हित साह्लाद॥६५॥
मिला शांति को भव्य भिक्षु गण, गण को शाति प्रशांत।
मणिकाचन का योग उच्चतम, समझे इसको नितांत॥६६॥
पंच महाव्रत समिति गुप्ति में, सावधान हर श्वास।
विनय भक्ति से हेम पास में, करते विद्याभ्यास॥६७॥
गणपति वा गणपति के विनयी, मुनियों से इकतारी।
जय से तो पय जल सम निर्मल, एकीपन था भारी॥६८॥
किये चार कंठाग्र जिनागम, पढ़े सभी दे ध्यान।
सूक्ष्म रहस्यों के बन वेत्ता, सीखे बहु व्याख्यान॥६९॥
प्रतिनिधि वने हेम के जब मुनि जीत हुए अग्रेश।
व्याख्यानादि कार्य कर रहे, यथा हेम निर्देश॥७०॥
सप्तवीस सवत्सर साधिक, रहे हेम के पास।
सेवा की है अन्त समय तक, उपजाया उल्लास[१]॥७१॥
देख योग्यता हृदय खोलकर, दिया हेम ने ज्ञान।
विविध गुणों से स्थान वढा है, और वढा सम्मान[२]॥७२॥
किये अग्रणी छह मुनियों से, स्वर्ग गये जव हेम।
तारण तरणीवत् धरणी पर, विचर रहे सह क्षेम॥७३॥
कठ मधुर मृदु भाषी कोमल, क्षमामूर्ति मुनिराज।
दर्शन सेवा कर सुन प्रवचन, खिलता सकल समाज॥७४॥

गीतक-छन्द

प्रथम पुर पीपाड़ में पाली इतर सुखवास है।
तीसरा वालोतरा में किया चातुर्मास है॥
लाभ पचपदरा धरा को दिया चौथी वार है।
मरुधरा की गोद मे ये हुए पावस चार है[१]॥७५॥

दोहा

चतुर्मास पूरा हुआ, आया मृगसर मास।
पुर जसोल बालोतरा, आये बाघावास ।।७६।।
किया दिवस पच्चीस का,'मुनि ने वहां प्रवास।
सुना वहां ऋषिराय ने किया स्वर्ग में वास ।।७७।।
थली देश में आ रहे, शान्ति जहां गण-नाथ।
मिले साधु बहु मार्ग में, हुए आपके साथ ।।७८।।
जय ने भेजे सामने, सानुग्रह दो संत।
पहुंचे वे पुर ईडवा, तीस कोस पर्यन्त ।।७९।।

लय—म्हांरे घरे पधार···

अनुपम दृश्य दिखायाजी २। चार तीर्थ के रोम रोम में हर्ष बढ़ाया जी ।।ध्रुव०।।

आये जिस दिन शान्ति लाडनूं, दिया अधिक सम्मान।
अगवानी के लिए जीत ने, भेजे सन्त सुजान ।।अनुपम···८०।।
नर-नारी सम्मुख जा देते, मुनि चरणों में धोक।
अद्भुत मेला लगा शहर मे, फैला नव आलोक ।।८१।।
बहु ऋषियो सह वन्दन करते, जय पद मे मुनि शान्ति।
झरा अमित रस गुरु दर्शन से, चमक रही मुख कांति ।।८२।।
साग्रह बाह पकड़ कर जय ने, बिठलाये सम स्थान।
नीचे उतर धरा पर ही वे, बैठे चतुर सुजान ।।८३।।
छटा देखकर संघ चतुष्टय, पाया परमानद।
जय जय की ध्वनियो से गूजा, शासन सुयश अमंद ।।८४।।
मुक्त किया भोजन विभाग से, मुनि को दे बहुमान।
भर परिषद् में मुक्त स्वरों से, गुण का किया बयान ।।८५।।
त्रायत्रिंश दोगुन्दक सुर ज्यों, सुरपुर में हरि पास।
वैसे करते शान्ति हमारे, सन्निधि में सुखवास[४] ।।८६।।

लय—मुश्किल जैन मुनि···

विगय त्याग उपवास आदि बहु, ऊपर में इकमास।
तप सह जप स्वाध्याय ध्यान का, मिला दिया अनुप्रास ।।८७।।

शीतकाल में शोत सहा कर शीत स्थान में वास।
सत्ताईस साल तक लगभग, लाख लाख शाबाश[५] ॥८८॥
साधिक चार साल मुनि विचरे, भरते धर्म-सुवास।
स्वोपकार सह परोपकार हित, करते अधिक प्रयास ॥८९॥

रामायण-छन्द

अन्तिम पावस वीदासर में धर्म-ध्यान की चली नहर।
उपदेशामृत रस मिलने से तप की लम्बी चली लहर।
हुआ बहुत उपकार वहा पर अचरज पाये स्व-पर मती।
धन्य-धन्य मुनि शाति शुभकर यशोनाद की ध्वनि उठती[६] ॥९०॥
वीकानेर शहर से चलकर आया एक वहां कासीद।
मुनि के शुभागमन की सुदर लाया अनुनय भरी रसीद।
वोले शाति स्वरूप कहेंगे उसी दिशा में गमन विशेष।
क्रमशः मृगसर एकम आई लाई विहरण का सदेश ॥९१॥
वस्त्र श्रावकों के घर से मुनि लाये उस दिन विधि अनुसार।
देख पुरानी पटी शान्ति के करते भावभरी मनुहार।
नव पछेवड़ी आप लीजिए आया सर्दी का मौसम।
देगे श्रमण 'स्वरूप' हाथ से तब ही लूगा किया नियम ॥९२॥

दोहा

किया अधिक हठ हरख ने, तब तो दृढ़ प्रतिज्ञ।
त्याग कर दिया शान्ति ने, नीति रीति के विज्ञ ॥९३॥

रामायण-छन्द

चदेरी पावस कर आये जय-वांधव पुर बीदासर।
रहे साथ मे मुनि श्री उनके कल्प-ज्येष्ठ मुनि के सहचर।
ऋषि स्वरूप ने कहा शान्ति से जाओ अब तुम बीकानेर।
स्वीकृत किया वचन व्रतिवर ने किन्तु विषम है विधि की टेर ॥९४॥
पुर वाहर शौचार्थ गये मुनि हुई वेदना आकस्मिक।
उठा स्थान पर लाये मुनिवर मूर्छित ऋषि को तात्कालिक।
औषधादि उपचार किये पर गये सभी वेकार इलाज।
बद जवान घोरतम पीड़ा बीता पाच प्रहर अन्दाज ॥९५॥

लय—मुश्किल जैन मुनि…

शतोन्नीस नो मृगसर कृष्णा, नवमी को सुरवास।
अर्ध निशा में नश्वर तन से, निकले श्वासोश्वास ॥९६॥
धिग् धिग् निर्दय यम को करता, जो सब ही का ग्रास।
इसके आगे हरिहर ब्रह्मा, होते सभी निराश ॥९७॥
तन व्युत्सर्जन कर मुनि उस दिन, कर पाये उपवास।
व्यथित चतुर्विध संघ खबर सुन, टूट पड़ा आकाश ॥९८॥
सोलह साल गृहस्थ तीस दो, मुनि पद में विन्यास।
सर्वायुष्य शांति ऋषि पाये, दो कम वर्ष पचास' ॥९९॥

दोहा

रचा जीत ने गीतमय 'शान्ति विलास' पवित्र।
गुण सुमनों की खींच के, सौरभ भरी विचित्र ॥१००॥
कितना दिल में स्थान था, कितना किया बयान।
जय के शब्दों में कहूं, सुनो लगाकर ध्यान ॥१०१॥
मंगलमय मुनि जीवनी, रस से ओतप्रोत।
खुलता वाचन श्रवण से, अमित शान्ति का स्रोत ॥१०२॥
शान्ति शान्ति मुख से जपो, ध्यावो निर्मल ध्यान।
भावुक होकर भक्ति से, गावो गौरव गान' ॥१०३॥

१. मुनिश्री सतीदासजी मेवाड प्रदेशान्तर्गत गोगुदा (मोटाग्राम) के निवासी, जाति से ओसवाल और गोत्र से वरल्या वोहरा 'कोठारी' थे। उनके पिता का नाम वाघजी और माता का नवलांजी था। सतीदासजी का जन्म स० १८६१ मे हुआ। वे तीन भाई थे—१. धूलजी २. सतीदासजी ३. फौजमलजी। उनके दो बहिने थी—नदूजी, गुमानाजी[१]।

सतीदासजी प्रकृति से शान्त और कोमल थे। उनकी आकृति भी सुंदर और आकर्षक थी जिससे सभी परिवार को वे अत्यत वल्लभ लगते थे। माता-पिता ने छोटी उम्र मे ही निकटस्थ रावलियां ग्राम मे उनकी सगाई कर दी।

तेरापथ के तृतीय आचार्यश्री रायचन्दजी की जन्मभूमि रावलिया होने से साधु-साध्वियो का गोगुंदा, रावलिया आदि क्षेत्रो मे अधिक आवागमन रहता था। वहां के श्रावक जीवादिक तत्त्वो के अच्छे जानकार थे। सत-सतियो की सेवा वड़ी दिलचस्पी से करते थे। तप-जप आदि धार्मिक अनुष्ठान मे भी पूर्ण जागरूक थे। सतीदासजी के ज्ञातिजन भी साधु-सपर्क करके धर्म के मर्म को समझे और सच्चे श्रद्धालु वने[२]।

स० १८७३ मे द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी श्रमण परिवार से गोगुदा पधारे। स्थानीय लोगो ने उनके दर्शन एवं प्रवचन आदि का लाभ लेकर अपूर्व आनन्द प्राप्त किया। सतीदासजी की उस समय वाल्यावस्था थी परन्तु वे वड़े विवेकी, विनम्र और वुद्धिमान् थे। गुरुदेव के मुखारविन्द को देखकर वे अत्यंत प्रभावित हुए और मुनि श्री पीथलजी (५६) के पास तत्त्ववोध करने लगे। जो व्यक्ति हलुकर्मी व सस्कारी होते है उनके सहजतया धर्म के प्रति अनुराग उत्पन्न

---

१. सैहर गोघूंदो सोभतो रे, अधिक धर्म उपगार रे।
संत हुआ वहु सोभता रे लाल, श्रावक वहु सुखकार रे।
वाघजी कोठारी तिहा वसै रे, जाति वरल्या वोहरा सार रे।
ते पालै व्रत श्रावक तणां रे लाल, नवलां तेहनै नार रे।
उदरे तेहनै ऊपनो रे, सतीदास सुखदाय रे।
सुख धन वृद्धि होवै सही रे लाल, पुनवत सुतन पसाय रे।
(शान्ति विलास ढा० १ गा० २ से ४)

नवलां मात सरल भली, वहिन वे नंदू गुमान कै।
ज्येष्ठ सहोदर धूलजी, लघु फोजमल जांण कै॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १६)

२. न्यातीला सतीदासजी तणा रे, वलि अवर नगर ना लोग रे।
धर्म माहे समज्या घणां रे, लाल, सुभ तणो संजोग रे।
(शान्ति विलास ढा० १ गा० १३)

हो जाता है। सतीदासजी के दिल मे धर्म के अंकुर पनपने लगे, और वे साधु-साध्वियो के सान्निध्य मे अधिक रस लेने लगे।

स० १८७४ मे मुनि श्री हेमराजजी आदि ६ साधुओ का चातुर्मास गोगुदा मे हुआ। उनके साथ मे मुनिश्री जीतमलजी (जयाचार्य) थे। सतीदासजी ने जय मुनि के तत्त्वावधान मे अध्ययन करना चालू किया। थोड़े ही दिनो मे उन्होने अनेक बोल-थोकड़े सीखे व छानबीन कर विविध चर्चाएं हृदयगम की। पू (पूछना) घो (घोखना) चि (चितारना, दोहराना) गु (गुनना-चिंतन करना) के क्रम को स्मृतिगत रखते हुए वे ज्ञानवृद्धि के लिये निरतर प्रयत्न करने लगे। उन्होने प्रच्छन्न रूप मे मुनिश्री जीतमलजी द्वारा आजीवन अब्रह्मचर्य सेवन और व्यापार करने का परित्याग कर दिया।[1]

वे प्रतिदिन साधु-सेवा, व्याख्यान-श्रवण, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि नियमित रूप से करने लगे। क्रमशः उनकी भावना वैराग्यमय हो गई और साधु जीवन स्वीकार करने के लिए लालायित हो गये परन्तु लज्जालु प्रकृति होने से वे अपने विचार अभिभावक जन के सम्मुख रखने मे सकोच करने लगे। माता-पिता आदि सभी सबधी जन का उनके प्रति अत्यधिक स्नेह था अतः विना मागे वे दीक्षा की अनुमति दे ऐसा सभव नही था।

दिन पर दिन बीतते गए, चातुर्मास संपन्न हो गया। मुनिश्री हेमराजजी अच्छा उपकार कर वहा से विहार कर गए। पीछे से सतीदासजी श्रावक-धर्म

---

१. सैहर गोघूदा मे सखर, चीमंतरे चौमास।
हेम आदि नव सत हद, अधिको धर्म उजास।।
हेम ऋषि पासे हुतो, जीत सत जिहवार।
तास पास सतीदासजी, पढ़े सुअधिकै प्यार।।

(शान्ति विलास ढा० ३ दो० १, २)

पीत जीत सू अति प्रवर, सतीदास कै सोय।
सीख्या विविध प्रकार सू, बोल थोकड़ा जोय।।
न्याय सहित चित्त निरमले, चरचा विविध पिछाण।
सतीदास सीख्या सरस, अल्प दिवस मे जाण।।
अधिक बुद्धि उद्यम अधिक, थिर पद तन मन थाप।
आवै ज्ञान सु इह विधै, पू० घो० ची० गु० प्रताप।।

(शान्ति विलास ढा० ३ दो० ३ से ५)

जीत पास करत अभ्यास, चारु चीमतरा नै चौमास।
सीलादिक बहु व्रत सुहाया, आछी रीत करी जीत अदराया।।

(शान्ति विलास ढा० ३ गा० ६)

का पालन करते और साधु-व्रत ग्रहण करने की उत्कट भावना रखते। प्रकृति का शाश्वत नियम है कि सयोग के पीछे वियोग की कडी जुडी हुई रहती है, सतीदासजी के पिता वाघजी का स० १८७५ मे देहान्त हो गया[1]। सतीदासजी सासारिक सवधो की क्षण-भगुरता को समझकर अपनी चाह को शीघ्र पूरा करने की राह देखने लगे।

मुनिश्री हेमराजजी ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए स० १८७६ की ग्रीष्म-ऋतु मे पुन. गोगुदा पधारे। मुनिश्री जीतमलजी साथ मे ही थे। उन्होने सतीदासजी को सुझाव दिया कि तुम अपने स्वीकृत दोनों नियमो को प्रकट कर दो, जिससे सभी को पता चल जाएगा कि इसके विचार दीक्षा लेने के है। सतीदासजी ने जय मुनि की बात मान कर अपने साहस को बटोरा और रात्रि-कालीन प्रवचन के समय उठकर बुलद स्वर मे बोले— 'मेरे जीवन-पर्यत अब्रह्मचर्य सेवन तथा वाणिज्य करने का त्याग है।' यह कहकर वे तो तत्काल बैठ गए और मुनिश्री हेमराजजी—'साचो हे शील संसार मे…' गीतिका के कुछ पद्यो का समुच्चारण करते हुए शील की महिमा का मर्मस्पर्शी विवेचन करने लगे।[2] परि-

---

१. चौमासा माहे कर चिमत्कार, हेम कियो तिहा थी विहार।
श्रावक-धर्म पाले सतीदास, अति चारित्र लेवा उलास॥
वाघजी कोठारी अव्लोय, जनक सतीदासजी नो जोय।
संवत अठारै पिचतरे सोय, ओ तो जाय पहुतो परलोय॥
(शान्ति विलास ढा० ३ गा० ११, १२)

२. विहार करी नै विचरता, सैहर गोघूदे स्वाम।
उष्णकाल मे आविया, धर्म-मूरत गुण-धाम॥
(शान्ति विलास ढा० ४ दो० ३)

सील प्रकट करणो सही, विणज करण नो नेम।
सतीदासजी नै कहै, जीत अने ऋष हेम॥
(शान्ति विलास ढा० ४ दो० ५)

जीत वचन सुण ऊठीयो, वहु जनवृंद सुणता ऊचे शब्द उचारै हो लाल।
विणज करण ने कुशील ना, जावजीव लग जाणी पचखाण अछै ए म्हारै हो लाल॥
इम कहि महि वेठो तदा, तिह समय हेम मुनिरायो सुखदायो सील दिढायो हो लाल।
'साचो हे सील ससार मे', विमल निमल ए गाथा सुखदाता कलश चढायो हो लाल॥
(शान्ति विलास ढा० ४ गा० ३, ४)

पद् में बैठी हुई सभी जनता विस्मित सी हो गई और उन्होने जान लिया कि यह दीक्षा लेगा। सतीदासजी के ज्ञातिजनों को भारी ठेस लगी। उन्होने कटाक्ष करते हुए कहा—'यह नीद मे झिझक उठा है' अत: इसके कथन को यथार्थ नही मानना चाहिए। यह अबोध बालक इतने बड़े नियमो को अभी समझ ही क्या सकता है।'[1] कुछ दिन पश्चात् रात्रि मे व्याख्यान के बीच रावजी द्वारा भेजा गया एक आदमी आया और बोला—'साधुओं! आपको गांव मे रहने की मना है अत: विहार कर जाइए। यह सुनते ही श्रावको के तहलका सा मच गया। उन्होने परस्पर चिंतन किया और पश्चिम रात्रि में आकर मुनिश्री से निवेदन किया—'रावजी के आदेशानुसार जब आपको विहार करना पड रहा है तो हम भी इस ग्राम मे नही रहेगे। रावजी ने जब यह सुना तो उन्होने वापस कहलवाया—'आप विहार न करें और यही पर रहें[2]।'

मुनिश्री एक महीना गोगुंदा मे विराजकर रावलिया पधार गए और वहां कुछ दिन ठहरे, फिर सं० १८७७ का चातुर्मास उदयपुर मे किया।

सतीदासजी को दीक्षा की अनुमति के लिए अनेक प्रकार के कष्टों का सामना करना पड़ा, फिर भी वे अपने लक्ष्य से किंचिद् मात्र विचलित नही हुए। एक दिन उन्होंने त्याग न होने पर भी अपने घर वालो से कहा—'मेरे सचित्त (कच्चा) पानी पीने का त्याग है।' भोजन करने के पश्चात् जब वे अचित्त पानी पीने लगे तो माता ने रोकथाम की और उन्हें सचित्त पानी पिलाने लगी। किन्तु वे उसके लिए बिलकुल इन्कार हो गए। लगभग सवा प्रहर तक उन्होने प्यास की भयंकर व्यथा को सहन किया। उसके बाद माता ने प्रासुक पानी पिलाया[3]। लोगों ने जब

---

१. न्यातीलां ने दोरी लागी, कहै नीद में झिझक उठ्यो।
(शान्ति विलास ढा० ३ गा० ४१ वार्त्तिका)

२. 'पछै कितरायक दिन निकलीयां रात्रि वखाण वांचता राज वाला आदमी मेल्यो। ते आय नै बोल्यो—साधां! गांम मे रहिज्यो मती, विहार कर ज्याज्यो। पछै पाछली रात्रि रा भाया आय नै साधा नै कह्यो—आप विहार करो म्हे पिण गांम मे रहां नही, गाम छोडवा त्यारी थया। पछै: राजवाला सुण्यो गांम रा लोग साधां लारै निकलै है, जद पाछो कहिवायो—साधां बेठा रहो।' (शान्ति विलास ढा० ३ गा० ४१ की वार्त्तिका)

३. त्याग काचा पाणी तणा, एम कह्यो घरकां नै त्याग विनांई तिवारो रे।
अचित पाणी पीवा न दै मात, सचित जल पावै पिण पीवै नही जिवारै हो लाल॥
जीम्यां पछै सवा पोहर आसरै, वेदन अति तिरखा री महाभारी सही सयांणे हो लाल॥

यह बात सुनी तो सतीदासजी की दृढता की सराहना करते हुए कहा—'सतीदास जब अपने वचन की भी इतनी पाबन्दी रखता है तो उसके नियमों का तो कहना ही क्या ?' मुनि हेमराजजी, जीतमलजी को भी भाइयो द्वारा इस घटना की जानकारी हुई तो वे भी बहुत प्रसन्न हुए।

एक दिन मोहवश मां ने कहा—'पुत्र ! तू शादी करना मजूर कर ले, वरना मैं कुए मे गिरकर मरती हूं।' यह कहती हुई माता ने उस ओर कदम भी उठा लिया। इस प्रकार भय दिखलाने पर सतीदासजी को मन न होते हुए भी विवाह की स्वीकृति देनी पडी। ज्ञातिजन यही चाहते थे और सोचते थे कि विवाह होने के पश्चात् उसका वैराग्य उतर जाएगा। उन्होने शीघ्रातिशीघ्र विवाह की तैयारिया कर ली और उसकी स्थापना के सारे नेकचार शुरू कर दिए[1]।

सतीदासजी ने प्रारभिक बनोले मे परिवार वालो के घर जाकर खाना खाया परन्तु उनके मन में हिचकिचाहट रही। जिससे वे सध्या के समय श्रावको के साथ सामायिक करने लगे। श्रावको ने परस्पर वार्त्तालाप करते हुए कहा—'जो व्यक्ति नियम लेकर तोड देता है वह महापाप का भागी बनता है और उसे नरक निगोदादिक का दुःख सहन करना पड़ता है।' सतीदासजी ने सुना तो उनका दिल कांपने लगा। उन्होने दृढता-पूर्वक नियम निभाने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन भोजन के लिए तीन घरो से आमंत्रण आया किन्तु उन्होने मेरे शिर मे दर्द है, ऐसा कहकर उसे टाल दिया। विशेष आग्रह करने पर स्पष्ट रूप से उत्तर दे दिया

पछै मात अचित जल पावियो, अडिग दृढ इम जाचो अति साचो वचन प्रमाणे हो लाल ॥

(शान्ति विलास ढा० ४ गा० ६, ७)

शुद्ध वचन मे पिण दृढ़ एहवो, तो त्याग तणो स्यू कहिवो दिढ रहिवो अधिक उदारू हो ला०।

सेठापणो देखी करी लोक, अचभो पाया हुलसाया महा सुखकारू हो लाल।

(शान्ति विलास ढा० ४ गा० ८)

१. एक दिवस मां मोह वस, बोली वचन विरूप।
कँ मानेलै परणवो, नही तो पड़सू कूप॥
इण विध करी डरावणी, चाली पग भर जाण।
सतीदास डरतै छतै, मान्यो वचन माडाण॥
न्यातीला हरषत हुआ, गाया सूहव गीत।
मूग ढोलिया सुभ दिने, थाप्यो व्याह पुनीत॥

(शान्ति विलास ढा० ५ दो० ३ से ५)

कि मेरा परिणय करने का कतई विचार नही है'[1]।

इस प्रकार आपस मे तनातनी चलने लगी। उन्ही दिनों मुनिश्री हेमराजजी, जीतमलजी आदि सं० १८७७ का उदयपुर चातुर्मास संपन्न कर मृगसर महीने मे गोगुदा पधारे। जय मुनि ने चिंतन कर सतीदासजी को जब तक दीक्षा की आज्ञा न मिले तब तक सिर पर पाग बाधने का त्याग दिला दिया[2]। मुनिश्री एक महीना वहा विराज कर बडी रावलिया पधार गए। पीछे से सतीदासजी खुले सिर बाजार के बीच 'मेडी' मे जाकर सामायिक करने लग गए[3]। उस समय सतीदासजी का ससुर रावलिया से आया और उसने जन-जन के मुख से सुना कि सतीदासजी ने ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण कर लिया है और विवाह का त्याग नही किया है इससे लगता है कि जम्बूकुमार की तरह शादी करते ही दीक्षा ले लेगे। ससुर ने जनसमूह से कहा—'सतीदासजी अपने मुख से यह कह दे कि मैं घर मे रहूंगा और साधु नही बनूंगा तो मै अपनी पुत्री का परिणय करूगा किन्तु जब घर वाले बलात् विवाह कर रहे है तब मै उन्हे कन्यादान कैसे कर सकता हू।'

उसी समय गांव के पंच किसी कार्यवश उस रास्ते से निकले। उन्हे देखकर सतीदासजी 'मेडी' से नीचे आये। लज्जाशील अधिक होने पर भी साहस पूर्वक बोले—'पचो! आप मुझे संयम लेने की अनुमति दिलाए।' इतना कहकर तुरत ऊपर चले गए[4]। पचो मे एक सतीदासजी के बहनोई एकलिंगदासजी मादरेचा भी

---

१. व्रत पचखाण नीं बारता रे लाल, लोक करै चित्त ल्याय।
सौगन भाग्यां दु.ख सहै रे लाल, नरक निगोदे जाय।।
सतीदास सांभली रे लाल, डर पाम्यो दिल माहि।
निश्चल नेम चित्त निरमलै रे लाल, पालणो आण ओछाहि।।
बीजे दिन बोलायवा रे लाल, तीन घरां ना ताम।
आया मन आणद सू रे लाल, आण उमग अभिराम।।
सतीदासजी इम कहै रे लाल, मुज माथो दुखै ताम।
पछै साफ उत्तर दियो रे लाल, नहिं परणवा रा परिणाम।।
(शान्ति विलास ढा० ५ गा० २ से ५)

२. आज्ञा आवै ज्यां लगै रे लाल, पाग तणा पचखाण।
जीत कराया जुगत सू रे लाल, सखर पणै सुविहांण।।
(शान्ति विलास ढा० ५ गा० ८)

३. पाग छाड सतीदासजी रे लाल, मेडी बाजार मांहि।
सामायक करता सही रे लाल, चारित नी चित चाहि।।
(शान्ति विलास ढा० ५ गा० १०)

४. तिह अवसर भेला थया, पच गाम रा पेख।
कारण कोयक ऊपनो रे लाल, आय्या बाजार मे देख।।

थे जो पचो मे प्रमुख, धर्म दलाली मे अग्रणी और चितनशील व्यक्ति थे। वे सब चितन कर सतीदासजी के घर पहुचे। सतीदासजी को भी वहां बुला लिया। अन्य लोग भी एकत्रित हो गए।

पचो ने सतीदासजी से पूछा—'तुम्हारा क्या विचार है?' सतीदासजी ने सकोचवश कुछ जवाव नही दिया। दूसरी वार पूछने पर भी मौन रहे। तव एकलिगदासजी ने उनकी पीठ पर हाथ रख कर पूछा तो स्पष्ट उत्तर देते हुए कहा—'मेरी विवाह करने की बिल्कुल इच्छा नही है, सयम लेने की ही प्रवल भावना है।' उनका दृढतम निर्णय सुनकर एक वार एकलिगदासजी का दिल भी द्रवित हो गया। फिर धैर्य पूर्वक उन्होने सतीदासजी के वडे भाई धूलजी आदि को समझाया और मन को मजवूत कर आज्ञापत्र लिख देने के लिए कहा, तव अभिभावक जन ने आज्ञा का कागद लिखा[1]। घर वालो ने मोहवश सतीदासजी को घर मे रखने के अनेक उपाय किये पर सवेग रस मे लहलीन सतीदासजी अपने लक्ष्य से विचलित नही हुए। लगभग तीन वर्षो की दीर्घ अवधि के पश्चात् विवश होकर ज्ञातिजनो को सहमत होना पडा।

एकलिगदासजी आज्ञापत्र लेकर रावलिया गए और मुनिश्री को समग्र वृतात सुनाते हुए निवेदन किया कि अव जल्दी गोगुदा पधार कर सतीदासजी को दीक्षा प्रदान करे। ये समाचार सुनकर मुनिश्री हेमराजजी और जीतमलजी आदि सभी साधु अत्यत प्रसन्न हुए और शुभ दिन देखकर गोगुदा की धरती को पावन किया। पुर-जन मे नया रग व नई उमग छा गई। सतीदासजी के मन मे तो आनद

सतीदासजी तिण समै रे लाल, मेड़ी सू ऊतर आय।
अति शर्म पिण साहस धरी रे लाल, वोल्या एहवी वाय॥
आग्या दरावो मो भणी रे लाल, संजम लेणो सार।
झट इम कहि चढिया सही रे लाल, पाछा मेड़ी मझार॥
(शान्ति विलास ढा० ५ गा० १५ से १७)

१. ज्येष्ठ सहोदर सतीदासजी नो धूलजी,
कहै 'एकलिगजी' तास वचन अनुकूल जी।
नही राचै घर माहि आज्ञा यानै दीजियै,
कठिन छाती कर आज्ञा नो कागद कीजियै।
एक कहि नै आज्ञा नो कागद लिखावियो,
सतीदासजी नो सोच जजाल मिटावियो।
भगनी मात वे भ्रात स्वजन नो मोह घणो,
पिण मूल न लागो उपाय कै घर राखण तणो॥
(शान्ति विलास ढा० ६ गा० ८, ९)

की उत्ताल तरगे उल्लसित होने लगी। पारिवारिक जन ने बडी धूमधाम से उनका दीक्षोत्सव मनाना प्रारभ किया। विवाह की बनोरिया दीक्षा रूप में परिणत हो गई। ज्ञातिजनो ने खुले दिल से कई दिनों तक चरण-महोत्सव मनाकर अपनी उमग को पूरा किया।[१]

सतीदासजी ने १६ वर्ष की अविवाहित वय मे माता, भाई, बहन आदि विपुल परिवार तथा बहुत ऋद्धि को छोडकर स० १८७७ माघ शुक्ला ५ बुद्धवार को गोगुंदा मे आम्रवृक्ष के नीचे मुनिश्री हेमराजजी के कर-कमलो से सयम ग्रहण किया[२]। उस अवसर पर अनेक गावो के हजारो भाई-बहन दर्शक रूप मे उपस्थित हुए। मुख-मुख पर सतीदासजी के उत्कट वैराग्य की चर्चा होने लगी। लोग कहने लगे—'कई व्यक्ति सगाई छोडकर और कई परिणीता स्त्री को छोड़कर दीक्षित होते है पर इन्होने तो मडे हुए विवाह को ठुकरा कर यौवन के नव वसत की खिलती हुई वय मे चारित्र ग्रहण कर भौतिक युग को नई चुनौती देने वाला उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत कर सतयुग का दृश्य कलियुग मे साक्षात्कार कर दिया। मुनिश्री हेमराजजी के शुभागमन से एवं सतीदासजी की प्रभावशाली दीक्षा के कारण गोगुदा मे धर्म का अच्छा उद्योत हुआ[३]।

---

१. आपके दीक्षा महोत्सव का वर्णन शान्ति विलास ढा० ७ गा० १ से १३ तक मे विस्तृत रूप से है।

२. हेम ऋषि निज हाथ सू आ०, वसत पचम बुधवार कै आ०।
अब वृक्ष तल आयने आ०, सजम दीधो सार कै आ०॥
सोलै वर्ष रै आसरै आ०, सतीदास सुखकार कै आ०।
भ्रात मात भगनी तजी आ०, लीधो सजम भार कै आ०॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १४, १५)
सोलै वर्ष नी वय अति सुन्दर, बहु ऋद्ध जात कोठारी।
वसत पचमी घणै हगामे, चरण लियो सुखकारी॥
(जय सुजश ढा० ७ गा० ७)

३. केइ सगाई छाडी करी, लीधो सजम भार कै।
केइक परण परहरी, पिण या कीधी अधिकार कै॥
मडियो व्याह वखेरियो, जिम्या वनोला जेह कै।
चढती वय चारित लियो, उत्तम पुरुष गुणगेह कै॥
चौथा आरा सारखी, पचमे आरे पेख कै।
इचरज वात करी इसी, सुणता हरष विसेख कै॥
धर्म उद्योत हुवो घणो, पाम्या जन वहु पेम कै।
सखरो वर्ष सततरो, वरत्या कुशल ने खेम कै॥
(शान्ति विलास ढा० ७ गा० १८ से २१)

मुनिश्री ने उसी दिन वहां से विहार किया और शीघ्र राजनगर मे आचार्यश्री भारीमालजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को गुरु-चरणों मे समर्पित किया। आचार्य प्रवर के मुखारविन्द को देखकर मुनि सतीदासजी के रोम-रोम प्रफुल्लित हो गए। भारीमालजी स्वामी ने हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुनि हेमराजजी के सफल प्रयास की भूरि-भूरि सराहना की। समूचे सघ मे हर्ष की लहर दौड़ गई। सात दिनो के पश्चात् स्वय आचार्यश्री ने सतीदासजी को वडी दीक्षा दी और वापस मुनि हेमराजजी को सौप दिया। सतीदासजी मुनिश्री के सान्निध्य मे विद्याभ्यास करने लगे[1]।

(शान्ति विलास ढा० १ से ढा० ८ दो० ७ तक के आधार से)

मुनिश्री जीवोजी (८६) की दीक्षा पोप महीने मे हुई और वडी दीक्षा छह महीनो के बाद हुई तथा सतीदासजी की दीक्षा माघ महीने मे और वडी दीक्षा सात दिन वाद ही हो गई, इससे सतीदासजी जीवोजी से वडे हो गए। (ख्यात)

दीक्षित होने के पश्चात् सतीदासजी 'शांति' नाम से भी पुकारे जाने लगे। शांति मुनि को भिक्षु-शासन जैसा शाति निकेतन एवं भिक्षु शासन को शाति मुनि जैसे शान्ति प्रधान सदस्य मिले। इसे एक मणिकाचन योग व विधि का विचित्र संयोग ही समझना चाहिए।

२. मुनि सतीदासजी हेमराजजी स्वामी के पास विनय नम्रता पूर्वक रहते हुए अपना जीवन निर्माण करने लगे। आचार्यश्री भारामालजी, मुनिश्री खेतसीजी और रायचंदजी के प्रति अखड श्रद्धा व भक्ति भरी भावना रखते। मुनिश्री जीतमलजी के प्रति तो उनका दूध पानी की तरह एकीभाव हो गया था[2]। फिर

---

१. सजम दे सतीदास नै, हेम जीत मुनि आदि।
भारीमाल पैं आविया, पाम्या परम समाधि॥
परम पूज नै पेखतां, पाम्या अधिको पेम।
लुल लुल नै लटका करै, हरष सवाया हेम॥
सतीदासजी नैं सही, दीधा पगां लगाय।
भारीमाल हरष्या घणां, कह्यो कठा लग जाय॥
पूज तणी आज्ञा थकी, हेम सग सतीदास।
सखर समय रस सीखतो, वारु ज्ञान अभ्यास॥
सात दिवस वीता पछै, वारोवार सुन्हाल।
वडी दीख्या सतीदास नै, दीधी भारीमाल॥

(शान्ति विलास ढा० ८ दो० ४ से ८)

२. हेम सग रहै सतीदासो रे, ज्ञान ध्यान नो करत अभ्यासो रे।
वारु विनय गुणे सुविमासो॥

कई वर्ष साथ रहने से वह और अधिक घनिष्ठ बनता चला गया। मुनिश्री हेमराजजी की वात्सल्यमय प्रेरणा एवं मुनिश्री जीतमलजी की सौहार्द-भरी सहानुभूति से शान्ति मुनि श्रमपूर्वक ज्ञानार्जन करने लगे। उन्होने क्रमशः आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प—इन चार आगमो को कठाग्र किया। सूत्रो की हुडिया, आचार्य भिक्षु कृत-३०६ बोलो की हुंडी तथा अनेक व्याख्यान आदि सीखे। ३२ सूत्रो का वाचन कर सूक्ष्म-सूक्ष्म चर्चाओं के विशेपज्ञ बने[1]।

स० १८८१ पोष शुक्ला ३ पाली मे मुनिश्री जीतमलजी का सिंघाडा होने के पश्चात् शान्ति मुनि को हेमराजजी स्वामी के सम्मुख प्रतिनिधि रूप मे नियुक्त किया गया। व्याख्यान देना, गोचरी की देखरेख रखना तथा अन्यान्य कार्यो की सभाल वे ही रखने लगे। उनका कठ सुरीला और वाणी मे माधुर्य था जिससे उनका व्याख्यान अधिक सरस बन जाता और श्रोताओं को प्रिय लगता। उन्होने लगभग २७ वर्षो तक मुनिश्री हेमराजजी की तन्मयता से सेवा-भक्ति कर उनके मन मे विविध प्रकार से समाधि उत्पन्न की। हेम मुनि ने भी शान्ति मुनि को परम विनीत व सुयोग्य समझकर पढ़ाया और खुले दिल से ज्ञान दिया[2]। शान्ति मुनि को मुनिश्री हेमराजजी का योग मणिकाचन की तरह मिला तो मुनिश्री हेमराजजी को भी शान्ति मुनि का योग मिलना कम सौभाग्य-सूचक नही था।

हरष सतीदासजी ऋष वदो रे, मुनि निर्मल नयणा नदो ॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १)

१. भारीमाल सतजुगी नै हेमो रे, ऋषराय तणो अति पेमो रे।
नीको निमल निभावण नेमो।
जीत सू रूडी रीत सुजांणी रे, पीत पै (पय) जल जेम पिछांणी रे।
सुन्दर प्रकृति सखर सुहांणी ॥

(शा० वि० ढा० ८ गा० १२, १३)

२. समत अठारै इक्यासीये, पोस सुकल तिथि तीज।
कियो सिघाडो जीत नो, आप्या सत सुचीज ॥
सतीदासजी नै सखर, जाण्या अधिक सुजाण।
हेम तणै मुख आगले, थाप्या आगेवाण ॥
हेम भणी हद रीत सू, सखरी चित्त समाध।
उपजाई विध विध करी, आणी अति अहलाद ॥
सरस कठ वाणी सरस, सरस कला सुविहाण।
हेम समीपे शांति ऋष, वाचै सरस वखाण ॥

(शा० वि० ढा० ९ दो० ३ से ६)

जयाचार्य ने हेमनवरसा मे लिखा है—

सौम्य प्रकृति अति पुन्य सरोवर, सुविनीतां सिरदारी।
एहवा सतीदास मिलिया हेम नै, पूरव पुन्य प्रकारी॥
चालण बोलण कार्य मे, अन्न पान वस्त्रादि विशाली।
विविध साता उपजाई सतीदास, प्रीत भली पर पाली॥

(हेमनवरसो ढा० ६ गा० २६, ३०)

मुनि सतीदासजी ने अनेक आगम तथा ग्रथो की प्रतिलिपि की। जिनमे भगवती सूत्र (जिसका एक मुनि जीतमलजी ने और दो भाग मुनि सतीदासजी ने लिखे) तथा अन्य कई ग्रथ तो उन्होने मुनिश्री हेमराजजी के पढने के लिए विशेष रूप से लिखे थे। उन प्रतियों के अन्त मे लिखा हुआ मिलता है कि यह प्रति मुनि हेमराजजी के पठनार्थ लिखी गई है।

३. स० १६०४ ज्येष्ठ शुक्ला २ को सिरियारी मे मुनिश्री हेमराजजी के स्वर्गस्थ होने के बाद आचार्यश्री रायचदजी ने छह साधुओ से शान्ति मुनि का सिघाडा किया[1]। मुनिश्री ने अनेक गांवो नगरो मे विचरण कर अच्छा उपकार किया और जैन शासन की महिमा बढाई। मुनिश्री के आकर्षक व्यक्तित्व, सरस व्याख्यान शैली तथा मधुर व्यवहार से अन्य मतावलम्बी भी बहुत प्रभावित हुए[2]।

सवत् १८७८ से १६०४ तक के चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ

(वर्ष) सप्तवीस जाझो सखर, हेम तणी ऋप शाति।
सेव करी साचै मनै, भाजी मन री भ्राति॥
अतसीम दीधो अधिक, सखरो सजम साझ।
शाति ऋषीसर सूरमो, सुवनीता सिरताज॥

(शा० वि० ढा० १० दो० २, ३)

सखर पढाया थानै सोभता, हेम ऋपी हद रीत हो०।
भाजन जाणी भणाविया, वले जाण्या घणा सुविनीत हो॥
परम भाजन थाने परखिया, सखर प्रकृत सुखकार हो।
अधिक विनय गुण आगला, तिण सू हेम भणाया थानै सार हो॥

(शा० वि० ढा० ६ गा० १०, १३)

१. शाति ऋपि नें सूपिया, सुगुणा सत उदार।
ऋपिराय चौमासो भलावियो, परगट सैहर पीपाड॥

(शा० वि० ढा० १० दो० ६)

२. अन्य मति पिण ऋष शाति नी, मुद्रा देखत पाण हो।
तन मन हिवड़ो हूलसै, वले हरखै सांभल वाण हो॥

(शा० वि० ढा० १० गा० ३)

किये। उनका हेम नवरसा ढा० ५, ६ में उल्लेख है। अग्रणी होने के पश्चात् स० १६०५ से १६०८ तक के चातुर्मासो की तालिका इस प्रकार है—

(१) स० १६०५ का ६ साधुओ से पीपाड़ चातुर्मास किया। वहां—

(१) शाति मुनि ने पचोला।
(२) मुनि मोतीजी (७७) ने उपवास।
(३) ,, कर्मचदजी (८३) ने आछ के आगार से १६ दिन।
(४) ,, उदयचन्दजी (६५) ने पानी के आगार से ४६ दिन।
(५) ,, हरखचन्दजी (१४४) ने १६ दिन।
(६) ,, दीपचन्दजी (१४६) ने ३१ दिन का तप किया।

(२) स० १६०६ का ६ साधुओ से पाली चातुर्मास किया। वहां—

(१) शान्ति मुनि ने वेला।
(२) मुनि मोतीजी (७७) ने वहुत उपवास।
(३) ,, कर्मचदजी (८३) ने तेला।
(४) ,, उत्तमचदजी (६०) ने ६ दिन का तप।
(५) ,, उदमचदजी (६५) ने पानी के आगार से ३० दिन का तप।
(६) ,, हरखचदजी (१४४) ने एक दिन का तप।
(७) ,, छोटूजी (१४८) ने पचोला।
(८) ,, दीपजी (१४६) ने १८, ८, ६ दिन का तप।
(६) ,, नाथूजी (१५३) ने उपवास किया।

(३) स० १६०७ का ८ साधुओ से वालोतरा चातुर्मास किया। वहां—

(१) शाति मुनि ने पचोला।
(२) मुनिश्री मोतीजी (७७) ने ११ दिन का तप।
(३) ,, ,, कर्मचन्दजी (८३) ने पंचोला।
(४) ,, ,, उत्तमचदजी (६०) ने ८ दिन का तप।
(५) ,, ,, उदयचन्दजी(६५)ने पानी के आगारसे ३५ दिन का तप।
(६) ,, ,, हरखचदजी (१४४) ने १५ दिन का तप।
(७) ,, ,, दीपजी (१४६) ने आछ के आगार से ८१ दिन का तथा ६ दिन का तप।
(८) ,, ,, नाथूजी (१५३) ने १३ दिन का तप।

(४) स १६०८ मे ८ साधुओं से पचपदरा चातुर्मास किया। अनुमानतः ८ साधु उपर्युक्त थे। वहा—

(१) मुनिश्री उदयचदजी (६५) ने पानी के आगार से ४० दिन का तप।
(२) मुनिश्री हरखचदजी (१४४) ने १३ दिन का तप।

(३) मुनिश्री दीपजी (१४६) ने आछ के आगार से ३१ दिन का तप किया।

इस चातुर्मास मे शान्ति मुनि अस्वस्थ हो गये। अढाई महीने करीब बुखार रहा। वेदना बड़े समभाव से सहन की।

उक्त चातुर्मास आदि का वर्णन शान्ति विलास ढा० १० के आधार से किया गया है।

स० १६०६ मे मुनिश्री का अतिम चातुर्मास बीदासर हुआ। उसका विवरण आगे टिप्पण ६ मे प्रस्तुत किया है।

४. स० १६०८ का पचपदरा मे चातुर्मास कर शान्ति मुनि ने मृगसर वदि १ को वहां से विहार किया। जसोल, बालोतरा होते हुए वे बाघावास पधारे। वहा लगभग २५ दिन विराजे।[1]

उस समय तृतीयाचार्य श्री रायचदजी का रावलिया मे माघ वदि १४ को अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। इसके समाचार नाथद्वारा मे आये। नाथद्वारा के श्रावको ने कासीद द्वारा पत्र देकर पाली समाचार भेजा। पाली वालो ने बालोतरा और बालोतरा वालो ने उक्त समाचारों का पत्र बाघावास भेजा। वहां शान्ति मुनि को मालूम हुआ कि ऋषिराय स्वर्ग पधार गये है। समाचार माघ शुक्ला ७ को मिले। सभी साधुओ ने चार 'लोगस्स' का ध्यान किया और उस दिन उपवास रखा। आयुष्य के आगे किसी का बल नही चल सकता, ऐसा सोच-कर समताभाव से उस विरह को सहन किया। पढिये तद्विषय निम्नोक्त पद्य—

इस अवसर मेवाड थी, आयो कसीद तिवार।
प्रसिद्ध पाली सैहर मे, कागद मे समाचार॥
पाली थी जन मोकल्यो, सैहर बालोतरे तास।
बालोतरा थी मेलियो, ऊ वांदै बाघावास॥
मेवाड ने पाली तणा, बालोतरा ना जोय।
कागद में समाचार ए, ऋषराय पोहता परलोय॥

---

१. मनवलियो मुनिवर घणो, नही रहिवा री नीत हो।
मृगसर विद एकम दिने, विहार कियो धर पीत हो॥
जसोल होय बालोतरे, आया मुनी चलाय हो।
विचरत विचरत आविया, सैहर बाघावास माय हो॥
दिवस पचीस रै आसरै, हूवा बाघावास माय हो।
इह अवसर हुई वारता, ते साभलज्यो चित ल्याय हो॥
(शा० वि० ढा० १० गा० २३ से २५)

महाविद चवदश रात्रि में, छोटी रावलिया मांहि।
ऋपराय परलोक पधारिया, अचांणचक रा ताहि।
विशेप वेदन ना हुई, बैठा बैठां जांण।
आउ अचित्यो आवियो, सुणियो शांति सुजाण ।।
कडली लागी अति घणी, कही कठा लग जाय।
शाति समय रस थी तदा, लीधो मन समझाय ।।
धिग-धिग ए ससार नै, काल थी जोर न कोय।
ऋपराय जिसा महापुरुप था, जाय पहुता परलोय ।।
साध साधवी श्रावक श्राविका, वली अनेरा लोग।
स्वाम मरण निसुणी करी, हुओ घणां नै सोग ।।
माह सुदि सातम साभल्यो, शाति ऋपि तिणवार।
चिहु लोगस काउसग करी, पचख्यां तीनू आहार ।।

(शान्ति विलास ढा० ११ दो० १ से ६)

शान्ति ऋषि ने साधुओं से कहा—जयाचार्य यदि थली प्रदेश मे है तो हम लोगो को शीघ्र उस तरफ विहार करना चाहिए। पाली जाने पर हमे पक्के समाचार मिल जायेगे कि जयाचार्य थली मे ही है या मेवाड पधार गये है। वे जहा भी हों हमे वहा जाकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनी है।

मुनिश्री ने बाधावास से तुरत पाली की तरफ विहार किया। वे रोयट पहुचे तब बीदासर से एक कासीद आया और बोला—जयाचार्य अभी बीदासर विराज रहे है। उसने वहा के सारे समाचार भी सुनाये। तब शाति मुनि ने पाली होते हुए बीदासर जाने का निश्चय कर विहार कर दिया। क्रमश. मजिल करते हुए वे पाली से कुछ मील आगे बढे तब रास्ते मे मेवाड़ से आने वाले साधुओ के कई सिघाड़े चडावल, कई जैतारण और कई पादू मे मुनिश्री के साथ हो गये। कई सिंघाडे सिरियारी, कई व्यावर (नयाशहर) और कई किशनगढ़ के रास्ते से आ रहे थे। इस प्रकार चल सकने वाले प्राय: साधु-साध्वियो के सिघाड़े थली की तरफ चरण बढा रहे थे। समूह रूप मे साधु-साध्वियो को एक गुरु दिशा मे जाते देखकर स्वपर-मती लोग आश्चर्यचकित हो गये और तेरापथ की एकता का गौरव गाने लगे। इस सदर्भ के मूल पद्य इस प्रकार है—

अहो मुनि जीत ऋपि थली देश में, विचरै छै मुनिराज हो।
अ० मु० पद युवराज पैहली दियो, वर्स त्राणुअे समाज हो।
अहो मुनि धिन-धिन शाति मुनीश्वरू ।।
अ० मु० ! सिरँ किल्याण आपां भणी, इहा थी करिवो विहार हो।
अ० मु० जीत कनै जाणो वेग सूं, न करणी ढील लिगार हो ।।

अ० मु० प्रगट 'पाली' सैहर में, पक्का ह्वेला समाचार हो।
अ० मु० जीत थली माहे अच्छै, अथवा आया मेवाड हो॥
अ० मु० जिह ग्रामे ऋष जीत ह्वै, तिहा जाणो आपा नै वेग हो।
अ० मु० तास आणा सिर पर धरां, छाडी मन नो आवेग हो॥
अ० मु० वडेरो ऋष काल कियां छता, जाणो जोग्य 'तणी'[1] दिशी धार हो।
अ० मु० आप छादे नही विचरणो, कह्यो सूत्र व्यवहार हो॥
अ० मु० आप छादे रहै तेहनै, प्रसस्या डड आय हो।
अ० मु० नसीत उद्देशे इग्यार मे, भाख्यो श्री जिनराय हो॥
अ० मु० उत्तराधेन चोथा अधेन मे, छादो रूध्या कही मोख हो।
अ० मु० गुरु नी आज्ञा माहे चालणो, प्रभु वच निर्दोख हो॥
अ० मु० इत्यादिक सूत्र नी वात नो, शाति ऋपिश्वर जाण हो।
अ० मु० विहार कियो पाली दिशा, शाति गुणा तणी खाण हो॥
अ० मु० रोयट मांहे आया ऋषि, इह अवसर माहि हो।
अ० मु० कासीद बीदासर थी मोकल्यो, शाति ऋपि पासे ताहि हो॥
अ० मु० रोयट मे ऋष शाति थी, आय मिल्यो तिण वार हो।
अ० मु० वीदासर जीत विराजिया, कह्या सहू समाचार हो॥
अ० मु० पाली होयने आवै पाधरा, इह अवसर माहि हो।
अ० मु० सत हुता जे मेवाड में, ते पिण आवै छै ताहि हो॥
अ० मु० केयक चडावल भेला हुआ, केई जैतारण माहि हो।
अ० मु० केयक पादू माहे मिल्या, सतिया पिण मिली ताहि हो॥
अ० मु० केयक सिरीयारी होय आवता, केई नवेनगर वाट हो।
अ० मु० केयक कृष्णगढ मारगे, संत सत्या रा आवै थाट हो॥
अ० मु० इण विध साधु वहु साधव्या, थली कानी आवत हो।
अ० मु० अचरज लोक पाम्या घणा, थयो उद्योत अत्यत हो॥
अ० मु० अन्यमती पिण अचरज हुआ, यारै एकठ अत्यत हो।
अ० मु० आज्ञा तणी तीखी आसता, दीप्यो प्रभू तणो पथ हो॥
अ० मु० स्वमती च्यार तीर्थ सहू, पाया चित चिमत्कार हो।
अ० मु० शक्ति वाला वहु साधु साधवी, आय गया तिणवार हो॥

(शा० वि० ढा० ११ गा० १ से १६ तक)

इस तरह अनेक साधुओ के साथ शान्ति मुनि के लाडनू पधारने की सूचना सुनकर जयाचार्य ने दो साधुओ को उनके सामने भेजा। जिन्होने तीस कोश लगभग चलकर ईड़वा मे शान्ति मुनि के दर्शन किये—

---

१. उस।

अ० मु० शाति ऋषिश्वर आदि दे, सत घणां त्यारै लार हो।
अ० मु० लाडणू आवै आणद सू, सुणियो जीत तिवार हो॥
अ० मु० दोय साधु तो पेहला मोकल्या, शाति ऋषि साहमा जाण हो।
अ० मु० ईडवे जाय भेला हुआ, तीस कोस उनमान हो॥

(शाति विलास ढा० ११ गा० १७, १८)

शान्ति मुनि जिस दिन लाडनू पधारे उस दिन जयाचार्य ने मुनि स्वरूपचदजी आदि साधुओ को उनकी अगवानी के लिए भेजा। अनेक भाई-बहन मुनिश्री के दर्शनार्थ सामने गये। शहर मे सर्वत्र उल्लास उमड़ पडा और नया रग खिल गया। शान्ति मुनि ने मुनिवृन्द के साथ जयाचार्य के दर्शन किये और भावविभोर होकर चरणो मे गिर गये। 'जयाचार्य ने आत्मीय स्नेह उडेलते हुए उन्हे हाथ पकड़कर अपने बराबर बाजोट पर बिठा लिया।"[1] शान्ति मुनि अस्वीकार करते हुए तुरत नीचे उतरकर जमीन पर बैठ गये। उस समय वहा उपस्थित साधु-साध्वियां तथा सैकडो श्रावक-श्राविकाए उस दृश्य को देखकर अत्यत हर्षित हुए।[2]

(शा० वि० ढा० ११ गा० १६ से २३)

जयाचार्य ने विशेष अनुग्रह कर शांति मुनि को भोजन विभाग से मुक्त किया। फिर जयाचार्य श्रमण परिवार से सुजानगढ़ पधारे। वहा प्रात.कालीन प्रवचन के समय जयाचार्य ने फरमाया—'जिस प्रकार स्वर्ग मे इन्द्र के समीप त्रायत्रिंश दोगुदक देव[3] होते है उसी तरह हमारे सम्मुख शान्ति मुनि है।' इस प्रकार जयाचार्य ने शान्ति मुनि को सम्मानित किया व अपने हृदय मे स्थान

---

१. इस सदर्भ मे कहा जाता है कि जयाचार्य को रात्रि के समय स्वप्न मे आभास हुआ कि ऐसा नही करना चाहिए।

२. अ० मु० 'लाडणू' आवै छै ते दिने, जीत कहै सुणो सत हो।
अ० मु० शान्ति साहमा शीघ्र जायजो, संत सुणी हरषत हो॥
अ० मु० सरुपचन्द्र ऋष आदि दे, सत घणा लेइ सोय हो।
अ० मु० साहमा आया ऋष शाति रे, हरष हीये अति होय हो॥
अ० मु० लोक घणा नगरी तणा, शाति ऋषि साहमा जाय हो।
अ० मु० मेलो मड्यो तिण अवसरे, हुओ हरष ओछाय हो॥
अ० मु० शाति ऋषी बहु सता थकी, प्रणमै जीत नां पाय हो।
अ० मु० लोक सङकड़ा भेला हुआ, सत सती बहु ताय हो॥
अ० मु० धर्म उद्योत हुवो घणो, सैहर लाडणू रे माय हो।
अ० मु० ठाणां चौरासी भेला हुआ, सत सती सुखदाय हो॥

शा० वि० ढा० ११ गा० १६-२३

३. मन्त्री या पुरोहित का काम करने वाले देव।

दिया ।[1]

५. मुनिश्री बड़े आत्मार्थी, पापभीरु और जागरूक थे। उन्होने उपवास, बेले, तेले, चोले, पचोले अनेक बार किये। एक बार सात और दो बार आठ दिनों का तप किया। स० १८९८ के पाली चातुर्मास मे मुनिश्री हेमराजजी के साथ उन्होने आछ के आगार से ३१ दिन का तप किया। उस मासखमण के समय वे प्रतिदिन मुनिश्री की वैय्यावृत्य करते और दोनो समय का व्याख्यान भी देते थे। उन्हे छह विगय मे से तीन विगय के अतिरिक्त खाने का जीवन पर्यंत परित्याग था।[2]

मुनिश्री ने जिस दिन दीक्षा ली उस रात्रि को दो पछेवडी (चद्दर) ओढी। तब मुनि जीतमलजी ने उनसे कहा—'मै एक पछेवड़ी ओढता हू, मुनिश्री

---

१. सैहर लाडणू मे सखर, शाति मुनि नी सार।
पांती छोड़ी जीत ऋष, जाणी महा गुणधार।।
सत पैतीसा सू सखर, विहार करी तिणवार।
सुजानगढ आया सही, शाति सग जय सार।।
प्रात वखाण समय पवर, च्यार तीर्थ रा थाट।
सहु सुणता ऋष शाति नै, जीत कहै सुध वाट।।
इन्द्र पास त्रायत्रिश सुर, दोगुदक कहिजेह।
तिम म्हारै ए शाति है, तावतीसग सम एह।।
(शा० वि० ढा० १२ दो० ३ से ६)

२. चौथ छठ कियो बहु वारो, अठम दशम अधिक उदारो।
मुनि कीधा है हरष अपारो रे।
मुनि प्यारा, रूड़ो शान्ति विलास सुणीजै।।
पांच पाच ना थोकड़ा सीधा, शांति ऋषि बहुवार कीधा।
नरभव ना लाहवा लीधा रे।।
सात दिवस किया इकवार, वले दोय अठाई उदार।
शाति ज्ञान गुणा रो भडार रे।।
वर्ष अठाणुवे सुमुनीस, पाली माहे पवर सुजगीस।
आछ आगारे किया इकतीस रे।।
मासखमण मे शाति सयाण, नित्य हेम नी वियावच जाण।
दिया दोनूइ टक रा वखाण रे।।
त्याग तीन विगै उपरत, जावजीव किया मुनि शाति।
सुखदायक महा गुणवत रे।।
(शा० वि० ढा० १२ गा० १ से ६)

हेमराजजी वृद्ध होने पर भी दो पछेवड़ी ओढते है तो फिर तुम इस बालक वय मे ही दो पछेवडी क्यो ओढते हो ?' जय मुनि की इस बात को हृदय से स्वीकार कर उन्होने एक पछेवडी ओढना शुरू कर दिया। लगभग २७ वर्ष स० १८७७ से १९०४ तक(मुनि हेमराजजी के स्वर्गवास तक) स्वस्थ अवस्था मे एक ही पछेवड़ी ओढी।

मुनिश्री हेमराजजी के दिवगत होने के पश्चात् आचार्यश्री रायचदजी ने उन्हें आदेश दिया कि अब दो पछेवड़ी से कम नही ओढना है। तब से वे दो पछेवड़ी ओढने लगे।

उनकी कर्म-निर्जरा की इतनी दृष्टि रहती कि वे सर्दी के समय भी ठडे स्थान मे बैठकर अध्ययन आदि किया करते थे।[1]

६. मुनिश्री साधिक चार वर्षो तक स्व-पर का कल्याण करते हुए अग्रगण्य रूप मे विचरते रहे। जयाचार्य ने उनका स० १९०९ का चातुर्मास बीदासर के लिए घोषित किया। वे जयाचार्य की सेवा मे लाडनू से सुजानगढ़ तथा बीदासर पधारे। वहा जयाचार्य एक महीना विराजे। वापस लाडनू पधार कर जयाचार्य ने जयपुर की तरफ विहार कर दिया। शान्ति मुनि कुछ दिन वहा ठहर कर आषाढ़ महीने मे चातुर्मास के लिए बीदासर पधार गये।

---

१. दिख्या लीधी ते रात्रि मझार, ओढ़ी दोय पछेवडी धार।
ऋषि जीत कह्यो तिणवार रे॥
एक चादर ओढू हू सोय, हेम वय नेडा आया जोय।
ते पिण ओढ़ै पछेवड़ी दोय रे॥
हिवड़ा बाल अवस्था माय, दोय चदर ओढै तू ताय।
जीत बोल्यो इण विध वाय रे॥
शाति जीत तणी सुण वाण, एक ओढ़ण लागो जाण।
तन सुख समाधे पिछाण रे॥
हेम जीव्या जठा ताइ देख, मुनि ओढी पछेवडी एक।
करण री बात न्यारी पेख रे॥
हेम चल्या पछै ऋषिराय, मुनि शाति भणी कहै वाय।
दोया सू ओछी आज्ञा नांय रे॥
तठा पछै ओढण लागा दोय, आचार्य रो वचन अवलोय।
सुवनीत न लोपे कोय रे॥
शीतकाले भणै शीत स्थानो रे,जन सके तिहा सीत जाणो रे।
ग्यान ध्यांन रसी गलतानो रे॥
(शा० वि० ढा० गा० ७ से १३ तथा ढा० ८ गा० १८)

वहा शांति मुनि सहित ५ साधु थे। पावस काल मे मुनिश्री की मधुर-प्रेरणा एवं उनके प्रौढ प्रभाव से धर्म का जोर-तोर से प्रचार-प्रसार हुआ। भाई-वहनो ने दर्शन-सेवा, व्याख्यान-श्रवण, तत्त्वज्ञान आदि का अत्यधिक लाभ लिया। तपस्या की तो वाढ सी आ गई। चोले से लेकर २१ तक के थोकड़ो की सख्या पाच सौ करीव हो गई।[1]

साधुओ मे भी अच्छी तपस्या हुई—

१. शांति मुनि ने पचोला किया।

२. मुनिश्री उदयचंदजी (६५) ने ५६ दिन का तप किया (पानी के आगार से)।

३. ,, हरखचदजी (११४) ने दो पचोले किये।

४. ,, दीपचदजी (१४६) ने पचोला, आठ और १३ दिन (पानी के आगार से) तथा ६१ दिन आछ के आगार से किये।

५. ,, नाथूजी (१५३) ने तेला तथा पचोला किया।

इस प्रकार चातुर्मास मे वहुत उपकार हुआ। मुनिश्री की यशोगाथा जन-जन के मुख पर गूजने लगी। (शा० वि० ढा १२ दो० २, ४, ७, १५ से १६ तथा ढा० १३ दो० १ से ५ और गा० १ से १० के आधार से)

७. कार्त्तिक महीने मे वीकानेर के श्रावको द्वारा भेजा हुआ एक कासीद वीदासर आया। उसने शांति मुनि से बीकानेर पधारने की भावभरी प्रार्थना की। मुनिश्री ने कहा—'स्वरूपचन्दजी स्वामी का लाडनू चातुर्मास है। चातुर्मास के पश्चात् उनके दर्शन होने पर वे मुझे जहा भेजेगे उधर ही मेरा जाने का विचार है।' (शा० वि० ढा० १३ गा० ५)

क्रमश. चातुर्मास सपन्न हुआ। मृगसर कृष्णा १ के दिन साधु श्रावको के घर से कपडा लेकर आये। शन्ति मुनि के शरीर पर फटी हुई पछेवडी देखकर कहा—'अव शीत ऋतु आ रही है, अत आप नई पछेवडी ओढ लीजिए।' शांति मुनि वोले—'मुनिश्री स्वरूपचन्दजी यहां पधारने वाले हैं, वे अपने हाथ से नई पछेवडी देगे तभी ओढ़ने की इच्छा है।' मुनि हरखचन्दजी ने अत्याग्रह किया तो शांति मुनि ने नई पछेवडी ओढने का त्याग कर दिया। शांति मुनि के चारित्र के निर्मल और रीति के जानकार थे। वे आचार्यो तथा दीक्षा-ज्येष्ठ साधुओं को हर कार्य मे आगे रखते और उन्हे विशेष महत्त्व दिया करते थे।[2]

---

१. दशम भक्त स्यू अकबीस तांई, सखर थोकडा जाण।
शांति तणी वाणी साभल कीधा, पंचसया उनमान॥

२. वीकानेर थी आई वीनती, कार्त्तिक मे कासीद।
शांति कृपा कर दर्शन दीजै, बड़ा जश केरा वीद॥

शांति मुनि मृगसर वदि १ की रात्रि को गांव के वाहर रहे। दूसरे दिन लाडनू से मुनिश्री सरूपचन्दजी के पधारने पर वापस शहर मे आ गये। उनके कल्प से वहां रहे। शांति मुनि ने मुनिश्री सरूपचदजी के सम्मुख सारा कपडा रख दिया। उन्होने जो दिया वह ले लिया। फिर उन्होने शांति मुनि को निर्देश दिया कि मृगसर वदि १२ को विहार कर वीकानेर की तरफ जाना है। मुनिश्री ने उसे सहर्ष स्वीकार किया।

शाति मुनि मुनिश्री स्वरूपचन्दजी की आज्ञा का अखड पालन करते एव समर्पित होकर रहते। प्रतिदिन प्रभात के समय व्याख्यान देते। मृगसर वदि ८ के दिन शाति मुनि ने मुनि हरखचन्दजी से कहा—'आज सूत्रकृताग सूत्र सपूर्ण हो गया है। कल सुवह व्याख्यान में वाचन के लिए उत्तराध्ययन सूत्र के अन्तर्गत मृगा पुत्र के १६ वें अध्ययन के पत्र निकालकर तैयार रखना।'

मृगसर वदि ६ के दिन मुनिश्री सरूपचन्दजी ने शाति मुनि को कहा—'वीकानेर एक महीने रहना है। फिर आस-पास के क्षेत्रो मे विचरण कर स० १६२० का चातुर्मास वीकानेर करना है।'

इस प्रकार परम उल्लासपूर्वक परस्पर वार्तालाप हुआ। परन्तु भावी वलवान होती है वह कुछ का कुछ कर देती है।

उक्त वार्ता प्रसग के पश्चात् मुनिश्री सरूपचंदजी शांति मुनि आदि के साथ गांव के वाहर धोरो (ताजियो के धोरों) मे शौचार्थ पधारे। वहा शांति मुनि के शरीर में घोर वेदना उत्पन्न हुई एव भयकर उपद्रव हुआ। जवान विल्कुल वद हो गई पर अन्तर चेतना थी। कुछ समय वाद मुनिश्री नाथूजी (१५३) ने उनकी यह स्थिति देखी तव तुरत मुनिश्री सरूपचंदजी को वुलाया। मुनिश्री आये, सव सत इकट्ठे हो गये। शांति मुनि को वहां से उठाकर एक टीवे पर लाकर सुला

शाति ऋषीसर इण पर भाखै, स्वरूपचजी स्वाम।
जिण दिश मुझ मेलेसी तिण दिश, विहार करण परणांम।
मृगसर विद एकम दिन मुनिवर, ततु जाच्यो ताम॥
जीर्ण चदर देख शाति रे, साध कहै सुण स्वाम॥
नवी पछेवडी आप करीजै, अधिक सीत अवलोय।
पवर नीत ऋप शाति तणी, भल उत्तर आपै सोय॥
सरूपचदजी स्वाम लाडणू, चौमासो चित्त चाव।
ते निज कर स्यू चदर देसी, जद ओढण रा भाव॥
हरखचद अति ही हठ कीधा, त्याग कीधा तिणवार।
शांति मुनि इम जाण रीत नो, नीत प्रतीत उदार॥

(शा० वि० ढा० १३ गा० ११ से १३)

दिया। मुनिश्री स्वरूपचन्दजी ने शान्ति मुनि से पूछा—'तुम्हारे क्या तकलीफ है ?' मुनिश्री ने हाथ की एक अगुली ऊची की पर मुख से बोला नही गया। शहर मे सूचना मिलते ही बहुत लोग वैद्य को साथ लेकर वहां पहुच गये। वैद्य ने नाडी देखकर कहा—'इन्हे शीघ्र गाव ले चले।' लगभग आठ मुनि उनको कवल आदि में सुलाकर एव विधिवत् उठाकर शहर मे लाये। सर्वत्र हाहाकार सा मच गया।

औषध, तेल मर्दन आदि विविध उपचार किये परतु एक भी कामयाब नही हुआ। साढे पांच प्रहर करीब अत्यधिक असाता रही। जबान बद तो थी ही पर इशारा भी नही कर सके। कर्मो की गति बडी विचित्र होती है। न जाने किस जन्म के बधे हुए कर्म किस जन्म मे उदित हो जाते है। शान्ति मुनि जैसे महापुरुष को भी घोर वेदना ने आकर घेर लिया। उसी दिन लगभग अर्धरात्रि के समय वे काल प्राप्त कर गये। इस प्रकार स० १९०९ मृगसर वदि ९ को बीदासर मे शान्ति मुनि का आकस्मिक स्वर्गवास हो गया।[1]

(शा० वि० ढा० १३ गा० १७ से ३६ के आधार से)

शान्ति मुनि जैसे महापुरुष के एकाएक दिवगत होने पर सबकी अखियो के सामने ससार की नश्वरता का चित्र घूमने लगा। काल के आगे किसी का बल नही चलता, ऐसा घोष बार-बार जनता के मुख से निकलने लगा। साधुओ ने शान्ति मुनि के पौद्गलिक शरीर का विसर्जन कर चार लोगस्स के ध्यान द्वारा अरिहतो का स्मरण किया। दसमी के दिन सभी ने उपवास किया। श्रावको ने मृत्यु-महोत्सव मनाते हुए उनकी दाहसस्कार-क्रिया की। शान्ति मुनि के अचानक स्वर्गवास होने पर चतुर्विध सघ को भारी विरह-वेदना उत्पन्न हुई[2]।

---

१. आधी रात मठेरी आसरे, शाति मुनि कियो काल।
उगणीसे नवके मृगसर विद, नवमी तिथ निहाल॥

(शा० वि० ढा० १३ गा० ३६)

गोगुदा ना जांण रे, सतीदास चरण सततरे।
मृगसर विद नवमी पिछाण रे, परभव बीदासर मझे॥

(आर्या दर्शन ढा० १ सो० २)

वर्ष सिततरै चर्ण हेम पै, सोम्य प्रकृति सुखकारो रे।
उगणीसै नवके मुनि परभव, सतीदास गुण धारो रे॥

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४०)

२. धिग-धिग ए ससार भणी रे, काल स्यू जोर न कोय।
शाति सरीखा महापुरुष ते, जाय पौहता परलोय॥
तन वोसराय काउसग मे, गुणिया लोगस च्यार।
दसम दिन सगलाई मुनिवर, पचख्या तीनू आहार।

शान्ति मुनि सोलह साल गृहस्थ वय मे रहे। बत्तीस वर्ष निर्मल भावो मे चारित्र का पालन किया और अनेक प्राणियो को धर्म का प्रतिवोध दिया। हठात् अडतालीस वर्ष की उम्र मे आयुष्य पूर्ण कर गये।[1]

८. जयाचार्य ने मुनिश्री सतीदासजी के जीवन प्रसग पर 'शाति विलास' नामक आख्यान की रचना की। उसकी १३ ढाले है। जिसमे ६३ दोहा १ कलश और २६५ गाथाए है। जो स० १६१० भाद्रव शुक्ला १२ बुद्धवार को नाथद्वारा मे रचा गया है[2]। इस आख्यान को जयाचार्य ने स्वय जोडते समय लिपिवद्ध किया। कुछ भाग साधुओ से लिखवाया। वह मौलिक प्रति पुस्तक-भण्डार मे सुरक्षित है।

उनके गुण वर्णन की मुनिश्री हरखचदजी (१४४) तथा साध्वीश्री गुलाबाजी (२७१) कृत दो ढाले 'प्राचीन गीतिका सग्रह' मे है।

ख्यात, शासन विलास, ढा० ३ गा० ४१ की वार्त्तिका तथा शासन प्रभाकर भारी सत वर्णन ढा० ४ गा० १८७ से २०२ मे उनके जीवन-प्रसग का कुछ वर्णन मिलता है।

जयाचार्य ने शान्ति मुनि के विरल गुणो का मार्मिक शब्दो मे उल्लेख करते हुए हार्दिक भावाभिव्यक्ति की। पढिये निम्नोक्त पद्य—

> सुखदायक लायक सखर, वायक अमृतवान।
> दायक शिव-सम्पति दमी, सतीदास सुखदान॥

तन महोच्छव दशम प्रभाते, कीधा विविध प्रकार।
ते कारण ससार तणा छै, नही धर्म पुन्य लिगार॥
शाति मुनि ना समाचार सुण, गाम नगर पुर देश।
चित करड़ी लगी अधिकेरी, जांण रह्या सुजिनेश॥
(शा० वि० ढा० १३ गा० ३७ से ४०)

१. सोलै वर्ष आसरै घर मे, रह्या शाति ऋप जान।
वर्ष बतीस आसरै चारित्र, पाल्यो अधिक प्रधान॥
सर्व आउखो शाति तणो, आसरै वर्ष अडताल।
घणा जीवां नै प्रतिवोधी नै, कियो अचित्यो काल॥
(शा० वि० ढा० १३ गा० ४६, ५०)

२. सवत् उगणीसै वर्ष दशै, मास भाद्रवा माय।
सुदि पख बारस बुधवार भल, सिद्ध जोग सुखदाय॥
भीखू भारीमाल ऋषराय प्रसादे, जोड़यो शान्ति विलास।
जय जश आनद मगल कारण, श्रीजीदुवार चोमास॥
(शा० वि० ढा० १३ गा० ५२, ५३)

सुखदाई संता भणी, समणी नै सुखदाय।
श्रावक नै वलि श्रावका, सहु नै घणू सुहाय।।
शांति प्रकृति सुन्दर सरस, मुद्रा शाति सुमोद।
शाति रसे मुनि शोभतो, पेखत लहै प्रमोद।।
उपशम रस रो आगरू, हस्तमुखी हद नैण।
प्रवल पुण्य नो पोरसो, वारू अमृत वैण।।
जशधारी भारी सुजश, इकतारी अणगार।
जयकारी मुनि जन तणो, अवतरियो इण आर।।

(शा० वि० ढा० १ दो० १ से ५)

सुदर स्वभाव था सारिखो, मनुष्य हजारा रे माय हो।
वहुलपणै नही देखियो, तुझ गुण अनघ अथाय हो।।
सखर मुद्रा थारी शोभती, पवर प्रशात आकार हो।
प्रशांत रस प्रभूजी कह्यो, देखलो अनुयोगद्वार हो।।

(शा० वि० ढा० ६ गा० १४, १५)

निकलक शाति मुनि निरख्यो, म्है तो मन तन सेती परख्यो।
गुण गावत हिवडो हरख्यो।।
वाह वाह रै शांति सधीरा, सायर गेहर गभीरा।
हद विमल अमोलक हीरा।।
अति सुन्दर मुद्रा एन, ऋष याद आवै दिन रैण।
चित्त माहे लहै अति चैन।।
ऋपराज शांति मुनि रटियो, म्हारो दुरित उपद्रव मिटियो।
पचमे आरे प्रगटियो।।
करुणानिध शाति सी किरिया, विरला चौथे आरे विरिया[1]।
इण आरे मुनि अवतरिया।।
बारमी ढाले सत सलूनो, जश धार शाति ऋष जूनो।
मानू वीतराग नो नमूनो।।

(शा० वि० ढा० १२ गा० २८ से ३३)

स्वमती अथवा अन्यमती नै, शांति मुनीसर सार।
सगला नै सुखदाई अधिको, धर्म-मूर्त गुण धार।
वडभागी त्यागी वैरागी, सौभागी सुखकार।।
ग्यान गुणे अनुरागी गिरवो, सखर शांति अणगार।।
समता खमता दमता जमता, नमता वचन निहाल।
तमता भ्रमता वमता तन मन, मुनि शाति गुणमाल।।

---

१. स्वीकार की।

सुख सपति दायक गुण लायक, दायक अभय दयाल।
वोधि पमायक धर्म वधायक, शांति ऋषि सुविशाल॥
चित्त को चटको मटको छाडी, दुरमत खटको पेल।
निरूप द्रव्य वटको गुण नो गटको, समय सुलटको झेल॥

(शा० वि० ढा० १३ गा० ४१ से ४४)

परम मित्र मुझ शाति मनोहर, सुविनीतां सिरताज।
याद आवै निश दिन अधिकेरो, जाण रह्या जिनराज॥
शांति जिसी प्रकृति ना साधु, पचम आरा माय।
वहुलपणै ह्वैणा अति दुर्लभ, सम दम गुणे सुहाय॥

(शा० वि० ढा० १३ गा० ४७, ४८)

८५।२—३६ मुनिश्री दीपोजी (गंगापुर)
(संयम पर्याय स० १८७७-१८६३)
८६।२—३७ मुनिश्री जीवोजी (गंगापुर)
(संयम पर्याय स० १८७७-१६२६)

दोहा

दीप जीव दो बंधु की, दीक्षा हुई विचित्र।
घटना अचरजकारिणी, सुनिए सज्जन मित्र ।।१।।

लय—लूटाकर लंका

करते अप्रतिबध विहार, निर्मल गंगाजल की धार।
भारी गुरुवर शिष्यो सह चल आते, गगापुर वर में,
चल आते गगापुर वर मे।
घर-घर मे घोष सुनाते है, नर-नर मे जोश जगाते है ।।१।।
दौड़-दौड भावुक जन आते, दर्शन वन्दन कर हरषाते।
व्याख्यानामृत पी पी खुशी मनाते। गगा···।।२।।
हीरोजी चावत के नदन, दीप जीव सुनते प्रभु प्रवचन।
विरति जीव चत्रू भाभी सह लाते ।।३।।
लघु वान्धव ने किया निवेदन, प्रभुवर ! मै लूगा संयम धन।
'मा पडिवध करेह' पूज्य फरमाते ।।४।।
गुरु वाणी को हृदयगम कर, बोले भाभी को घर आकर।
चरण सग ले करें सफल दिन राते ।।५।।
न करो ढ़ील जरा देवरजी ! मेरा मन भी है दृढ़तर जी।
अग्रज की अनुमति से सार्थक वाते ।।६।।
ले कुछ दिन आतमा को तोल, फिर ले मुनि के नियम अडोल।
सच्चा प्रेम यही, कच्चे गृह नाते ।।७।।

दोनों ने मिल लोच किया है, धोवन वह दिन विरस पिया है।
सतत साधना पथ पर पलक विछाते ॥८॥
गुरु भाई को कहता अवरज, दो आज्ञा लूं संयम सजधज।
भ्रातृ-मोह से उनके नयन भराते ॥९॥
कठिन कठिनतम साधु नियम है, दुःसह परिषह अति दुर्गम हैं।
वालक वय है अभी, क्यों न ठहराते ॥१०॥
भारी-ऋषिवर-जीत विरागी, बने बाल वय में गृह त्यागी।
मुझको क्यों फिर इतना भय दिखलाते ॥११॥
बातचीत में खींचातान, देख उपासक आगेवान।
शांति भाव से दोनों को समझाते ॥१२॥
कागद लिख कर दी साह्लाद, अनुमति एक अयन के बाद।
सबके सम्मुख पढ़कर उसे सुनाते ॥१३॥
संतों ने वह पत्र ले लिया, प्रभु चरणों मे नजर कर दिया।
कर उपकार वहां से सुगुरु सिधाते ॥१४॥
पहुंचाने को आये जीव, लगी वहां संयम की नींव।
कर विवाह के त्याग गेह पर आते ॥१५॥
देवर भौजाई सोमग, खूब बढ़ाते अंतर रंग।
आध्यात्मिक भावों को शिखर चढ़ाते ॥१६॥

लय—भीखणजी स्वामी...

जीवोजी स्वामी, दीक्षा पाये है तेरापथ में।
लघु सोदर दीपपि के, लाये जीवन में आब हो। जीवो...
ध्रुवपद॥

चौमासा जय-भ्रात ने, कर पुर में सतत्तर साल हो।
गंगापुर पावन किया, छाई है मंगलमाल हो ॥जी०...१७॥
धर्म ध्यान की लौ लगी, नव ज्योति जगी दिन-रात हो।
मुनि श्रमणी संयोग से, आ जाती स्वर्ण प्रभात हो ॥१८॥
करके दीप व जीव ने, ऋषि स्वरूप-संपर्क हो।
धर्म-लाभ अच्छा लिया, तात्त्विक रस पिया सतर्क हो ॥१९॥
अधिक वहां उपकार कर, मुनिवर ने किया विहार हो।
पहुंचाने नर-नारियां, आये कर्त्तव्य विचार हो ॥२०॥

कडा अंगरखी खोल के, हो गया जीव भी सग हो।
वय थी तेरह वर्ष की, चढ़ गया मजीठी रग हो ॥२१॥
सांजलि मंगल पाठ सुन, घर आये वापिस लोक हो।
जीव एक पीछे रहा, झुक झुक देता है धोक हो ॥२२॥
सविनय अनुनय कर रहा, है भाव अभी उत्कृष्ट हो।
जगल में मंगल करो, दे करके संयम इष्ट हो ॥२३॥

रामायण-छन्द

बोले सत स्वरूप शहर मे वापस जाकर कुछ दिन वाद।
तेरे भाई को पृच्छा कर दीक्षा दे ज्यो हो न विवाद।
कहा जीव ने भाव इस समय मेरे ऊर्ध्वगत मुनिवर।
खबर न पल में क्या हो जाये अत. अभी दे चरण-प्रवर ॥२४॥

दोहा

सोच रहे अब क्या करे, मन में 'शशी-सरूप'।
एक बात स्मृति गत हुई, इतने मे सद्रूप ॥२५॥

लय—भीखणजी स्वामी...

एक वर्ष पहले लिखा, इक दीप ने पत्र स्व हाथ हो।
लो दीक्षा छह मास के, पीछे मेरा लघु भ्रात हो ॥२६॥
भारी गुरु के पास मे, कागद की सही सवूत हो।
लिखित आज्ञा हो गई, है शिशु भी यह मजबूत हो ॥२७॥
दीक्षित तत्क्षण कर लिया, मुनि श्री ने नि.सकोच हो।
गृहि के कपड़ो सहित ही, कर दिया शीश का लोच हो।
जीवोजी स्वामी, दीक्षा पाये है गृहि के वेष मे ॥२८॥
साल सतंतर विक्रमी, छठ कृष्ण महीना पोप हो।
स्थान 'कागणीमाल' का, कूपान्तिक साधिक कोश हो ॥२९॥
दीक्षित करते ही उन्हें, पहनाया मुनि का वेष हो।
एकव्रती को भेज के, घर पहुचाया सदेश हो ॥३०॥
दीप गया वाणिज्य हित, थी उनकी स्त्री गृह मध्य हो।
जीव सयमी बन गया, कह आया वह मुनि सद्य हो ॥३१॥

गीतक-छन्द

काकडोली किये दर्शन पूज्य भारीमाल के।
भेंट चेला कर दिया है चरण में गणपाल के।
हकीकत सारी सुनाई श्रमण ने विस्तार युत।
सुगुरु आदिक सत सतियां खुशी पाये है वहुत[१] ॥३२॥
दीप ग्रामान्तर गमन कर पुनः घर पर आ गया।
खवर सुनकर क्रोध का तूफान घट पर छा गया।
गया है आमेट निन्दा की अधिक जन-जन निकट।
विमुख हो वौछार की है कटुक वचनों की प्रकट ॥३३॥

लय—भीखणजी स्वामी···

वहु जन लावा आदि के, हो गये वहुत नाराज हो।
वोले अवगुण सघ के, रखकर खूटी पर लाज हो ॥३४॥
पीछे भारीमाल के, कर दर्श दीप ने तत्र हो।
आंख खुली जव नाथ ने, दिखलाया आज्ञापत्र हो ॥३५॥

लय—धर्म की जय हो···

देखो दीपक की, खुली हृदय की आंख। देखो···
आई सचमुच पांख। देखो···ध्रुव०।
संत सतयुगी आदिक ने जव, समझाया है शान्त हुआ तव।
वेग कोप का उतरा है सव, रहा सुगुरु मुख झांक ॥ देखो० ३६॥
शनैः शनैः उपदेश सुनाया, मानो उपशम सुधा पिलाया।
सुन वैराग्य दीप को आया, वना विरतिमय पाक ॥३७॥
वनिता भी थी साथ वहा पर, हर्ष-विभोर उभय ने होकर।
ब्रह्मचर्य व्रत धारा दुर्धर, धन्यवाद है लाख ॥३८॥
विनय भक्ति नस-नस मे भरते, मुख से गुरु गुणगान उचरते।
विनति लिए दीक्षा के करते, सफल करो मम साख ॥३९॥
कितना हो पाया परिवर्तन, सत्संगति का फल यह पावन।
होता उससे विकसित जीवन, मिलती वड़ी खुराक ॥४०॥
प्रभु पद में तन्मय हो पाये, वापस गंगापुर चल आये।
भाव उत्तरोत्तर वल लाये, कव लू संयम दाख ॥४१॥

लय—भीखणजी

दीक्षा देने के लिये ऋषिवर स्वरूप को तत्र हो।
भेजा भारीमाल ने, सह सतिया मगल-मंत्र हो ॥४२॥
आये गुरु आदेश से, गगापुर 'शशी-स्वरूप' हो।
सह पत्नी दी दीप को, सयम की ऋद्धि अनूप हो ॥४३॥
दीपोजी स्वामी, दीक्षा पाये है तेरापथ में।
गुरु-बांधव जीवर्षि के, लाये जीवन मे आब हो। दीपोजी…॥ध्रु०॥
तेरस शुक्ला ज्येष्ठ की, थी साल सततर वर्य हो।
दीक्षा सुनकर दीप की, हुआ सबको अति आश्चर्य हो ॥४४॥
लावादिक के लोग भी, गुरु-दर्शन कर साकार हो।
सम्मुख गण के हो गये, कर गलती को स्वीकार हो ॥४५॥
अष्टम दिन दीक्षा बड़ी, दे रखा दीप को ज्येष्ठ हो।
षड् मासान्तर जीव को, दी सूत्र न्यास से श्रेष्ठ हो[2] ॥४६॥

दोहा

साधक बन कर साधना, करते दोनो संत।
तरुण तपस्या का लिया, प्रमुख दीप ने पथ ॥४७॥

लय—म्हांरै घरे पधारोजी…

तप की कड़ी दवाई जी क २, दीपोजी स्वामी ने ली है बनी बनाई जी।
॥ध्रुव०॥
जड़ी बूटियां निष्फल जाती, इंजेक्शन भी खाली।
पर यह तप की जीवन-औषध, लाती निश्चित लाली ॥तप० ४८॥
शेषकाल मे सात दिवस तप, फिर सतरह सोल्लास।
एकान्तर तप सात महीने, छठ भक्त दो मास ॥४९॥
सोलह पावस का तप विवरण, सुनलो अब क्रमवार।
सबल शक्ति भर साहस धर कर, ली तप की तलवार ॥५०॥
आछ सलिल आगार किया कुछ, कुछ तप सलिलागार।
एक नवति संवत् में बेले-बेले तप-स्वीकार ॥५१॥
छठ-छठ तप चला निरतर, विविध अभिग्रह संग।
बीच-बीच में बड़े थोकड़े, करते थे सोमंग ॥५२॥

वेले में भी छोड़ दिया जल, धर कर अधिक विराग।
यदि पीये तो पूर्णाहुति-दिन, छहों विगय का त्याग॥५३॥
सतरह द्रव्य रखे हैं केवल, तीन विगय परिहार।
रुग्णावस्था मे भी छोड़ा, औपध का उपचार॥५४॥
एक प्रहर की मौन हमेशा, समता भाव अमाप।
शीत सहा बारह वर्षों तक, आठ साल तक ताप'॥५५॥
भिलवाड़ा अन्तिम पावस कर, पुर में मुनिवर आये।
तनु-आमय होने से अनशन, सागारी कर पाये॥५६॥
फाल्गुन कृष्ण अमा को वोले, प्रवल मनोवल धारी।
आजीवन करवाओ संतो! संथारा सुखकारी॥५७॥
जीव, गुलाव श्रमण तव कहते, कठिन कार्य यह भारी।
धान धूलवत् लगता मुझको, वोले पौरुप धारी॥५८॥
दुष्कर कायर नर को है पर, नही वीर हित गाऊं।
मृत्यु नीद मे आ जाए तो, अनशन विना सिधाऊं॥५९॥
चिता नही मास दो निकले, दृढ़तम मन का चक्का।
सुनकर शव्द सतोले अनशन करवाया है पक्का॥६०॥
दिया सुखद सहयोग जीव ने, सच्ची प्रीति निभाई।
भगिनी 'मया' सती कर दर्शन, तन मन में फूलाई॥६१॥
धन्य तपस्वी वीर वृत्ति को, धन्य तपस्वी ध्यान।
धन्य तपस्वी विरति भाव को, गाते जन गुणगान॥६२॥
नवति तीन शत अष्टादश की, फाल्गुन शुक्ला तीज।
पुर से सुरपुर में पहुंचे है, मिली सुकृत की रीझ'॥६३॥

दोहा

गाता अव जीवर्षि के, यशोगान रुचिकार।
सयम मे रम के किया, कैसे आत्मोद्धार॥६४॥

लय—भीखणजी···

लघु सोदर मुनि जीव भी, सयम रस में गलतान हो।
भद्र प्रकृति विनयी गुणी, थे मधुभाषी मतिमान हो॥६५॥
चतुर्मास पहला किया, भारी गुरुवर के सग हो।
सेवा मे ऋषिराय की, फिर जय पद में सोमंग हो॥६६॥

किया सिघाड़ा पूज्य ने, जब हो पाये मुनि योग्य हो।
पढे लिखे मुनिवृन्द में, पाया है स्थान मनोज्ञ हो ॥६७॥
बोलचाल की धारणा, की पढ़ आगम बत्तीस हो।
सूत्र याद कितने किये, फल श्रम का विसवावीस हो ॥६८॥
रंग चित्र लिपि शिल्प की, पटुता में मुनि पारीण हो।
लिखा पत्र चालीस में, भगवती सूत्र संगीन हो ॥६९॥
करते दोनों हाथ से, लेखन आदिक सब काम हो।
श्रमण नाम सार्थक किया, कर-कर के श्रम हर याम हो ॥७०॥
कंठ मधुर व्याख्यान की, सीखी है कला सयत्न हो।
उदाहरण वा हेतु के, थे जानकार मुनि रत्न हो[५] ॥७१॥
साहित्यिक अभिवृद्धि मे, था योगदान अनुकूल हो।
रचनाएं संक्षेप मे, करते भरते रस मूल हो ॥७२॥
सूत्रों की जोड़े विविध, की निजमति के अनुसार हो।
दश हजार अनुमानतः, पद सख्या का विस्तार हो[६] ॥७३॥
विचर-विचर अच्छा किया, पुर पुर मे धर्म प्रसार हो[७]।
समझाये नर सैकड़ो, दी नौ दीक्षा दिलदार हो[८] ॥७४॥

दोहा

रहे अकेले एकदा, वासर सत्ताईस।
दोष न कारण में तनिक, बोले शासन-ईश[९] ॥७५॥

लय—भीखणजी···

आयम्बिलि वर्धमान का, तप चालू किया विशिष्ट हो।
ऊचे चौवालीस की, श्रेणी तक चढ़े बलिष्ठ हो[१०] ॥७६॥
जय ने अन्तिम समय में, सहाय्य दिया सुप्रशस्त हो।
सेवा मे भेजे व्रती, है सघ व्यवस्था स्वस्थ हो ॥७७॥
शतोन्नीस उन्नीस में, पहुंचे सकुशल परलोक हो।
अमर नाम वे कर गये, भर गये नया आलोक हो ॥७८॥

दोहा

दो बांधव की जीवनी, लिखी साथ मे एक।
सामग्री एकत्र की, विवरण-स्थल सब देख[११] ॥७९॥

१. द्वितीयाचार्य श्री भारीमालजी ने सं० १८७६ का पुर मे चातुर्मास किया। तत्पश्चात् सभवत: मृगसर महीने मे वे गंगापुर (मेवाड़) पधारे। उस समय मुनिश्री हेमराजजी ६ ठाणों से देवगढ में पावस-प्रवास कर एवं वहा तीन भाइयों (रतनजी, शिवजी, कर्मचन्दजी) को दीक्षा देकर १२ साधुओं मे गंगापुर पहुंचे और गुरुदेव के दर्शन कर उनके चरणो मे नव-दीक्षित मुनि-त्रिवेणी को भेंट किया[1]। आचार्य प्रवर ने प्रसन्न होकर मुनिश्री द्वारा किए गए उपकार की भूरि-भूरि प्रशसा की। अनेक साधुओ के सम्मिलित होने से गगापुर मे नई चहल-पहल लग गयी। श्रावक-श्राविकाओ मे नया उल्लास उमड़ पड़ा।

वहा हीरजी (हरजी) चावत (ओसवाल) के दो पुत्र दीपोजी और जीवोजी थे। उनकी माता का नाम खुशालाजी (वावेलो की वेटी) था। दीपोजी की पत्नी का नाम चत्रूजी था[2]।

उनके एक वहिन मयाजी थी, जिनका विवाह देवगढ के सहलोत गोत्र मे हुआ था। दीपोजी और जीवोजी के पूर्वज पहले आमेट मे रहते थे फिर गगापुर मे निवास करने लगे[3]।

मयाजी ने दोनो भाईयो से पहले स० १८७२ मृगसर कृष्णा १ को आमेट मे साध्वीश्री जोताजी (४८) द्वारा दीक्षा ग्रहण की थी, ऐसा मया सती गुण वर्णन ढा० १ गा० ४, ५ मे उल्लेख है।

आचार्यश्री भारीमालजी का वहा कई दिनो तक ठहरना हुआ। आसपास के

---

१. विचरत विचरत पूज पधारिया जी, गगापुर शहर मझार रे।
हलुकर्मी तो सुण हरप्या घणा जी, तन मन नैण उलसिया मार रे॥
(मुनि जीवोजी कृत दीप गुण वर्णन ढा० १ गा०)

वारै ऋषि सू हेम ऋषि, गणपति दर्शण कीध।
स्वाम प्रशंसा करै तदा, वर उपगार प्रसीध॥
(स्वरूप नवरसा ढा० ६ दो० ३)

तीनू नै दीक्षा देई विशालो रे, हेम आया गंगापुर चालो रे।
तिहां भेट्या पूज भारीमालो रे॥
(कर्मचन्द गुण० व० ढा० १ गा० ३२)

२. हीराजी चावत रो वेटो दीपजी, चत्रू भौजाई ने जीवराज रे।
ए तीनूं ही वखाण सुणी वेरागिया, जी, लघु वंधव सुधारै काज रे॥
(जी० कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० ३)

३. पीहर सजम पाइयो रे, सैहर आमेट मझार।
सुरगढ पायो सासरो रे, जात सेलोत सुधार॥
(जी० कृ० मयासती गु० व० ढा० १ गा० २)

अनेक गावों के भाई-वहन गुरु दर्शनार्थ एव प्रवचन सुनने के लिए आते। स्थानीय लोगों के लिए तो मानो घर बैठे साक्षात् गगा ही आ गयी थी। वे तो सेवा-भक्ति तथा व्याख्यान-श्रवण आदि का पूरा-पूरा लाभ उठाते। दोपोजी, जीवोजी तथा दीपोजी की स्त्री ने बोधप्रद उपदेश सुना तो उनके दिल मे विरति के अकुर प्रस्फुटित हो गए। कुछ ही दिनों बाद छोटे भाई जीवोजी ने गुरुदेव के सम्मुख अपनी सयम लेने की भावना प्रस्तुत की तो आचार्य प्रवर ने फरमाया—'जो समय जाता है वह वापस नही आता अत शुभ कार्य को शीघ्रतर कर लेना चाहिए।' जीवोजी गुरु-वचनो को हृदयगम कर अपने घर आए और वुलद शब्दो मे वोले—'भाभीजी! हम दोनो को साधुत्व-ग्रहण कर अपने जीवन का कल्याण करना है।' भाभी ने कहा—'हा! देवरजी! मेरी भी यही इच्छा है इसलिए हमे इस कार्य मे विलव नही करना चाहिए। आप अपने वडे भाई से अनुमति प्राप्त कर लीजिए, मैं अन्त करण से आपके साथ ही दीक्षित होने की कामना करती हू। इससे पहले हमे कुछ समय अपनी शक्ति को तोल लेना चाहिए, जिससे हम साधु जीवन मे आने वाले कष्टो को सहर्ष सहन कर सके।' इस प्रकार देवर-भौजाई ने निर्णय कर साधना हेतु बहुत दिनो तक अचित्त प्रासुक धोवन पानी पीने का अभ्यास किया और परस्पर केश लुचन कर अपनी क्षमता को कसौटी से कसा[1]।

अपनी ओर से सभी तरह की तैयारी कर लेने के वाद एक दिन जीवोजी ने अपने वडे भाई दीपोजी के सामने अपनी विचारधारा रखी और दीक्षा की स्वीकृति प्रदान करने के लिए कहा। यह सुनते ही मोहवश दीपोजी की आखो मे आसू वहने लगे और गद्गद् स्वर मे वोले—'मेरे मना करने का तो परित्याग है पर साधु-जीवन वड़ा कठोर है और तुम्हारी अभी कोमल बालक वय है अतः तुम इस गुरुतर भार को कैसे निभा सकोगे?' जीवोजी ने दृढतापूर्वक कहा—'जिसके मन मे वास्तविक वैराग्य होता है वह वालक भी साधना के दुर्गम पथ पर चल सकता है। पूर्वकाल मे भी अनेक व्यक्तियो ने वालक वय मे दीक्षा ग्रहण की और वर्त्तमान मे भी आचार्य भारीमालजी, मुनि रायचदजी तथा जीतमलजी का उदाहरण आपके सम्मुख है जो शैशव वय मे ही दीक्षित हुए थे।'

इस प्रकार आपस मे वार्त्तालाप हुआ और कुछ-कुछ खिचाव होने लगा। तव समझदार श्रावको ने दोनो को समझाया ओर दीपोजी द्वारा एक पत्र लिखवाया, जिसमे लिखा था कि 'आज से छह महीनो बाद मेरा भाई दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।' श्रावक फतेहचन्दजी ने उस पत्र को पढकर सुना दिया। साधुओ ने दूर दृष्टि

---

१. पछै मांहोमां लोच कियो दोनूं जणाजी, धोवण पीधो वहु दिन छाण रे।
ए देवर भोजाई मनसोवो कियोजी, भाखी पेली ढाल वखाण रे॥
(जी० कृ० ढा० १ गा० ८)

से चिंतन कर उस पत्र को लेकर भारीमालजी स्वामी की पुस्तिका में सुरक्षित रख दिया[१]। भारीमालजी स्वामी ने अच्छा उपकार कर यथासमय वहां से विहार कर दिया।

(मुनि जीवोजी कृत दीप मुनि गु० व० ढा० १, २ के आधार से)

जीवोजी आचार्यश्री को पहुंचाने के लिए गांव के बाहर तक गए। वहां उन्होंने गुरुदेव के मुखारविन्द से विवाह करने का प्रत्याख्यान कर लिया। गुरु-चरणों में वंदना कर व मंगलपाठ सुनकर वापस अपने घर आ गए। वे बड़े हलुकर्मी थे जिससे त्याग-विराग के प्रति उनका दिन-दिन आकर्षण बढ़ता रहा। उन्होंने अपनी भोजाई के साथ तत्त्वज्ञान करना चालू कर दिया। देवर-भोजाई का माता-पुत्र की तरह पारस्परिक हेत-मिलाप इतना था कि एक घड़ी के लिए भी अलग-अलग रहना दोनों के लिए कठिन था। जब दीक्षित होने के लिए उत्सुक हुए तब उनका वह संबंध वैराग्य रस में ओत-प्रोत हो गया[२]।

सं० १८७७ में मुनिश्री स्वरूपचंदजी ने ५ साधुओं से पुर में वर्षावास किया। वहां बहुत उपकार कर चातुर्मास के पश्चात् मुनिश्री गंगापुर पधारे[३]। कई दिनों

---

१. थइ आमी सामी जकजोलो रे, श्रावकां मिल कीधो कोलो रे।
पट्मास पछै आज्ञा नो बोलो रे॥
इम कागद में लिख वाची रे, फतैचन्द श्रावक बुध साची रे।
साधां लीयो कागद नें जाची रे॥
(जी० कृ० ढा० २ गा० ७, ८)

२. मुनिवर रे! पहुंचावण जातां थकां रे, बोलै एहवी वाय हो लाल।
करायदो मुज सामजी रे, परणवा रा पचखाण हो लाल।
सत संगत फल एहवा रे॥ मु०॥
मु० सील आदरियो चूंप सूं रे, पहुचावी सिर नाम।
त्याग वैराग वधाय नैं रे, आया घर अभिराम॥
(जी० कृ० ढा० ३ गा० १, २)

सीखैं चरचा वारता रे, भाई भोजाई तीन।
हलुकर्मी छै जीवडा रे, हेत मिलाप लहलीन॥
चतूं भोजाई तणां रे, देवर सूं दिन जाय।
एक घड़ी अलगा रह्या रे, दोय जणा दु:ख थाय॥
कवुयक रंग में हसणो रे, कवुयक करै किलोल।
कवुयक जीमैं एकठा रे, वात करै दिल खोल॥
(जी० कृ० ढा० ३ गा० ४, ५)

३. काल कितोयक बीता पछै रे, सरूपचन्द अणगार।
गंगापुर में आविया रे, पंच साध परिवार॥
(जी० कृ० दीप० गु० व० ढा० ३ गा० ६)

तक वहा ठहरे जिससे श्रावक-श्राविकाओं मे अच्छी धर्म-जागरणा हुई। जीवोजी ने तो वडी तन्मयता से मुनिश्री के सान्निध्य का लाभ लिया। यथासमय मुनिश्री ने विहार किया तव भाई-वहने उन्हे पहुचाने आए। जीवोजी भी कड़ा और अगरखी (अचकन) को खोलकर साथ हो गए। सारी जनता गाव के वाहर तक आयी और मगल पाठ सुनकर वापस चली गयी। केवल १३ वर्षीय बालक जीवोजी ही मुनिश्री की सेवा मे रहे। उन्होने वहा जगल मे ही मुनिश्री के चरणो मे झुक-कर नम्र निवेदन किया—'मुनिश्री! मेरी अभी प्रवल भावना है अत. आप मुझे अभी और इसी जगह साधुव्रत अगीकार करवा दे।' मुनिश्री ने कहा —'तुम्हारी इतनी उत्कट इच्छा है तो हम वापस गगापुर चले और तुम्हारे भाई-भौजाई को पूछकर तुम्हे दीक्षा दे दे।' जीवोजी बोले—'मुनिवर्य! इस समय मेरे भावो की श्रेणी उत्कृष्टतम है, पीछे न जाने कैसी स्थिति रहे इसलिए आप मेरी प्रार्थना को अभी क्रियान्वित करे।' इस प्रकार जीवोजी का अत्याग्रह देखकर मुनिश्री ने चिन्तन किया—'इसके (जीवोजी के) वडे भाई दीपोजी ने आज से लगभग १ साल पहले एक कागद लिख दिया था, जिसमे लिखा था कि छह महीनो के वाद मेरा छोटा भाई जीवोजी दीक्षा ले तो मेरी आज्ञा है।' और वह कागद आचार्यश्री भारीमालजी के पास सुरक्षित है इसलिए दीक्षा देने मे सिद्धान्तत कोई आपत्ति नही है।' इसके वाद फिर अच्छी तरह पूछताछ कर मुनिश्री ने जगल मे ही जीवोजी को साधुव्रत ग्रहण करवा दिया। तत्पश्चात् केशलुचन की रश्म अदा की और साधु वेष पहनाया। गृहस्थ के कपडे एक साधु को देकर गगापुर भेजा। वह दीपोजी के घर गया। उस समय दीपोजी घर पर नही थे उनकी पत्नी (जीवोजी की भाभी) थी, वह उन्हे 'जीवोजी तो साधु बन गया है' ऐसा कहकर तुरंत वापस लौट आया।

इस प्रकार सं० १८७७ पोष कृष्णा ६ को गगापुर से डेढ कोस दूर कागणी के माल (ताल) मे कुए के समीप मुनि स्वरूपचन्दजी ने जीवोजी को १३ वर्ष की अविवाहित वय मे दीक्षा प्रदान की—

पुर सू विहार करी मुनि रे, गगापुर मे आय।
जीव ऋषि नै सोभतो रे, चरण दियो सुखदाय॥

(स्वरूप नवरसो ढा० ६ गा० १)

लघु वधव तिण अवसरे रे, लीधो सजम भार।
वधव नै न जणाइयो रे, कर दियो खेवो पार॥

(जी० कृ० दीप गु० व० ढा० ३ गा० ७)

उनके सयम-भार की महत्ता बतलाते हुए किसी ने एक पद्य मे लिखा है—
'जीवा तू तो भोलो रे, कागणी का माल (ताल) मे उठायो घी को गोलो रे।'
मुनिश्री स्वरूपचन्दजी वहा से विहार कर काकडोली पधारे। आचार्यश्री

भारीमालजी के दर्शन कर नव दीक्षित मुनि को भेंट किया और सब हकीकत कही। आचार्य प्रवर तथा सभी साधु बहुत प्रसन्न हुए।

(दीपोजी जीवोजी की ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० ४२, ४३ की वार्त्तिका के आधार से)

२. दीपोजी व्यापार के निमित्त आसपास के गावो मे गए हुए थे। जब वे वापस घर आए तब उन्हे पता चला कि मेरे भाई जीवोजी को दीक्षित कर लिया गया है। फिर तो वे इतने क्रोधावेश मे आ गए कि अपने को सभाल नही सके और मुख से अटसट बोलने लगे। कुछ ही दिन बाद आमेट मे जाकर लोगों के समक्ष भारी बकवास किया और भिक्षु-शासन के बहुत अवर्णवाद बोले। कुछ व्यक्ति विरोधी थे ही और कुछ इस बात को सुनकर विपक्ष मे हो गए। उन्होंने चारो ओर मिथ्या प्रचार करना प्रारभ कर दिया। इससे आमेट तथा लावा आदि गांवो के काफी लोग साधुओ की निन्दा करने लगे और धर्मसंघ से विमुख हो गए।

थोडे दिनो के बाद स्वय दीपोजी कांकडोली मे भारीमालजी के समीप पहुचे और उत्तेजित होकर अपना सारा वफारा निकालने लगे। आचार्य प्रवर एवं साधुओ ने खामोशी के साथ उनकी सब बाते सुनी और उन्हे उनके हाथ का लिखा हुआ वह आज्ञा का पत्र दिखलाया। उसे देखते ही वे ठंडे पड गए। बोलने के लिए कोई शब्द नही रहा। फिर मुनि खेतसीजी तथा रायचन्दजी ने उन्हे धीरे-धीरे मधुर शब्दो मे समझाया और वैराग्यवर्धक अनेक हेतु-दृष्टान्तो द्वारा ससार की नश्वरता का बोध कराया। समय की बात थी कि मुनिवृंद का वह उपदेश उन पर जादू की तरह असर कर गया। दीपोजी की पत्नी चत्रूजी भी साथ मे थी। दोनो इतने प्रभावित हुए कि उनके मन मे वैराग्य की धारा प्रवाहित हो गयी और दोनों ने तत्काल खडे होकर गुरु-साक्षी से आजीवन अब्रह्मचर्य का त्याग कर दिया। फिर दोनो ने गुरु-चरणो मे सादर सविनय भक्ति पूर्वक वदन कर कहा—'प्रभुवर! हमारी भी दीक्षा लेने की उत्कट भावना है अत आप कृपा कर शीघ्रातिशीघ्र हमे सयम देकर हमारी नैया को भव-समुद्र के पार पहुचाएं।' ऐसा निवेदन कर वे वापस गंगापुर आ गए।

भारीमालजी स्वामी ने अनुग्रह कर मुनिश्री स्वरूपचन्दजी को ही गगापुर भेजा। साथ मे साध्वियो को वहा जाने का आदेश दिया। मुनिश्री ने गुरु-आदेशानुसार वहा जाकर सं० १८७७ ज्येष्ठ शुक्ला १३ को दीपोजी और उनकी पत्नी चत्रूजी को सयम प्रदान किया। फिर मुनिश्री ने गुरु-दर्शन कर उन्हे समर्पित किया[1]।

---

१. तांम स्वरूप नैं म्हेलियो ले, चारित्र देवा सार।
वलि म्हेली समणी भणी रे, भारीमाल तिणवार॥

लावादिक के लोग जो विरुद्ध हो गए थे उन्होने जब वह सुना कि स्वय दीपोजी ने भी पत्नी सहित दीक्षा ले ली है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उनकी जबान पर ताला-सा लग गया । आखिर गुरु-दर्शन कर अपनी भूल को स्वीकार करते हुए वे सघ और सघपति के प्रति आस्थावान व वफादार बन गए ।

मुनि जीवोजी ने पोष महीना मे और मुनि सतीदासजी ने माघ महीना मे दीक्षा ली । सतीदासजी की 'बडी दीक्षा' (छेदोपस्थाप्य चारित्र) आठवे दिन होने से वे जीवोजी से बडे हो गए । दीपोजी बडे भाई थे अत सूत्रन्यायानुसार उन्हे बड़ा रखने के लिए जीवोजी को बडी दीक्षा छह महीनो से दी गयी जिससे दीपोजी जीवोजी से बडे हो गए ।

(दीपोजी जीवोजी की ख्यात तथा शासन विलास ढा० ३ गा० ४२, ४३ की वार्त्तिका)

मुनि दीपोजी और जीवोजी की बडी बहन साध्वीश्री मयाजी (८२) ने सं० १८७२ मे दीक्षा ग्रहण की थी । इस प्रकार एक घर के चार व्यक्ति सयमी बन गए[1] ।

३. मुनि दीपोजी और जीवोजी साधनारत होकर साधु जीवन का निखार करने लगे । मुनि दीपोजी प्रौढवय मे दीक्षित हुए थे अत वे अधिक अध्ययन नही कर सके परन्तु उन्होने अपने पुरुषार्थ को त्याग तपस्या मे लगाकर अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया । उनके तप आदि का विवरण इस प्रकार है—शेषकाल मे उपवास बेले आदि बहुत किए तथा—

$\frac{७}{१}$ $\frac{१७}{१}$ (उदक के आगार से), सात महीने एकान्तर तथा २ महीने बेले-बेले तप किया ।

सौलह चातुर्मासो मे[2]—

ताम सरूप आवी करी रे, बिहु नै दिख्या दीध ।
दर्शन कीधा पूजा ना रे, जग माहे जश लीध ।।

(सरूप नवरसो ढा० ६ गा० ४, ५)

भाई भोजाई साभली रे, आणी मोह अथाय हो ।
अनुक्रमे त्या पिण लियो रे, साधपणो सुखदाय हो ।।

(जो० कृ० दी गु० व० ढा० ३ गा० ८)

१. दीपचन्द ऋषि दीपतो, भाई भगिनी नार ।
या सगला सजम लियो, एकण घर का च्यार ।।

(जयाचार्य विरचित दीप गु० व० ढा० १ दो० १)

२. सततरे संजम लियो, त्राणुए सथार ।
चौमासा सौलह मझे, तप कियो दीप अणगार ।।

(जय० कृ० दी० गु० व० ढा० १ दो० २)

(१) १८७८ के प्रथम चातुर्मास मे मासखमण।
(२) १८७९ के दूसरे ,, ,, ३६ दिन।
(३) स० १८८० के तीसरे चातुर्मास में १२५ दिन।
(४) स० १८८१ के चौथे ,, ,, मासखमण।
(५) स० १८८२ के पांचवे ,, ,, १५५ दिन।
(३) स० १८८३ के छठे ,, ,, मासखमण।
(७) स० १८८४ के सातवें ,, ,, ८ दिन।
(८) स० १८८५ के आठवे ,, ,, ८ दिन।
(९) स० १८८६ के नौवें पीपाड चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी (३६) के साथ छहमासी तप किया[1]।
(१०) स० १८८७ के दसवे नाथद्वारा चातुर्मास मे मुनि हेमराजजी के साथ ३१ दिन का तप किया[2]।
(११) स० १८८८ के ग्यारहवें गोगुदा चातुर्मास मे मुनिश्री हेमराजी के साथ ४५ दिन का तप किया[3]।
(१२) स० १८८९ के बारहवे चातुर्मास में ३६ दिन का तप किया।
(१३) स० १८९० के तेरहवें चातुर्मास मे ९ दिन तथा डेढ महीना एकांतर तप किया।
(१४) स० १८९१ के चौदहवें चातुर्मास मे १० दिन का तप किया।

इन १४ चातुर्मासो मे किसी चातुर्मास मे पानी के आगार से तथा किसी चातुर्मास मे आछ के आगार से तप किया।

फिर इसी वर्ष फाल्गुन शुक्ला १५ से आजीवन वेले-वेले तप करना स्वीकार किया।

(१५) स० १८९२ के पन्द्रहवें चातुर्मास मे पानी के आगार से मासखमण

---

१. शहर पीपाड मे वर्ष छियासिये, मास उदयचंद धारी।
दिवस एक सौ छियांसी दीपजी, कीधा छै आछ आगारी।।
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ४)

२. सित्यासीये वरस श्रीजीदुवारे, दीप पाणी रे आगारी।
दिवस इगतीस किया चित्त उज्जल, मास उदै अधिकारी।।
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ५)

३. वरस अठासीये सैंहर गोघुदे, उत्तम उदै दीप न्हाली।
हेम प्रसाद कियो तप सखरो, चोतीस तीस पैंताली।।
(हेम नवरसो ढा० ६ गा० ६)

किया[1]। बेले-बेले तप तो चालू था ही। पारणे के दिन विविध अभिग्रह ग्रहण करते। बेले की तपस्या मे यदि पानी पीए तो पारणे मे छहो विगय खाने का परित्याग किया।

फिर उसी वर्ष सतरह द्रव्य एवं तीन विगय के अतिरिक्त खाने का तथा रुग्णावस्था मे औषध लेने का प्रत्याख्यान कर दिया। प्रतिदिन एक प्रहर मौन रखने का संकल्प किया। इस प्रकार वे प्रतिदिन वैराग्य वृद्धि करते रहे[2]।

(१६) सं० १८९३ के सौलहवे भीलवाडा चातुर्मास मे बेले-बेले तप किया। स० १८९१ से ९३ तक लगभग दो वर्ष लगातार बेले-बेले तप हो गया। उक्त तप के कुल आंकडे इस प्रकार है—

उपवास बेले आदि बहुत,

७	८	९	१०	१७	३०	३१
१	२	१	१	१	४	१

३६	४५	१२५	१५५	छहमासी	एकातर	बेले-बेले
१	१	१	१	१	८।। महीने	२ वर्ष २ महीने लगभग

मुनि जीवोजी कृत दीप गुण वर्णन ढा० ४ गा० ७ से ९ तथा ढा० ५ गा० १ मे मुनि दीपोजी की तपस्या का विवरण उपर्युक्त उल्लेख से कदाचित् भिन्न है।

एकातर	बेले	मासखमण	३१	३२
८।। महीने	२७५ अधिक चौविहार	५	१	१

३६	४५	चौमासी	पांचमासी	छहमासी
१	१	१	१	१

अठाई आदि अनेक थोकडे किए।

कुल सौलह चातुर्मासो के तप के दिन ४ वर्ष और एक महीना लगभग होता है।

तपस्या के साथ मुनिश्री स्वाध्याय, ध्यान तथा साधुओ की वैय्यावृत्य भी भी करते थे[3]।

---

१. इस मासखमण मे केवल एक मन पानी पिया।
'मण जल नो महिनों कियो रे।'
(दी० गु० व० ढा० ४ गा० ११)

२. पछै बेला मे पाणी पचखियो, पाणी पीधा हो पारणै विगै त्याग।
द्रव्य सतरै उपरत त्यागिया, दिन-दिन हो चढतो छै वैराग।।
विगै तीन उपरत लेणी नही, कारण पडिया हो औषध रा पचखाण।
नित्य एक पौहर मून साझणी, चित्त धैर्यो हो मुनि समता आण।।
(ज० कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० १३, १४)

३. नित्य प्रति ज्ञान चितारता रे, सत व्यावच चित्त धार।
(दी० गु० व० ढा० ५ गा० १३)

मुनिश्री ने १२ वर्षों तक शीतकाल मे सूर्यास्त के वाद सिर्फ एक 'चोलपट्टा' ही ओढा। पछेवड़ी (चद्दर) नही ओढी।

आठ साल तक उष्णकाल मे तप्त शिला व रेत पर सोकर आतापना ली[1]।

(जयाचार्य कृत दीप गु० व० ढा० १ गा० ३ से १३ शासन विलास ढा०३ गा० ४२, ४३ की वार्त्तिका तथा ख्यात के आधार से)

मुनि दीपोजी ने उक्त सोलह चातुर्मासो मे तीन चातुर्मास सं० १८८६, ८७, ८८ के मुनिश्री हेमराजजी के साथ किए। उनके अतिरिक्त स० १८७८ मे १८९१ तक के ११ चातुर्मास आचार्यश्री रायचदजी तथा मुनिश्री स्वरूपचंदजी के साथ किए—

हेम पूज्य सरूप ऋप आगले, चउदै चौमासा हो मुनि किया श्रीकार।

(जय कृत दीप गु० व० ढा० १ गा० १०)

ख्यातानुसार मुनिश्री स्वरूपचदजी द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रणी वने उनमे एक दीपोजी का नाम है, इससे लगता है कि सं० १८९१ के चातुर्मास के पश्चात् आचार्य रायचन्दजी ने उन्हे अग्रगामी वना दिया।

स० १८९२ का चातुर्मास स्थान प्राप्त नही है। सं० १८९३ का चातुर्मास उन्होने भीलवाडा किया। साथ मे उनके छोटे भाई मुनि जीवोजी (८६) और दूसरे सत गुलावजी (५३) थे। ऐसा जयाचार्य कृत दीप गु० व० ढा० १ गा० १५, १७ से प्रमाणित है।

४. सं० १८९३ के भीलवाडा चातुर्मास के पश्चात् विहरण करते हुए मुनि दीपोजी (जीवोजी के साथ) पुर पधारे। वहां शारीरिक अस्वस्थता होने से उन्होने सागारी अनशन किया। फिर फाल्गुन कृष्णा अमावस्या के दिन पश्चिम प्रहर मे कहा—'सतो! अब मुझे आजीवन तिविहारी अनशन करवा दे।' मुनि जीवोजी और गुलावजी वोले—'तपस्वीजी! सथारे का काम वडा कठिन है, पूर्णतया चितन करके ही इसका निर्णय करना चाहिए।' मुनि दीपोजी वोले—'मुझे अव धान्य (भोजन) धूल के समान लगता है अर्थात् भोजन की किंचिद् मात्र रुचि नही रही है। आपने अनशन की दुष्करता वतलायी परन्तु वीर पुरुप के लिए कोई कठिनाई नही है। कदाचित् निद्रा मे मेरा आयुष्य पूर्ण हो जाए तो मै विना सथारे के ही चला जाऊ अत आप नि सकोच मुझे अनशन करवा दीजिए। मेरा मन इतना दृढ है कि दो महीने भी निकल जाए तो चिता की वात नही है।'

---

१. शेषेकाल सीयाले सी सह्यो, द्वादश वर्षा हो पछेवड़ी नो परिहार।
एक चोलपटा रा आधार सू, रवि आथमीये हो सीत सह्यो एक धार॥
'आठ वर्ष उन्हाले आतापना…'

(जय० कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० २, ३)

इस प्रकार मुनिश्री के सतोले शब्दों को सुनकर सभी हर्षित हुए और मुनि जीवोजी ने आजीवन तीनों आहारों (अशन, खादिम, स्वादिम) का परित्याग करवा दिया। मुनि जीवोजी व गुलाबजी ने अध्यात्म पद आदि सुनाकर उन्हें वहुत-वहुत सहयोग दिया। उनकी ससार-पक्षीया भगिनी साध्वीश्री मयाजी (८६) साध्वियो के साथ मुनि दीपोजी के अनशन पर पहुच गयी। मुनिश्री के भाव उत्तरोत्तर वढते-चढते रहे। चतुर्विध सघ मुनिश्री की वीरवृत्ति की मुक्त कठो से प्रशसा करने लगा और मुख-मुख पर धन्य-धन्य की ध्वनि गूजने लगी[1]।

मुनिश्री का सथारा कुछ दिन तक चलेगा, ऐसी सभावना थी लेकिन २२ प्रहर में ही (तीन दिन लगभग) सपन्न हो गया और स० १८९३ फाल्गुन शुक्ला ३ गुरुवार को पुर मे मुनिश्री समाधिपूर्वक प्रस्थान कर गए—

समत अठारै त्राणूए, फागण सुदि हो तीज ने गुरुवार।
दीप ऋष परलोक पधारिया, बावीस पोहर नो हो आयो सथार॥
च्यार तीर्थ उचरग पाया घणो, पुर क्षेत्र हो सुविनीत श्रीकार।
जिन मार्ग कलश चढावियो, धिन-धिन हो तपसी नो अवतार॥
(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० २३, २४)

जयाचार्य ने मुनिश्री के गुणानुवाद की एक गीतिका वनायी। उसमे उनके

---

१. सोलमो चोमासो भीलोड़े कियो, छठ-छठ हो तप करता तिवार।
दोय वर्ष आसरै छठ तप कियो, विचरत आया हो पुर सैहर मझार॥
कायक असाता ऊपनी, मुनि पचख्यो हो सागारी सथार।
तपसी रा परिणाम तीखा घणा, चित्त उज्जल हो भावे भावना सार॥
फागुण विद अमावस दिन पाछिले, मुनि बोल्यो हो ततक्षिण धर प्रेम।
पको संथारो मोनै पचखाय हो, तीन आहार ना हो कराओ मुझ नेम॥
लघु वधव गुलाब ऋष इम कहै, तपसीजी हो सथारो दुक्करकार।
तपसी कहै धान धूल समान छै, सूरा वीरा हो नही दुक्कर लिगार॥
निद्रा मे जो निकसै प्राण माहरा, विण सथारे हो तो हू कर जाऊ काल।
दोय मास ताइ चिता मत करो, इम साभल नै हो सहु हरख्या ततकाल॥
लघु भाई सथारो पचखावियो, चित्त उज्जल हो दियो धर्म नो साझ।
मया वाई आदि आरजीया आवी मिली, विस्तरियो हो जग जश अवाज॥
धिन-धिन तपसी रा परिणाम नै, मन कीधो हो मुनि मेर समान॥
धिन-धिन तपसी रा वैराग नै, धिन-धिन हो तपसी रो शुभ ध्यान।
धिन २ धिन २ मुख ऊचरै, चारू तीर्थ हो करै गुण तहतीक।
धिन धिन तपसी रो सूरापणो, धिन धिन हो तपसी साहसीक॥
(जय कृ० दी० गु० व० ढा० १ गा० १५ से २२)

तप प्रधान जीवन का सम्यग् प्रतिपादन किया है। अन्य गीतिकाओं में भी उनका स्मरण किया है—

दीप सरीखो दीप वड़ो तप धार कै, पट्मासी तपसा करी जी।
परभव पौंहता वारू कर संथार कै,ए शिष भला भारीमाल रा जी॥

(संत गुणमाला ढा० ४ गा० ३२)

५. मुनिश्री जीवोजी वाल्यावस्था मे दीक्षित होकर संयम मे रमण करते हुए गुरुदेव के निर्देशानुसार शिक्षार्जन करने लगे। उन्होंने स० १८७८ का प्रथम चातुर्मास आचार्यश्री भारीमालजी की सेवा में किया।[1]

सं० १८७९, ८० और ८१ मे अनुमानतः वे आचार्यश्री रायचन्दजी के साथ थे।

स० १८८१ पोष शुक्ला ३ को पाली मे आचार्यश्री रायचन्दजी ने मुनिश्री जीतमलजी को अग्रणी वनाया तव मुनिश्री जीवोजी को मुनि जीतमलजी के साथ दिया।[2]

उसके वाद के चातुर्मास उपलब्ध नही है। सं० १८९१ में आचार्यश्री ऋषिराय ने मुनि दीपोजी का सिंघाड़ा किया तव संभवतः मुनि जीवोजी को उनके साथ दिया। सं० १८९२ का चातुर्मास स्थान प्राप्त नहीं है। सं० १८९३ मे उनके साथ भीलवाड़ा चातुर्मास किया जो दीप गुण व० ढाल से प्रमाणित है।

सं० १८९३ में मुनि दीपोजी के दिवगत होने पर आचार्यश्री ने मुनि जीवोजी का सिंघाड़ा[3] वनाया ऐसा प्रतीत होता है। क्योकि सं० १८९५ मे उनके द्वारा दीक्षा देने का उल्लेख मिलता है।

मुनिश्री ने श्रमपूर्वक अध्ययन कर विद्वान् मुनियों की कोटि मे अपना स्थान प्राप्त कर लिया। कितने सूत्र व आख्यान आदि कंठस्थ किए। ३२ सूत्रों का वाचन कर तत्त्वचर्चा एवं वोलचालो की अच्छी धारणा की। सिलाई, रंगाई,

---

१. नवमो नान्हो जीवो साध, ते पिण चौमासे खरो जी।
डण केलवे गहर समाध, ओ नव साधां रो धरो जी॥

(भारीमाल चरित्र ढा० ७ गा० ११)

२. जीत अनें वर्द्धमानजी रे, कर्मचन्द नें इकतार।
जीवराज साध गुणी रे, यानें मेल्या देश मेवाड़॥

(ऋषिराय चरित्र ढा० ८ गा० १२)

स० १८८२ का चातुर्मास उन्होंने मुनि जीतमलजी के साथ उदयपुर किया।

(जय सुजश ढा० १० गा० ६, ७)

३. मुनिश्री स्वरूपचंदजी द्वारा दीक्षित ५ साधु अग्रणी वने, उनमें एक मुनि जीवोजी थे (मुनि स्वरूप—ख्यात)।

चित्रकला तथा लेखनकला मे भी वे बड़े निपुण थे। लेखन, सिलाई आदि कार्य दोनो हाथो से करते थे। चालीस पन्नो मे भगवती सूत्र (मूलपाठ) को लिपिबद्ध किया जो सूक्ष्म लिपि व कला का एक सुन्दर प्रतीक है और भी अनेक ग्रथों की प्रतिलिपि की। उनकी कठकला मधुर और व्याख्यानशैली सुन्दर थी। हेतु दृष्टांत व राग-रागिनियो की अच्छी जानकारी थी। अनेक गावो के लोग उनका व्याख्यान सुनने के लिए आते और प्रभावित होते। इत्यादिक विशेषताओ से उनकी सुयश-सुरभि जन-जन मे फैल गयी।

(ख्यात)

६. आचार्यो के अतिरिक्त साधु-वृन्द मे साहित्य रचना करने वाले मुनि वेणीरामजी (२६) व हेमराजजी (३६) सर्वप्रथम हुए। उसके बाद मुनि जीवोजी ने उस क्षेत्र मे प्रवेश कर साहित्य का निर्माण किया। यद्यपि उनकी रचना अधिक सक्षिप्त होती थी फिर भी शासन विलास औपदेशिक गीत तथा आगमो की जोड़ आदि लगभग १० हजार पद्यों की रचना कर साहित्य वृद्धि मे अपना हाथ बढाया। उनके द्वारा निर्मित साहित्य की सूची इस प्रकार है—

(क) आगमों की जोड़	रचनाकाल	स्थान
१. निरावलिका	सं० १९१३ आषाढ वदि १	टाटगढ
२. निशीथ	स० १९१३ आषाढ वदि ११	देवगढ़
३. वृहत्कल्प	सं० १९१३ आषाढ सुदि ९	,,
४. व्यवहार	स० १९१४ सावण वदि ६	,,
५. विपाक	सं० १९१४ फागुण शुक्ला ४	लावा
६. ज्ञाता		
७. उपासकदशा		
८. अंतगढ़		
९. अनुत्तरोपपातिक		
१०. प्रश्नव्याकरण	स० १९१६	तिलोडी
११. दशाश्रुतस्कध		

(ख) ऐतिहासिक

१ शासनविलास

२. भिक्षु दृष्टान्तों की जोड़ सं० १९२१ भादवा सुदि ११

३. आचार्यों के गुणानुवाद की गीतिकाए—

(१) धन धन भिक्षु स्वाम दीपाई दान दया...इत्यादिक। स० १९२० माघ, लाडनूं।

(२) गण लायक पद लायक गिरवो…इत्यादिक ।

४. साधु-साध्वी गुण वर्णन गीतिकाए—

(१) मुनिश्री भगजी (४७) १६०० वैशाख जसोल

(२) „ भागचदजी (४८) १८६७ आषाढ सुदी १३ लाडनूं

(३) „ मोजीरामजी (५४)

(४) „ हीरजी (७६) १८९३ आसोज वदि ३ भीलवाड़ा

(५) „ शिवजी (८२)

(६) „ दीपोजी (८५) ढाले ५

(७) „ अनोपचदजी (११४) ढाल १, स० १८६२ चैत्र वदि ८ गुरुवार कुष्टानपुर (कोठारिया)

(८) साध्वी मयाजी (८६) ढाल २

(९) साध्वी नवलाजी (२८५) स० १९१२ नाथद्वारा

चातुर्मासादिक

१. जयाचार्य के सं० १९१३ के उदयपुर चातुर्मास आदि का विवरण।

२. जयाचार्य के स० १९१३ के चातुर्मास के पश्चात् का वर्णन।

३. स० १९१३ के साधु-साध्वियों के चातुर्मासो का विवरण ढा० २।

४. तपस्वी साधु-साध्वियो के स्मरण की ढाल १।

उक्त तालिका के अतिरिक्त कुछ आख्यान व गीतिकादिक और भी है पर वे उपलब्ध नही होते।

७. मुनिश्री ने अग्रगण्य की अवस्था मे विचरकर धर्म का अच्छा प्रचार-प्रसार किया और जन-जन को प्रतिवोध देकर शासन की गरिमा को वढ़ाया। उनके चातुर्मासो की उपलब्ध तालिका इस प्रकार है—

स० १८९३ भीलवाड़ा (जयकृत दी० गु० व० ढा० १ गा० १५)

सं० १८९७ वोरावड़

स० १८९७ कार्त्तिक वदि १ वोरावड़ मे उन्होने भगवती सूत्र (४० पत्र) की प्रतिलिपि की थी। इससे उनका उक्त चातुर्मास निर्णीत होता है।

स० १८९८ लाडनू

स० १८९७ आषाढ़ शुक्ला १३ को लाडनू मे मुनि जीवोजी ने मुनि भागचन्दजी (४८) के गुणो की ढाल वनायी थी इससे उक्त चातुर्मास का निर्णय किया गया है।

स १९१२ नाथद्वारा (मुनि स्वरूपचन्दजी की सेवा मे)

मुनि जीवोजी रचित साध्वी नवलांजी (२८५) के गुण वर्णन की ढाल के आधार से उक्त चातुर्मास प्रमाणित होता है। उस वर्ष मुनि स्वरूपचन्दजी के साथ

८ साधु थे उनके नाम भी वहा एक दोहा मे दिए गए है—

चेतन (क्रमाक-८६), उदैचद (६४), जीव ऋषि (११३), वीजराज (१३५), रूपचद (१३४)। भवानजी (१२०), माणक (६६), मन वसियै, कालू (१६३) करै आनद ॥

स० १६१३ ठाणा ३ राजनगर।

मुनि जीवोजी रचित स० १६१३ के चातुर्मास विवरण की ढाल १ गा० ४ मे इसका उल्लेख है।

सं० १६१४ ठाणा ५ देवगढ।

वहा उन्होने सावन कृष्णा ६ के दिन व्यवहार सूत्र की जोड़ की थी।

स० १६१६ आमेट।

वहां चातुर्मास के समय उन्होंने उत्तराध्ययन सूत्र की प्रतिलिपि की थी।

८. मुनिश्री ने ६ दीक्षाए दी, उसकी सूची इस प्रकार है—

(क) साधु—

१. मुनिश्री खूवचन्दजी (१४५) को सं० १६०२ मे दीक्षा दी

२. ,, किस्तूरजी (१८५) को स० १६१८ ,, ,,।

(वाद मे गणवाहर)

(ख) साध्विया—

१. साध्वी श्री नन्दूजी (१६७) को स० १८६६ वैशाख वदि ५ को आजणे मे दीक्षा दी।

२. ,, रंभाजी (२२०) को स० १६०१ जेठ सुदी १२ को पदराडा मे दीक्षा दी।

३. ,, नोजाजी (२३६) को स० १६०३ फाल्गुन शुक्ला ५ को दीक्षा दी।

४. ,, साकरजी (२६६) को स १६१२ जेठ वदि १० को दीक्षा दी।

५. ,, नोजाजी (३००) को ,, ,, ,, ।

६. ,, मगदूजी (३०१) को ,, ,, ,, ।

७. ,, नोजाजी (३४१) को स० १६१६ जेठ वदि १० को ताल ग्राम मे दीक्षा दी।

(उक्त साधु-साध्वियो की ख्यात के आधार से)

६. एक बार मुनि जीवोजी तथा मुनि ताराचन्दजी (११६) ने नागौर से विहार किया। रास्ते मे ताराचदजी गण से अलग हो गए। मुनिश्री का शरीर उस समय अस्वस्थ था। ग्रीष्म ऋतु थी। वे अकेले खालड गाव मे गये। वहां साध्वीश्री नगाजी (७६) विराजती थी। मुनि जीवोजी को वहा २७ रात्रि रहना पड़ा। वाद मे आचार्यश्री रायचदजी के दर्शन किए तव आचार्यश्री ने फरमाया—

कारणवश जहा साध्विया हों उस गांव में अकेला साधु रहे तो कोई दोप नही है। इसका कोई प्रायश्चित्त नही आएगा।

(परम्परा के वोल २।२२४)

यह घटना स० १८९५ और १९०० के बीच की है, क्योंकि ताराचंदजी की दीक्षा सं० १८९५ की है और साध्वी श्री नगाजी का स्वर्गवास सं० १९०१ सावन सुदि १५ का है।

१०. आयम्बिल वर्धमान तप मे साधक प्रारंभ में एक आयम्बिल करता है फिर क्रमशः वढता हुआ दो, तीन, सौ तक चढ जाता है। अन्य तपस्याओ मे तप के वाद पारणा किया जाता है परन्तु इस तप मे पारणे के स्थान पर उपवास किया जाता है। इस तप मे कुल मिलाकर ५०५० आयम्बिल और १०० उपवास होते है। इस तप को पूरा करने मे १४ वर्ष ३ मास २० दिन लगते हैं। इस तप की आराधना महासती महासेनकृष्णा ने की थी।

मुनिश्री जीवोजी ने यह तप चालू किया। वे ४४ की श्रेणी तक चढे। इसमें उन्होने ९९० आयम्बिल और ४४ उपवास किए। इस प्रकार १०३४ दिन अर्थात् दो वर्ष साढे दस महीने लगातार तपस्या करते हुए उन्होने शरीर को सुखा लिया।

तेरापथ धर्मसंघ मे यह सर्वोत्कृष्ट तप था। इनसे पूर्व मुनि उदयरामजी(३७) ने आयम्विल वर्द्धमान किया था जो ४१ की श्रेणी तक चढ़ने पाए थे। मुनिश्री ने इसके अतिरिक्त उपवास वेला आदि खुला तप भी वहुत किया।

(ख्यात)

११. अन्तिम समय मे जयाचार्य ने साधुओ को भेजकर मुनि जीवोजी की अच्छी परिचर्या करवायी। मुनि दीपजी (१४९) ने उनकी खूव सेवा की। (ख्यात)

सं० १९२९ मे मुनिश्री ने स्वर्ग गमन कर दिया—

जीव ऋषि वहु जोड सूत्र नी, आंविल वर्द्धमान जगीसं रे।
चमालीस ओली लग परभव, उगणीसैं गुणतीसं रे।

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४३)

ख्यात मे उनका स्वर्ग संवत् १९३१ लिखा है पर उक्त शासन-विलास मे उल्लिखित स० १९२९ ठीक लगता है।

शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० २५६ मे स्वर्ग स० १९११ लिखा है जो लिखने की भूल है।

मुनि दीपोजी और जीवोजी से सवधित विवरण ख्यात तथा शासन-विलास के अतिरिक्त शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० २०३ से २५६ मे मिलता है।

जयाचार्य कृत मुनि दीपोजी के गुणोत्कीर्त्तन की एक ढाल 'सत गुण वर्णन' मे तथा मुनि जीवोजी रचित 'दीप गुण वर्णन' की ५ ढालें 'प्राचीन गीतिका सग्रह' मे सुरक्षित है।

८७।२।३८ मुनिश्री मोड़जी (चंदेरा)

(सयम पर्याय १८७७-१९२४)

छप्पय

भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़।
भारी तप मैदान मे की भारी घुडदौड।
की भारी घुडदौड़ ग्राम चंदेरा गाया।
संयम का खुशहाल भाल में तिलक लगाया।
साल सतंतर में मिली सात हाथ की सोड़[1]।
भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़॥१॥

दोहा

प्रकृति भद्र विनयी गुणी, निर्मल नीति प्रधान।
रमकर त्याग विराग में, करते ज्ञान व ध्यान[2]॥२॥

छप्पय

जुड़े तपस्वी पंक्ति मे सूरवीर अणगार।
लगे जूझने सुभटवत् ले तप की तलवार।
ले तप की तलवार खड़े है साहस भर के।
छहमासी तक ऊर्ध्व बढ़े है पौरुष धर के।
गिनते जाओ आंकड़े देते जाओ जोड़।
भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़॥३॥

पावस बारह साल का मोखणदा में खास।
संत खूमजी साथ वे कर पाये छहमास।
कर पाये छहमास पारणा जय के कर से।
सहा शीत बहु ताप विरति भर कर अंदर से।

खंभे कर्मो के वड़े दिये शक्ति से तोड़[३]।
भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़ ॥४॥

वढ़ी वेदना अंत में हुआ दीखना वंद।
फिर भी समता भाव में रहते मुनि सानद।
रहते मुनि सानंद सुगुरु की महर सवाई।
भेज भेजकर संत वड़ी सेवा करवाई।
परम शान्ति सुसमाधि से रस तो लिया निचोड़।
भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़ ॥५॥

क्षमायाचना कर किया आत्मालोचन-स्नान।
निर्मल निर्मलतम वने भावों से उत्तान।
भावों से उत्तान ध्यान तो उज्ज्वल ध्याया।
चार वीस की साल प्रथम मृगसर दिन आया।
वने पथिक परलोक के नश्वर तन को छोड़[४]।
भारी भारीमाल के चरम शिष्य मुनि मोड़ ॥६॥

१. मुनिश्री मोडजी चदेरा (मेवाड़) के वासी थे, ऐसा 'चामत्कारिक तप विवरण संग्रह' मे लिखा हुआ है। जाति का उल्लेख नही मिलता।

उन्होंने स० १८७७ चैत्र शुक्ला ८ को दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा कहां और किसके द्वारा ली इसका उल्लेख नही मिलता। वे आचार्यश्री भारीमालजी के अन्तिम शिष्य हुए।

'चरण मोडजी वर्ष सितंतरे'

(शासन विलास ढा० ३ गा० ४४)

ख्यात आदि मे दीक्षा सं० १८७८ लिखा है जो चैत्रादि क्रम से समझना चाहिए।

२. मुनिश्री बड़े विनयी, विरागी, नीतिमान्, प्रकृति से सरल थे। उन्होंने यथाशक्य ज्ञान-ध्यान का विकास किया और विविध गुणों को सजोया।

(ख्यात)

३. मुनिश्री बड़े घोर तपस्वी हुए (ख्यात मे काकड़ी भूत लिखा है), 'तप. सूर अणगार' की सूक्ति को सार्थक करते हुए इस प्रकार तप के मैदान मे आए कि मानों कोई बलिदानी योद्धा रणस्थल मे डटकर खडा हो गया हो। उनकी घोर तपस्या का वर्णन करते हुए शरीर मे रोमांच हो जाता है और मन आश्चर्य से भर जाता है। उनका नाम युगों-युगों तक तपस्वी मुनियो के इतिहास मे स्वर्ण-पंक्ति मे अंकित रहेगा। उन्होने उपवास, बेले, तेले, चोले अनेक वार किए। इससे ऊपर के आंकड़े इस प्रकार है—

५	६	८	११	१८	३०	३१	३२	३३	४६	४७	५७	६३	६४	६६
२	१	१	३	१	१	१	२	२	१	१	१	१	१	१

७२	७५	७६	८६	९०	९१	९२	९३	१०७	१०८	१८१	१८५
१	२	१	१	१	१	२	१	१	१	१	१

यह तप प्राय. आछ के आगार से तथा कुछ छाछ के आगार से किया।

(ख्यात, शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० २५७ से २६१)

शासन विलास ढा० ३ गा० ४४ की वर्त्तिका मे पचोला एक है तथा १८ की तपस्या का उल्लेख नही है अन्य तपस्या उपर्युक्त ही है।

उक्त दो छहमासियों मे एक छहमासी उन्होने सं० १९१२ के मोखणदा चातुर्मास मे की थी। उनके साथ मुनि खूबजी (१३५) ने भी १९३ दिन का तप किया था। चातुर्मास के पश्चात् स्वयं जयाचार्य ने वहां पधारकर दोनों मुनियों को अपने हाथ से पारणा कराया था—

हिवै मोखणदै आया मुनिपति, आछ आगार सू भारी रे।
मोडजी तपसी नो छ. मासी नो, पारणो परम उदारी रे।

स्व हाथ आप करायो स्वामी, वलि खूमजी (१४५) मुनि तप भारी रे।
तप पट्मासी ऊपर तुररो, दिन तेरै अधिक उदारी रे॥
(जय सुजश ढा० ४३ गा० २४, २५)

मुनि मोड़जी के अग्रगण्य होने का उल्लेख नही मिलता, केवल उपर्युक्त एक चातुर्मास स० १९१२ का ४ ठाणो से मोखणदा मे किया ऐसा श्रावको द्वारा लिखित प्राचीन स० १९१२ की चातुर्मास तालिका मे लिखा हुआ है।

मुनि मोड़जी की दूसरी छहमासी का वर्णन नहीं मिलता पर वह जयाचार्य के युग मे ही की थी क्योकि आचार्यश्री ऋपिराय के समय मे जिन साधुओ ने छहमासी तप किया उनके नाम निम्नोक्त पद्य मे उल्लिखित है—

(६७) (५६) (९६) (८५) (८९) (७८)
वर्धमान पीथल मोती दीपजी, कोदरजी शिवजी किया पट्मास।
(७६)
वे_वार छहमासी हीरजी, ऋपिराय वरतारे विमास॥
(ऋपिराय सुजश ढा० १२ गा० १२)

मुनिश्री ने शीतकाल मे शीत और उष्णकाल मे उष्ण परिपह बहुत सहन किया।

(ख्यात)

४. मुनिश्री को असात् वेदनीय कर्म के योग से आखों से दीखना बिल्कुल बन्द हो गया। फिर भी उन्होने समता भाव मे रमण करते हुए वीरवृत्तिपूर्वक उस व्यथा को सहन किया। जयाचार्य ने अच्छे-अच्छे साधुओ को उनकी परिचर्या मे रखकर वडा सहयोग दिया।

मुनिश्री ने परम समाधि का अनुभव करते हुए लगभग ४६ साल साधु-पर्याय का पालन किया। आखिर आत्मालोचन एव क्षमायाचना कर उज्ज्वलतम भावो से सं० १९२४ मृगसर कृष्णा १ के दिन स्वर्ग गमन कर दिया। (ख्यात)

चरण मोडजी वर्ष सिततरे, विचित्र तप सुजगीशो रे।
उगणीसै चोवीसे परभव, सखर चरम ए शीसो रे॥
(शासन विलास ढा० ३ गा० ४४)

स० १९२४ आयु मृगसर वदि-१। (शासन विलास वर्त्तिका)

शासन प्रभाकर ढा० ४ गा० २६४ मे स्वर्ग संवत् १९२९ लिखा है जो उपर्युक्त प्रमाणो से गलत है। वहा दो दिन के सथारे का उल्लेख है पर अन्यत्त उल्लेख न होने से प्रमाणित नही है।

●●